बिमल मित्र

इसीका नाम दुनिया





सरस्वती विहार

इसीका नाम दुनिया



कहानी का प्रारम्भ यहीं से होता है। हरतन की यह कहानी इस किशनगंज में ही शुरू होती है। एक ओर हरतन और मालिक, मालिक और बड़ी बहूजी; दूसरी ओर दुलाल साहा और नई बहू की कहानी, इसके अलावा बकुविहारी और अजना भी हैं। सभी यहां अकेले ही आए एक रोज। अपनी अलग-अलग इकाइयों में इस कहानी के ये पात्र किशनगंज आए और यहां पहुचकर अपने यह मालिक, हरतन, बड़ी बहूजी, दुलाल साहा और नई बहू सब एक इकाई में बदल गए। यह कहानी उन सभीकी है।

कहने को मालिक ही किशनगंज के आदिपुरुष हैं। आदि और निखालिस। सात पुश्त पहले की बातें मालिक को नहीं मालूम। लेकिन उसके बाद के किस्से मालिक पहले लोगों को धर-पकड़कर सुनाया करते थे।

मालिक शुरू करते, "अरे, तुम लोग तब पैदा भी नहीं हुए थे। बात उस जमाने की है जब हम भी नहीं थे।"

कहते-कहते मालिक अपनी धुन में बह जाते। पुश्त-दर-पुश्त तक जा पहुंचते। आदिशूर ने कब गौड़ बगला का यह गांव बसाया था। इस वश के आदिपुरुष थे धर्मदास देवशर्मा। तब क्या इच्छामति ऐसी ही थी! धर्मदास राजपुरोहित थे! उनका रोबदाब अलग ही था। हाथी

पर चढ़कर राजमहल जाते थे। हर रोज़ एक सौ आठ कमल के फूल बंधते थे उनके लिए। एक सौ आठ कमल के फूलों के पत्तों पर नैवेद्य सजाकर कुलदेवी सिंहवाहिनी की पूजा करते थे। इसके बाद राजमहल पहुंचकर शुरू होती धर्मालोचना। राजा सुनते, उनके इष्ट-मित्र और मुसाहिब सुनते। रात को भागवत पाठ होता। तो एक रोज़ भागवत पाठ होते-होते ही एक अजीब बात हो गई।

"क्या हुआ मालिक ?"

सुनने वालों ने इस घटना को कई बार सुना है। गौड़ेश्वर के सीने में अचानक अजीब-सा एक दर्द उठा। और उसके बाद ही राज्य की हालत बिगड़ने लगी। दंगे-फसाद, भड़क-महामारी के बीच से किस प्रकार किशनगंज का भट्टाचार्य वंश धन-दौलत और वैभव-विलास से भर उठा। केदारेश्वर भट्टाचार्य तक का यह किस्सा लोगों ने कितनी ही बार सुना है। तो इन्हीं केदारेश्वर भट्टाचार्य के इकलौते वंशधर अपने ये मालिक हैं, कीर्तिश्वर भट्टाचार्य। इस कहानी के प्रधान पात्र।

पहले कीर्तिश्वर भट्टाचार्य के श्रोता थे। शाम के वक्त रोज़ बैठकखाने में मजलिस जमती। पान-तंबाकू, हुक्का, पीकदानी रहते। खींचने वाला पंखा, अतरदान और जगमग रोशनी, सभी कुछ। अब सब कुछ नहीं है। कीर्तिश्वर भट्टाचार्य अब और भी बूढ़े हो गए हैं। सांस चल रही है इसलिए कहा जा सकता है कि जीवित हैं। खड़ाऊं घसीटते-घसीटते आज भी आकर बैठते हैं। सो भी दिन ढले से पहले। झुटपटा होते ही उठ पड़ते हैं। उठकर अपने कमरे में पलंग पर जा पड़े-पड़े हांफते रहते हैं। वैसे ठीक दमा नहीं है और दमा हो भी तो क्या किया जा सकता है ! चारा ही क्या है ! किसी तरह आखिरी कुछ दिन कटें तो निस्तार पाएं।

अचानक जैसे किसीके पैरों की आहट होती है। बड़ी बहूजी हैं क्या ?

"कौन ?"

गला आज भी उस ज़माने जैसा ही रोबीला था। उन दिनों गले की आवाज़ सुनकर रास्ता चलते लोग सहम जाते थे। इसके अलावा तब 'कौन' की आवाज़ सुनते ही दौड़ पड़ने वाले लोग भी आसपास ही

हुआ करते थे। हुक्म तामील करनेवाले हुक्मबरदार थे। लोग मानते थे। सुख-दुःख और मुसीबत में मालिक के पास सलाह लेने आते थे। पहले उनकी आवाज अनसुनी करने पर ड्योढ़ी के दरवान के हाथ चाबुक खानी पड़ती। अब वैसा कुछ नहीं है। चारों ओर जंजाल हो गया है। झाड़-झंखाड़ उग आए हैं। आना-जाना बंद हो गया। लोग-बाग भी नहीं आते हैं। भट्टाचार्य भवन जैसे भूतों का डेरा हो गया है। लोगों का कहना है—होगा नहीं, पुरोहितगीरी करने आए थे, बन बैठे राजा। भाग्य इतना सह सकता है? एक लड़का था। कीर्तिश्वर ने अपने नाम से तुक मिलाकर उसका नाम रखा था सिद्धेश्वर। मालिक सिधू कहकर पुकारते थे। सोचते थे, सिधू बड़ा होकर आदमी बनेगा।

"कौन?"

"मैं!"

"ओह! मैंने सोचा···"

मालिक ने क्या सोचा, कौन जाने! मुंह से कुछ नहीं कहा उन्होंने। बड़ी बहूजी बिस्तरे के एकदम नजदीक आकर खड़ी हुईं। फिर बोलीं, "तेल लाई थी गर्म करके।"

"लाई हो तो दो, लेकिन अब यह ठीक नहीं होने का।"

कहकर मालिक सीने पर हाथ फेरने लगे। रोज ढलती रात के वक्त सीने में कैसी धमक-सी होने लगती है। बड़ी बहूजी हर रोज इसी वक्त आती हैं। सरसों का तेल गर्म कर सीने पर मालिश कर देती हैं। इसके बाद अंधेरा होने पर दीवारगीर की बत्ती उकसा देती हैं। तेल-मालिश कराते-कराते बहुत बार मालिक सो जाते हैं। नाक बजने लगती है। शायद सपना देखते हैं। वही पुराने दिनों के सपने। अचानक जैसे उनकी नजरों के आगे हजार बत्तियोंवाला झाड़ जल उठा। गौड़ेश्वर के राजपुरोहित धर्मदास भट्टाचार्य और एक सौ आठ कमल के फूलों के पत्तों पर सजाया हुआ कुलदेवी की पूजा का नैवेद्य, नजरों के आगे झिलमिलाने लगा। अंदर महल में फिर शंख बज उठा, 'लड़का हुआ है, लड़का हुआ है।' केदारेश्वर भट्टाचार्य का एकमात्र कुलदीपक। किशनगंज के घाट पर फिर एक बार नाव लगी है। काशी से शिरोमणि वाचस्पति पधारे हैं।

पालकी लिए सिपाही दौड़ते गए हैं। बड़े ऊंचे पंडित हैं। काशीराज के राजपुरोहित हैं। पुत्र की जन्म-कुंडली बनवाने के लिए केदारेश्वर ने बुलाया है उन्हें। वाचस्पतिजी ने कुंडली बनाई। इसके बाद हुआ कुंडलीपाठ—जातक के कर्कट में बृहस्पति है, लग्न में चन्द्र है। एतच्छेदीय सौरचैत्रस्य पंचम् दिवसे सोमवासरे अमावस्यायां तिथौ शुभयोगे चतुष्पाद करणे पूर्व-भाद्र नक्षत्रान्विते कुम्भराशौ मंगलस्य द्वादशांशे यामार्धे अशेपगुणा-लंकृत पवित्रब्राह्मण कुलोद्भवस्य श्रीयुक्त केदारेश्वर भट्टाचार्य महोदयस्य शुभाभिनव प्रथम कुमार: जात: शुभमस्तु।

केदारेश्वर इसपर भी कुछ समझ नहीं पाए, "कैसा लगता है आपको?"

काशी के राजपंडित शिरोमणि वाचस्पति संस्कृत शास्त्रों का अगाध ज्ञान है। बोले, "यह संतान आपके कुल की मर्यादा-वृद्धि करेगी। लेकिन चतु:षष्ठि वर्ष वयक्रम काल में राहु की दशा का योग है। नीच जाति के लोगों के संस्पर्श से समग्र क्षति योग है। जातक को सतर्क रहना पड़ेगा। इसी उम्र में जितना कुछ अनिष्ट होने की आशंका है।"

"अनिष्ट-रोध का क्या उपाय है?"

शिरोमणि वाचस्पति ने कहा, "दीर्घ-काल पड़ा है। समयानुकूल अवस्था के अनुकूल व्यवस्था लेने से सब मंगल होगा।"

केदारेश्वर ने फिर पूछा, "और आयु? आयु के बारे में तो आपने कुछ बताया ही नहीं?"

शिरोमणि वाचस्पति ने कहा, "जातक दीर्घायु है।" लेकिन यह बात तो चौंसठ साल पहले की है। तब भट्टाचार्य वंश धन-दौलत से भरपूर था। फिर एक दिन ये केदारेश्वर भट्टाचार्य कालग्रस्त हुए। कीर्तिश्वर उन दिनों शिशु थे। परिवार, इष्ट-मित्र और आश्रितों से भरा घर धीरे-धीरे निर्जन हो गया। कीर्तिश्वर का विवाह हुआ। संतान-लाभ भी हुआ। पुराने वैभव के पुनराविर्भाव की आशा भी थी। लेकिन हुआ नहीं कुछ। किशनगंज की बाजार कभी आज की तरह लोग-बागों की चहल-पहल से भर उठेगा, उन दिनों कोई सोच भी नहीं पाया था लेकिन हुआ यही है। यह इलाका जहां दिनोंदिन सुनसान और वीरान होता जा रहा है, वहां बाजार

की ओर का इलाका उतना ही सजीव, कोलाहलपूर्ण, रंगीन और सुंदर होता जा रहा है। उन दिनों बाजार में चार-पांच दुकानें हुआ करती थी— एक थी बताशों की, एक मिट्टी के बर्तनों की और एक जूट के आढ़त की। यही गिनती की चार-पांच दुकानें टिमटिमाया करती थी। उधर खेया घाट पर व्यापारियों की नावें आकर भिड़ती। धान, चावल, बांस, मिट्टी की हड़िया और रबड़ से भरी नावें। कहां और कितनी दूर यह सब आता-जाता, इसका पता-ठिकाना कोई नहीं रखता था। कीर्तिश्वर इन सबको लेकर माथापच्ची नहीं करते थे। नायब गुमास्ते थे। वे ही लोग खबर लाते थे। इसीसे सब कुछ जानकारी में रहता था। आजकल उन्हें कुछ भी पता नहीं रहता। नायब गुमास्ता कोई नहीं है। एक निवारण सरकार बाकी बचा है। लेकिन निवारण भी अब बूढ़ा हो गया है। आंखों में झिल्ली पड़ गई।

निवारण दिन ढलते एक बार आता है। गद्दी के सामने एक बार खड़े होकर कुछ कहते-कहते रुकता है।

"कुछ कहना है?"

निवारण कहता, "जी, उस आहर (तलैया) के बेचने के बारे में बात करनी थी।"

"कौन-सी आहर?"

"हुजूर, पॅपुलवेड़ के पासवाली आहर।"

"लेगा कौन?"

निवारण ने सहमकर सिर झुका लिया।

फिर बोला, "जी, वह दुलाल साहा···"

बारूद में माचिस की तीली पड़ने पर भी शायद इतने ज़ोर का धड़ाका नहीं होता। दुलाल साहा के नाम में शायद बारूद छुपा था। और नहीं रोक पाए अपने को। साथ-साथ बरस पड़े।

"सब कुछ हजम करके भी इस हरामी का पेट नहीं भरा है? अभी और खाना चाहता है?"

निवारण की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे। मालिक के आगे खड़ा बेचारा थरथर कांपने लगा।

"जाओ, दफा होओ यहां से !"

निवारण की इसके वाद और खड़े रहने की हिम्मत नहीं हुई। जल्दी से घूमते वक्त कान के पीछे खुसी कलम पट से ज़मीन पर आ गिरी। उसे उठाकर निवारण भागा। इसके वाद वाहर दालान से गुज़र कर धीरे-धीरे पहली मंज़िल पर कचहरी में आया।

निताई वसाक तखत पर वैठा मिनट गिन रहा था। और वीच-वीच में अपनी कलाई-घड़ी देख लेता। निवारण के कचहरी में घुसते ही उसके चेहरे को देखकर वह समझ गया।

उसने पूछा, "क्या हुआ ? मालिक क्या कहते हैं ?"

"राज़ी नहीं हो रहे हैं।"

"फिर भी उन्होंने कहा क्या ? गुस्से से आग हो गए होंगे।"

निवारण की अजीव मुसीवत है। निताई वसाक को भी नाराज नहीं कर पाता और मालिक को भी नाराज़ करना नहीं चाहता। उसे दोनों को सम्हालना पड़ता है। आज पन्द्रह साल से इसी तरह सम्हाल रहा है। यानी जव से किशनगंज के वाज़ार में दुलाल साहा ने आकर आढ़त की दुकान खोली है, तभी से।

"तो जाकर मैं साहा वावू से यही कह दूं, कि साहा वावू का नाम सुनते ही मालिक गुस्से से आग हो उठे। ठीक है न ?"

निवारण ने जल्दी से उसे रोकते हुए कहा, "नहीं-नहीं, निताई वावू, ऐसा न करें। मालिक का स्वास्थ्य ठीक नहीं, इसीसे वोले हैं कि वाद में सोच-कर देखेंगे, आप साहा वावू से ज़रा समझाकर कहिएगा कि अन्यथा न लें।"

निताई वसाक फालतू वात करने वाला आदमी नहीं है। उसके भी वक्त की कीमत है। पन्द्रह साल पहले जव दुलाल साहा कहने को रास्ते का भिखारी था, माने सड़क पर काली करधनी की फेरी लगाया करता था, तभी से निताई वसाक दुलाल साहा को जानता था। कितने ही दिन हो गए हैं जव दुलाल साहा के नसीव में खाना तक नहीं जुटा। दो मुट्ठी चवैना चवाकर चुल्लू-भर इच्छामती का पानी पीकर पेट भरा है। सो उस निताई वसाक ने ही दुलाल साहा को सिखलाया-पढ़ाया और आज इतना वड़ा किया है। इस किशनगंज के वाज़ार में जूट की

आढ़त खुलवाई। जूट से तीसी और तीसी से धान। आखिर में अब चीनी की मिल खोलना चाहता है। मगर मिल। पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर हाथ आ जाए तो दुलाल साहा की मनोकामना पूरी हो। इतना सब पाकर भी जी नही भरा है। इतना हजम करके भी पेट नही भरा है।

"लेकिन एक बात कहे जाता हूं निवारण; यह जगह हम लेकर ही रहेंगे।"

निवारण स्थिर दृष्टि से ताकता रहा। फिर खुद को सम्हालकर बोला, "नाराज क्यों हो रहे हैं निताई बाबू, बेकार में गुस्सा क्यों हो रहे हैं?"

"गुस्सा नही आएगा? भले आदमी की तरह प्रस्ताव लेकर आया था, लेकिन तुम्हारे मालिक की समझ में वह बात नही आई, मेरी बात मान लेने पर तुम्हारे मालिक का ही भला होता। इन बिगड़े दिनों में चार पैसे दिखलाई देते हाथ में, लेकिन जब उनकी मर्जी नहीं है तो कैसे काम हासिल किया जाता है, वह रास्ता भी मालूम है हमें।"

कहकर निताई बसाक उठने लगा।

निवारण ने जैसे आखिरी बार कोशिश करते हुए कहा, "दया करके ये बातें साहा बाबू से न कह डालिएगा, मैं एक बार और कोशिश करके देखूंगा।"

"अब और कोशिश करने की जरूरत तुम्हे नही निवारण! जो करना है, हम ही करेंगे।"

"जी, आप लोग करेंगे माने?"

"माने यही कि पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर हम लेंगे ही। तुम्हारे मालिक के बाप की भी ताकत नही है हमें रोकने की—कहे जाता हू।"

कहकर निताई बसाक तेजी से सदर पार कर बाहर जगत के बीच खो गया।

सचमुच दुलाल साहा जैसे किशनगंज के बाजार में धूमकेतु की तरह उदय हुआ था। और उसीके बाद से कीर्तिश्वर के सीने की यह चमक

शुरू हुई है। शाम होते ही सीने के पास कैसा खाली-खाली-सा लगता है। इसके बाद जैसे-जैसे रात बढ़ती जाती है, कसक भी बढ़ती जाती है। पहले बड़ी बहूजी समझ नहीं पाती थीं। बड़ी बहूजी को लगता, शायद कीर्तिश्वर सो गए हैं। आहिस्ते से मसहरी को पलंग के चारों ओर अच्छी तरह दबा देती हैं। फिर किसी वक्त खुद भी उनकी बगल में आ लेटतीं। लेकिन उस रोज़ मालिक ज़रा अन्यमनस्क थे।

पूछने लगे, "यह महक कैसी आ रही है बड़ी बहू ?"

"पूड़ी तलने की।"

"पूड़ी तलने की !" फिर पूछने लगे, "रात के इस वक्त पूड़ियां खाने का शौक किसे हुआ है ?"

बड़ी बहू हमेशा से ही कम बोलती हैं। उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया।

मालिक फिर बोले, "कुछ बोलीं नहीं ?"

"क्या कहूं ?"

"यही कि इस वक्त पूड़ियां खाने का शौक किसे हुआ ? शौक हुआ है तो इतनी महक की क्या जरूरत है ? लगता है, घी अच्छा है।"

बड़ी बहूजी ने इसपर भी कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन मालिक और नहीं रोक पाए अपने को, बिस्तर छोड़ उठ बैठे।

"अब उठ क्यों रहे हो इस वक्त ?"

मालिक भन्ना उठे। बोले, "उठूं नहीं तो क्या करूं ? देखना नहीं है कि यह पूड़ियां खाने का शौक किसे हुआ है। रात में इस वक्त इतना अच्छा घी फूंककर पूड़ियां खानेवाला शौकीन है कौन ?"

कहते-कहते पैरों में खड़ाऊं डालकर दरवाजा खोलकर बरामदे से जीने के पास पहुंचकर उन्होंने पुकारा, "निवारण, ओ निवारण !"

कचहरी के पास ही निवारण के सोने का कमरा है। फर्श का सीमेंट जगह-जगह से उखड़ा हुआ है, कमरे में चमगादड़ और तिलचट्टों ने राज जमा रखा है। पहले इस कमरे में दीवानखाना था। बड़ी-बड़ी ऑयल पेंटिंग्स आज भी लटकी हैं, लेकिन एक की भी हालत ठीक नहीं है। महाराज धर्मदास भट्टाचार्य के चेहरे में दीमकों ने छेद कर दिया है। केदारेश्वर

के मुनहले हुक्के की नली पर मोर्चा लग गया है। कुलदेवी सिंहवाहिनी के पट पर मकड़ियों ने जाल बुन लिया है। फटे रुई निकले गद्दे के एक ओर मसहरी लगाकर निवारण सोने का हिसाब बैठा रहा था। दोपहर के वक्त निताई बसाक काफी बकझक कर गया है। पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर की फिराक में पिछले कुछ दिनों से कई चक्कर लगा चुका है। शुगर मिल बैठानी है। दुलाल साहा भी कई महीनों से देखते ही यही सवाल करता है, "मालिक से बात हुई निवारण ?"

निवारण कहता, "जी, कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।"

"क्यों ? अरे पैसे लेंगे, ज़मीन बेचेंगे, बात खत्म हुई ! इसमें हिम्मत वाली बात कहां आती है ?"

निवारण कहता, "साहा बाबू, मालिक को तो आप जानते ही हैं।"

"अरे ज़मीन क्या पहले कभी बेची नहीं है जो इतना डरते हो ? ज़मीन बेच-बेचकर ही तो तुम्हारे मालिक इतने दिनों से पेट पाल रहे हैं। मैं कोई रिहाइशी मकान बेचने को थोड़े ही कह रहा हूं।"

ज़रा रुककर फिर कहने लगा, "एक-न-एक दिन ज़मीन तो तुम्हारे मालिक को बेचनी ही होगी। न हुआ एक बंगाली के हाथ ही बेचें।"

इसपर भी जब काम नहीं बना तब निवारण के हाथ में कुछ देना चाहा दुलाल साहा ने। रुपये से हर कोई वश में होता है। यह नाचीज़ निवारण वश में नहीं आएगा ? रुपये की महिमा का ज्ञान दुलाल साहा को बहुत पहले ही हो चुका था। आज उसी रुपये से निवारण को काबू में करना चाह रहा था।

"नौकरी करते तो तुम्हें बहुत दिन हुए निवारण, जी-हुज़ूरी करते बाल सफेद कर लिए। कुछ जमा किया है इतने दिनों में ? आखिरी दिनों के लिए किया है कुछ ?"

निवारण के चेहरे पर एक फीकी-सी मुसकान खेल गई। उसने कहा, "मेरे आखिरी दिन ? मालिक का बहुत नमक खाया। जी भरकर भोग किया है, अब इस उम्र में आखिरी दिनों का लोभ न दिखलाएं साहा बाबू !"

इसी तरह खींचतान चल रही थी इतने रोज़ से, आज एक दम

फैसला हो गया। अच्छा ही हुआ। अब दुलाल साहा भी नहीं बुलाएगा। निताई बसाक भी आकर परेशान नहीं करेगा। किशनगंज बाजार की ओर अब वह जाएगा ही नहीं। निवारण मसहरी लगाकर लेटने को ही था। अचानक ऊपर से मालिक की आवाज सुनकर चौंककर उठ बैठा।

"निवारण, ए निवारण !"

खड़ाऊं की आवाज नीचे की ओर ही आ रही थी। निवारण जल्दी से बरामदे में आकर जीना चढ़ने लगा।

"आया मालिक !"

मालिक ऊपर जीने के पास ही खड़े थे, "यह पूड़ियां तलने की महक कहां से आ रही है निवारण ?"

"जी, दुलाल साहा के घर से।"

"मेरा खयाल ठीक ही था। लगता है, दुलाल साहा ने आजकल पूरे मुहल्ले में ढिंढोरा पीटकर पूड़ियां खाना शुरू किया है। बड़ा बेअदब हो उठा है।"

निवारण ने कहा, "जी मालिक, बात ऐसी नहीं है, आपको निमंत्रण देने आए थे दुलाल बाबू। आपकी तबीयत ठीक नहीं है, कहकर आपसे मुलाकात नहीं करवाई।"

"ठीक ही किया। बेअदब लोगों से मैं मुलाकात करना भी नहीं चाहता। लेकिन यह निमंत्रण था किस बात का ?"

"जी, साहा बाबू दीक्षा ले रहे हैं। गुरुजी पधारे हैं, उसीका उत्सव है, पांच लोगों को निमंत्रण करके खिला रहे हैं।"

मालिक मुसकराए या भृकुटी चढ़ाई, समझना मुश्किल था, फिर बोले, "बेअदब की और दीक्षा ! मुख में राम बगल में छुरी !"

कहकर वापस लौट रहे थे। लेकिन फिर कुछ सोचकर रुके। बोले, "लेकिन इस तरह ढोल पीटकर लोगों को खिलाने की क्या जरूरत है ? पैसे की गर्मी दिखलाने के लिए ? गर्मी दिखलाए बगैर नींद नहीं आती ? नीच कहीं का…"

"जी नहीं मालिक, साधु महाराज पहुंचे हुए महापुरुष हैं। सुना है, एकदम देवतुल्य हैं। इनके दर्शन करना बड़े भाग्य की बात है।"

मानिक चिढ़ गए।

"अच्छा-अच्छा, बन्द भी करो अपना व्याख्यान। महापुरुष को किशनगंज में और कोई आदमी नहीं मिला, ठहरने के लिए दुलाल साहा का ही घर बचा था? चमार कहीं का! अरे, सब पैसे की गर्मी है, पैसे की गर्मी। किशनगंज के लोगों को दिखलाया जा रहा है—देखो, मेरे पास इतनी दौलत है। मैं क्या समझता नहीं हूं? बेवकूफ समझ रखा है मुझे?"

कहते-कहते अपने कमरे में जाकर बिस्तरे पर पड़ गए। पड़ते ही हांफने लगे। बड़ी बहू, चुपचाप बैठी थीं। उनसे बोले, "जरा जंगला तो बन्द करना बड़ी बहू, कैसी बदबू आ रही है घी की। नाक सड़ी जा रही है। लगता है, जैसे कहीं चमड़ा जल रहा है।"

वैसे आज सुबह से ही दुलाल साहा के घर उत्सव शुरू हो गया था। दुलाल साहा के घर इस तरह के उत्सव हुआ ही करते हैं। बड़े लड़के की शादी के वक्त भी किशनगंज के हर आदमी को निमन्त्रित किया गया था। यह दुलाल साहा का नियम है।

दुलाल साहा कहता, 'अरे, दो रोटी ही तो खाएगा, उसमें क्या है?'

दुलाल साहा की ताकीद थी कि घर पर आने वाले को बगैर खाना खाए जाने नहीं दिया जाएगा। अतिथि नारायण होता है। घर आए खाली पेट विदा कर देने से नारायण असन्तुष्ट होते हैं। दिनों-दिन भगवान और ब्राह्मणों के प्रति दुलाल साहा की भक्ति बढ़ती जा रही है। साथ ही वह गोलमटोल भी होता जा रहा है। एक दिन था, जब किशनगंज के व्यापारियों के आसपास मंडराता फिरा करता था। चुल्लू-भर पानी पीकर पेट भरना पड़ता था। किशनगंज के पुराने लोगों ने वे दिन अपनी आंखों से देखे हैं। बट के पेड़ के नीचे सोया करता था। कितनी ही बार रास्ते के कुत्तों के साथ रात गुजारनी पड़ी है दुलाल साहा को। भूख क्या होती है, तभी पता चला। घर-बार क्या होता है, यह भी पता चला। लेकिन दुलाल साहा को आज भी वह सब याद है। दुलाल साहा कहा करता है, "याद नहीं रहेगा? जो याद नहीं रखता, वह महापापी है,

नर्क में भी उसकी जगह नहीं है—वह नराधम है !"

दुलाल साहा कचहरी के बाहर बेंच पर बैठा माला जपता और बीते दिनों के किस्से सुनाता। वैसे अब किस्से छोड़कर करने को है भी क्या ! कामकाज का भार निताई बसाक ने ले रखा है। निताई बसाक भी ठीक वक्त पर आ जुटा। निताई बसाक भी उसीकी तरह एक-एक पैसे को मुहताज दर-दर की ठोकरें खाता फिरता था। शर्म-हया जैसी कोई चीज़ नहीं रह गई थी निताई बसाक के लिए। एक तरह से निताई बसाक ने महाजनी के कारबार में दुलाल साहा को लगाया था।

कुछ भी नहीं। सिर्फ तीस रुपये की पूंजी थी दुलाल की। किशनगंज में जितने व्यापारियों की नावें आतीं, दुलाल साहा हर एक से एक आना लेता। एक महीने बाद वही व्यापारी फिर से माल लेकर किशनगंज आता तो तब फिर एक आना। महीने में एक आना ऐसा क्या है ?

यह सूझ निताई की थी। हर किसीसे कहता, "हरिसभा के लिए चन्दा है।"

"हरिसभा का क्या होगा ?"

"अरे आप लोग यहां आते हैं। सारे दिन धन्धे के लिए दौड़-धूप करते हैं। रात के वक्त थोड़ी देर भगवान का नाम होगा। परलोक के लिए कुछ हो जाएगा। पाप क्षय होगा।"

कोई-कोई कहता भी, "ऐसा पाप ही क्या करते हैं हम लोग ! अपनी जान में तो कोई पाप करते नहीं।"

"अजी कहते क्या हैं ? पाप नहीं करते ! अनजाने में हम लोग कितने मक्खी-मच्छरों को कुचल डालते हैं। कितने निरीह जीव-जन्तुओं को खा डालते हैं, उसका ठीक है कुछ ? अभी, उस रोज खिड़की बन्द करते चपेट में आकर बेचारी छिपकली दबकर मर गई—यह क्या पाप नहीं हुआ ? अरे इस दुनिया में जिन्दा रहना भी तो पाप ही है।"

दुलाल साहा की युक्ति अकाट्य होती थी। तो इस तरह हरिसभा के नाम से उगाही चन्दे की रकम ही बाद में दुलाल साहा और निताई बसाक के धन्धे का मूलधन बनी। सुबह नींद खुलते ही दुलाल साहा चबैना चबाकर पानी पीने के बाद घाट आ पहुंचता। नाव देखते ही झोली

फैलाकर बढ़ जाता, "चन्दा लाइए।"

सिर्फ एक आने की तो बात है। व्यापारियों के कितने पैसे ऐसे ही निकल जाते हैं। पुलिस को ही कितना भरना पड़ता है। माल खराब हो जाता है। चूहे-बिल्ली ही कितना खा डालते हैं। बेकार वक्त खराब किए बगैर व्यापारी एक आना रख देते उसके हाथ पर। कभी-कभार पूछ भी लेते, "तुम्हारी हरिसभा का क्या हुआ ?"

दुलाल साहा कहता, "अब और देरी नहीं है।"

"ईंटों का क्या होगा ? छप्पर डालकर भी तो काम चल सकता है !"

दुलाल साहा जीभ काटता है, "सो कैसे हो सकता है ? भगवान के नाम पर अश्रद्धा कैसे कर सकते हैं ? जो करना है, हम लोग ठीक से ही करेंगे।"

हरिसभा का काम अच्छे से करना था। इसलिए देर होती रही। जितनी देर हो रही थी, चन्दे की रकम भी उतनी ही बढ़ रही थी। और चन्दे की रकम के साथ दुलाल साहा और निताई बसाक के स्वास्थ्य में भी उन्नति हो रही थी। हरिसभा का काम और भी तेजी और व्यवस्थित रूप से करने के लिए मालिक की जमीन पर कोठा बनवाना पड़ा। मालिक प्रेसिडेंट बनाए गए। दुलाल साहा और निताई बसाक सेक्रेटरी हुए। रबर स्टैंप बना। उन दिनों मालिक के घर आना-जाना लगा ही रहता था। मालिक के पात्र छुए बगैर दुलाल साहा और निताई बसाक पानी तक नहीं पीते थे।

ये बातें पन्द्रह साल पहले की हैं।

एक बार सामने पाकर मालिक भी जैसे छोड़ना नहीं चाहते थे। गौड़ेश्वर के पुराने ऐश्वर्य की कहानी, धर्मदास देवशर्मा की कहानी एक सौ आठ कमल के फूलों की कहानी, हाथी पर राजमहल जाने की बात—सब कुछ विस्तार के साथ सुनाते। आखिर में कहते, "तुम लोगों को जब जिस चीज की जरूरत हो, कहना, मैं सारी व्यवस्था कर दूंगा।"

एक तरह से आज जहां दुलाल साहा का मकान है, वह जगह भी मालिक की दी हुई है। हरिसभा के लिए ही मालिक ने यह जमीन दी थी।

मालिक कहते, "अरे धर्म लोप हो रहा है। इसीलिए तो आज हम लोगों का यह हाल है।"

दुलाल साहा धोती का छोर गले में डाले परम विनीत भाव से हाथ जोड़े बैठा रहता। फौरन हां-में-हां मिलाते हुए कहता, "बात आपने सोलह आने सच कही मालिक!"

निताई बसाक कहता, "इसीलिए हम दोनों ने धर्म की सेवा करने का व्रत लिया है मालिक!"

मालिक पूछते, "कितना चन्दा उगाहा?"

दुलाल साहा कहता, "हर एक से एक आना करके मिलता है। कितना होगा? आज तक कुल मिलाकर पचहत्तर रुपये सात आने हो पाए है।"

"इतना कम?"

"इतना भी क्या कोई देना चाहता है, जोर-जबर्दस्ती करके किसी तरह इतनी रकम भी जमा हो गई, यही कौन कम है?"

इसके बाद ही निवारण की बुलाहट होती। निवारण से कहते, "इन लोगों को कुछ रुपये देने हैं। तहवील से दे दो।"

इस तरह मालिक ने कितनी रकम हरिसभा के लिए दे डाली, उसका हिसाब मालिक को भले ही मालूम न हो, लेकिन निवारण के पास पूरा हिसाब है। सिर्फ रुपये-पैसे ही नहीं, जमीन भी बेची है हरिसभा के लिए। किशनगंज के व्यापारियों के नाम अपने हाथ से सिफारिशी चिट्ठी लिखीं सो अलग। किशनगंज के हर एक किसान, कुली, मजदूर तक ने हर महीने एक-एक आना करके भरा है। आखिर में जाकर हरिसभा बनी भी। पांच बीघे जमीन के एक कोने में एक झोंपड़ा। सो भी ऐसा कुछ खास नहीं। कुछ रोज भजन-कीर्तन भी हुआ, आठों पहर और एक बार चौबीस पहर भी। लेकिन उसी पैसे को चुपचाप सूद में लगाकर दुलाल साहा इस तरह मालदार आदमी हो जाएगा, मालिक कभी सोच भी नहीं पाए थे। दुलाल साहा जिन दिनों किशनगंज की हरिसभा के लिए चन्दा उगाहने में लगा रहता, निताई बसाक चन्दा इकट्ठा करने के बहाने नगद रुपये लेकर कलकत्ता जा पहुंचता। वहां पहुंचकर पता

नहीं कौन-सा गुंताड़ा बैठाकर उसने जूट की दलाली करके रातोंरात बड़े आदमी बन बैठने का सुयोग ढूंढ़ निकाला, और मानिक को भनक तक न पड़ी। जब मालूम हुआ, काफी देर हो चुकी थी। और इस तरह एक रोज किशनगंज के बाजार में दुलाल साहा की जूट की आढ़त शुरू हो गई। बाद में पता नहीं कहां से दोनों के बाल-बच्चे भी आ गए। पांच बीघे जमीन पर पक्की हवेली खड़ी हो गई। पक्का दालान बना। किशनगंज के लोगों ने एक रोज अचानक देखा, दुलाल साहा और निताई बसाक लखपति हो गए हैं।

मानिक ने एक रोज दुलाल साहा को बुला भेजा।

निवारण वापस लौट आया। उसने बतलाया, "साहा बाबू पूजा कर रहे हैं। शाम के वक्त आएंगे।"

लेकिन शाम के वक्त भी दुलाल साहा नहीं आया। निताई बसाक को भी बुलवाया था। लेकिन वह भी नहीं था। उसी रोज कलकत्ता चला गया था। इस तरह दोनों ही उनका अपमान करते। इसी तरह दिन, महीने और साल गुजरते गए। और मानिक निवारण की जबानी दुलाल साहा की बढ़ोतरी का समाचार सुनते रहते। दूसरी मंजिल के जंगले से दुलाल साहा का दालान दिखलाई देता था इसलिए उन्होंने कील ठोककर उसे बन्द कर दिया था। लेकिन जंगले में कील ठोंकने से क्या होता, दुलाल साहा के बारे में कोई बात छुपी नहीं रहती। दुलाल साहा की आढ़त में बही-खाता बदलने पर शहनाई और नौबत बजती। दुलाल साहा के घर बारह महीने में तेरह उत्सव-त्योहार होते थे। गांव के हर घर में न्योता जाता। देखते-देखते दुलाल साहा और निताई बसाक की गिनती किशनगंज के नामी-गरामी लोगों में होने लगी। सब कुछ मानिक के देखते-देखते घटित हुआ। और मानिक! मानिक इन पन्द्रह सालों में धीरे-धीरे नीचे उतरते रहे। उनके घर के चारों ओर झाड़-झंखाड़ उग आए हैं। इकलौता लड़का लापता हो गया है, पुत्रवधू भी चल बसी। सिर्फ रतन बाकी बची थी—मानिक की तीन साल की पोती। वह भी एक रोज चली गई।

आखिर में एक रोज अचानक दुलाल साहा आया था।

दुलाल साहा अव काफी भारी-भरकम हो गया था। नई मोटर में
...र दुनाल साहा और निताई वसाक मालिक के चंडीमंडप में आए।
...ी ही दोनों मालिक के पांव छूने के लिए बढ़े, लेकिन मालिक ने उससे
...ले ही पांव हटा लिए।

मालिक ने कहा था, "खवरदार, पैर-वैर छूने की कोई ज़रूरत नहीं
...। वेअदवी करने के लिए और कोई जगह नहीं मिली ?"

दुलाल साहा ने सिर झुकाकर कहा था, "आप जो कुछ भी कहेंगे,
मुझे सब मंजूर है, आपके आगे सिर झुका दिया है।"

कहकर दुलाल साहा ने सचमुच सिर झुका दिया।

मालिक ने कहा, "अब की बार कौन-सी चाल है ? फिर कोई हरि-
सभा बनानी है क्या ?"

"जी, आप बड़े हैं, जो भी चाहे कहें—आपके और दूसरे दस लोगों के
चन्दे से ही हरिसभा हुई। यह वात मैं आज भी हर किसीके आगे कहता
हूं। कहता हूं कि मालिक की कृपा के वगैर यह धन-दौलत, घर-वार,
गाड़ी कुछ भी नहीं होता।"

मालिक ने कहा था, "तुम वेहया और ढोंगी हो, इसीलिए वातें वना
रहे हो। दूसरा कोई होता तो उसकी जीभ ही गिर गई होती।"

निताई वसाक इतनी देर से पास ही चुपचाप खड़ा था। उसने कहा,
"सब कुछ आप ही की कृपा का फल तो है मालिक, फिर आप नाराज़
क्यों हो रहे हैं ?"

"नाराज़ नहीं होऊंगा ? कहते हो कि नाराज क्यों हो रहा हूं ?
वेअदव कहीं के! सिद्धेश्वर को तुम लोगों ने नहीं छीन लिया मुझसे ? वह
वात तक नहीं करता था। किसके सिखलाने से, वोलो ? मेरी इकलौती
पौत्री मर गई लेकिन मैं उसके लिए रो भी नहीं पाया। जानते हो
क्यों ?"

दुलाल साहा ने कहा, "ये वातें तो अव पुरानी पड़ गईं मालिक, ...
होना था हो गया, इतने दिन वाद फिर से उन वातों को क्यों उठा ...
है ?"

"क्यों नहीं उठाऊंगा ? तुम समझते हो, सब कुछ भूल गया हूं ...

मेरा पूरा घर बिगाड़कर ज्ञान बघारने आए हो मेरे पास ! शर्म नहीं आती तुम्हें ! गांठ में दो पैसे हो गए हैं तो समझते हो, सारी दुनिया जीत ली है ?"

निताई बसाक ने कहा, "उन बातों को छोड़िए भी मालिक, आज दुलाल के लड़के की शादी है, जब तक आप आकर खड़े नहीं होते, कौन सम्हालेगा ? हम लोगों को तो आप ही का भरोसा है।"

"बस-बस, बहुत हुआ।"

कहकर मालिक जोर-जोर से हांफने लगे। फिर निवारण से बोले, "निवारण, तुम इन लोगों को बतला दो, हम सारस्वत ब्राह्मण हैं और सारस्वत ब्राह्मण नीच जाति के लोगों के घर दावत खाने नहीं जाया करते। खाने वाले ब्राह्मण दूसरे होते हैं। किराये पर मिल जाएंगे बाजार में।"

कहकर मालिक उस रोज़ उन दोनों के सामने ही खड़ाऊं खट-खटाते सीधे दोतल्ले पर अपने कमरे में चले गए। उस रोज़ भी हवा के साथ पूड़ियां तले जाने की महक आई थी। घी की महक से मालिक को उस रोज भी तकलीफ हुई थी। हरिसभा के नाम पर लोगों को ठगकर जो लोग चंदा इकट्ठा करके पैसा बनाते हैं, उनके पैसे को धिक्कार है, उनके जीवन को धिक्कार है, ऐसे लोगों के साथ मालिक का कोई वास्ता नहीं है।

उस रोज भी बड़ी बहूजी चुपचाप बगल में लेटी थी। मालिक ने चिढ़कर कहा था, "जरा जंगला तो बंद कर दो बड़ी बहू ! लगता है, जैसे चमड़ा जलने की बदबू-सी आ रही है।"

खैर, मालिक वास्ता रखें या न रखें, दुलाल साहा को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। निताई बसाक का भी कुछ नफा-नुकसान नहीं होता। लोग हरिसभा की बात भूल चुके हैं। इच्छामति के किनारे जहां दुलाल साहा झोली फैलाए चंदा मांगता फिरता था, वहीं अब दुलाल साहा की लम्बी-चौड़ी जूट की आढ़त है। वे ही व्यापारी आज दुलाल के आगे हाथ बांधे खड़े रहते हैं। पूरे किशनगंज के जूट के बाजार को दुलाल साहा ने अपनी

मुट्ठी में कर लिया है। लेकिन चेहरा, पहनावा, चालचलन या व्यवहार में कुछ भी फर्क नहीं है। आज भी रोज़ सुबह दुलाल साहा घाट जाता है। साथ में एक नौकर जाता है, गमछा और बाल्टी लेकर। पहले सीढ़ी के ऊपर बैठकर पूरे बदन में तेल-मालिश होती है। जाड़ा हो, गर्मी हो या बरसात, जो भी हो, सुबह चार बजे दुलाल साहा को नियम से घाट पर देखा जा सकता है। नावों में लोग अभी सोते ही होते तो इतनी सुबह दुलाल साहा वहां बैठकर अच्छी तरह से तेल-मालिश करता। इसके बाद बाल्टी में पानी लेकर अपने हाथ से रगड़-रगड़कर सीढ़ियों को धोता। सब कुछ अच्छी तरह धो-पोंछकर दुलाल साहा का नहाना होता, पूरे एक घंटे। तब तक लोगों का आना शुरू हो जाता। व्यापारी आएंगे। किशनगंज बाजार के दुकानदार जागेंगे तब तक दुलाल साहा का स्नान-ध्यान हो लेता।

"पालागन साहाजी!"

"जीते रहो। कौन, मुकुन्द?"

झुटपुटे में ठीक से दिखलाई नहीं पड़ता। लेकिन दुलाल साहा आवाज़ पहचानता है। एक बार पहचान पड़ते ही पूरी तरह पूछ-ताछ करता है दुलाल साहा।

पूछता, "तुम्हारे जमाई की क्या खबर है मुकुन्द? चिट्ठी-पत्री लिखता है? अरे हां, तुम्हारी गाय ब्यायी या नहीं? हरि-हरि, अरे हर कोई सुखी रहे इसीमें तो सुख है मुकुन्द, हरि छोड़ किसीका भरोसा नहीं है। सुख-दुःख के भवसागर से अकेला हरि ही तारणहार है। अच्छा तो चलूं—हरि-हरि।"

हां, तो दुलाल साहा ने झूठ नहीं कहा था। भवसागर के तारणहार हरि ही हैं, यह बात दुलाल साहा ने अपने जीवन से चरितार्थ कर दिखाई थी। नहीं तो, क्या था और क्या है! वह हरिसभा आज भी है, लेकिन दुलाल साहा की चौहद्दी में, वहां आज दुलाल साहा की गायें बंधती हैं।

दुलाल साहा कहता, "तुम लोग नहीं समझोगे। तुम लोग सोचते हो, दुनिया में पैसा ही सब कुछ है, अरे पैसा ही सब कुछ होता तो दिन-

भर हरि-हरि क्यों करता ? इसके बगैर भी तो काम न चलता !"

लोग कहते हैं, "जी, आप ठहरे भगत आदमी ! आपके साथ किसकी बराबरी हो सकती है ?"

दुलाल साहा का मिजाज खराब हो जाता। कहता, "फिर वही बात। भगत होना क्या इतना आसान काम है ? भक्ति-भक्ति चिल्लाने से ही क्या भक्ति आ जाती है ? भक्ति के लिए कष्ट उठाना पड़ता है। भक्ति क्या पेड़ों में पकती है कि जब जी चाहा तोड़ा और खाया ? भक्ति के लिए मशक्कत नहीं करनी पड़ती ? अगर यही होता तो हरिसभा शुरू होने के बाद कामकाज छोड़कर मैं हरिनाम ही करता होता। हरिसभा बंद क्यों कर दी ? हरविलास, कहो तो, तुम्हीं कहो, हरिसभा क्यों बंद कर दी मैंने ?"

हरविलास ने कहा, "जी, अपनी गायें बांधने के लिए !"

"धत् ! तेरा हरविलास नाम बेकार है ! गायें क्या मैंने दूध पीने के लिए रखी हैं ? गाय का दूध क्या मैं बाज़ार से नहीं मोल ले सकता ? मेरे पास पैसे नहीं हैं ?"

"जी, सो तो नहीं कहा मैंने।"

"बुद्धू कहीं का !"

पास ही कान्त बैठा था। उसने कई बार सुनी है यह बात। जवाब भी उसे मालूम है। उसने कहा, "अजी, वो तो साहाजी ने गो-सेवा करने के लिए रख छोड़ी है।"

दुलाल साहा मुसकराता हुआ कहता, "तू भी तो गवार आदमी है। लेकिन तुझे मालूम है, और इस हरविलास को नहीं मालूम। अरे गो-सेवा और हरिनाम सुनने में भी क्या कोई फर्क होता है बेवकूफ ! अच्छा, निकाल, कितना लेकर आया है, निकाल।"

एक ओर धर्म-चर्चा चलती तो साथ में महाजनी का धंधा भी। सूद के हिसाब से आने-पाई लेकर झिकझिक होती। यह तो दुलाल साहा की परोपकार-परायण वृत्ति है। कितने गरीब दुःखीजन, बेचारे, पैसे के अभाव में अपने थाली-लोटा तक बेचकर दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हैं। उन लोगों की भलाई के लिए ही यह महाजनी का धंधा करना पड़ रहा है।

एक तरह से इसे धंधा कहना ही भूल है। अन्याय है।

दुलाल साहा रोज मुंह अंधेरे ही उठकर नदी जाकर अपने हाथों घाट धोकर नहाना शुरू करता है। बाल्टी और झाड़ू लिए नौकर ऊपर खड़ा रहता है। नहाने के बाद भीगे कपड़ों में ही रास्ते भर गंगास्तोत्र का पाठ करते-करते साहाजी घर आते। तब तक नई वहू पूजा का जुगाड़ करके तैयार रहती। घर पहुंचकर दुलाल साहा को कुछ भी कहने की जरूरत नहीं पड़ती। नहा-धोकर, रेशमी धोती पहन, भीगे बालों, नई वहू पहले से ही पूजा का सारा इंतजाम कर रखती।

शुरू-शुरू में दुलाल साहा कहता, "तुमने क्यों तकलीफ की फिजूल में ? निधू तो था।"

नई वहू इस बात का कोई जवाब नहीं देती। ससुर के पूजा पर बैठने और उसके जलपान की व्यवस्था करने के बाद उसकी छुट्टी होती थी। सिर्फ ससुर ही क्यों, पूरे घर में हर किसीका खयाल रखने वाली एक नई वहू ही थी!

दुलाल साहा कहता, "अब नई वहू की ही बात लो, इस नई वहू के बगैर इस घर में पत्ता भी नहीं हिल सकता, यह भी तो हरि की कृपा से ही हुआ। हरि की कृपा के बिना क्या यह नई वहू मुझे मिलती ? क्यों रे कान्त, बोल न—मिलती मुझे ऐसी वहू ?"

कान्त कहता, "अरे साहाजी, वो कोई मनुष्य थोड़े हैं, वो तो साक्षात् लक्ष्मी हैं, लक्ष्मी।"

एक तरह से नई वहू के पांव रखने के बाद से ही दुलाल साहा के घर लक्ष्मी का वास शुरू हुआ। मकान पहले से ही था, पैसा भी था। लेकिन गृहस्थी में सुख-शांति नाम की जो चीज है, वह नई वहू के साथ ही आई। नई वहू के आने के बाद ही से दुलाल साहा की बढ़ोतरी हुई है। तीन मकान बनवा लिए हैं। धान की मिल लगाई है। रिहाइशी घर के पास लम्बा-चौड़ा पक्का दालान बनवाया है। अब एक शुगर मिल लगाने की इच्छा है। पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर शुगर मिल के लिए बड़े मौके की जगह रहेगी। पानी, कोयला, स्टेशन सब कुछ पास ही है। किसी बात की असुविधा नहीं होगी। मालिक के पास खुद कितनी बार

जा चुका है। निवारण को भी कितनी बार बुला चुका है।

उसने कहा, "अब तो तुम्हारी भी उम्र हुई निवारण, अब कुछ बाद के लिए भी सोच लो।"

निवारण कहता, "अरे साहाजी, मुझे अब किसके लिए सोचना है!"

दुलाल साहा ने कहा, "सोचते हो, हमेशा ऐसे ही चलेगा ? अरे मुझे ही देख लो न, मैं चाहूं तो क्या रईसी नहीं कर सकता ? चाहूं तो मैं भी पैर पर पैर चढ़ाकर आराम से गद्दी के ऊपर पड़ा रह सकता हूं। मुझे क्या पड़ी है कि हाथ में झाड़ू लिए सुबह-सुबह घाट पहुंचूं ? यह सब किसके लिए करता हूं ? तुम्हीं कहो, किसके लिए करता हूं ?"

"जी, परलोक के लिए !"

"तो फिर ? इसीसे समझ लो। मुझे क्या है? मुझे क्या जरूरत है पैसों की ? अकेला मैं कितना खाऊंगा ? शुगर मिल हो जाने से भी तुम्हीं लोगों का फायदा है। देश के दस जनों को फायदा होगा। इस देश के लोग बड़े गरीब हैं। एक वक्त मैं भी गरीब था, गरीबों का दुःख मैं नहीं समझूंगा तो कौन समझेगा ! तुम्हारे मालिक समझेंगे ?"

"जी, मालिक की बात छोड़ दें।"

"तब समझ लो, शुगर मिल से लोगों का ही फायदा है। कितने गरीबों को काम मिलेगा, दो जून खाने को मिलेगा, पहनने को मिलेगा, गरीबों का दुःख देखकर मेरी आंखें भर आती हैं निवारण !"

निवारण ने कुछ नहीं कहा। चुप ही रहा।

दुलाल साहा ने कहा, "अरे, अपनी ही बात लो, पिछले पन्द्रह साल से तुम्हें देख रहा हूं, पहले तुम्हारा क्या चेहरा था और अब क्या हो गया है ? ऐसा कौन-सा लालच है कि मालिक के यहां पड़े हो ? खाने को मिलता है भरपेट ? और तनख्वाह वगैरह ?"

निवारण ने फिर भी कोई जवाब नहीं दिया।

दुलाल साहा कहता रहा, "खैर, जाने दो, तुम्हें खाने को मिलता है या नहीं मिलता, तनख्वाह मिलती है या नहीं, मुझे क्या पड़ी है इन सब बातों में जाने की। तुम्हारा मामला है, तुम समझोगे, मैं कौन होता हूं ? मैं कुछ भी नहीं हूं। लेकिन बात असल में यह है कि दूसरे का दुःख

मुझसे देखा नहीं जाता। जी कसकने लगता है। फिर मुझसे चुप नहीं रहा जाता। लगता है, आखिर तुम भी तो इंसान हो, बाल-बच्चे भले ही न रहें, फिर भी आदमी का अपना सुख-दुःख जैसा भी तो कुछ होता है। इसीसे कह रहा था कि पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर की बात तय करा देते तो तुम्हारे लिए भी कुछ हो जाता, लेकिन तुम तो···"

"बाबा !"

अचानक नई बहू आ पहुंची।

दुलाल साहा ने कहा, "बस, उठ ही रहा था बेटा, निवारण से उस पपुलबेड़ के पास वाली आहर के बारे में कह रहा था। अरे, मेरा क्या है, यहां के लोगों का कुछ भला हो जाता शुगर मिल हो जाने से।"

नई बहू की ओर देखकर निवारण उठ खड़ा हुआ, "मैं चलूं साहाजी, आपको नाहक देर हो गई।"

दुलाल साहा ने कहा, "मेरी बात ध्यान में रखना निवारण, कहो तो एक बार निताई को फिर भेज दूंगा मालिक के पास।"

अचानक नई बहू बोल उठी, "इतने अपमान के बाद भी काका को भेजेंगे मालिक के पास ? फिर अपमान हुआ तो ?"

दुलाल साहा ने कहा, "धर्म के मारग में बाधा तो होती ही है बेटा, थोड़े-से मान-अपमान के लिए धर्म तो नहीं छोड़ा जा सकता है।"

"लेकिन ओछे लोगों से दूर रहना ही क्या ठीक नहीं है बाबा ?"

निवारण को बर्दाश्त नहीं हुआ। उसने कहा, "मेरे सामने बूढ़े आदमी को बुरा-भला ना ही कहतीं तो अच्छा होता बहूरानी ! उन्होंने तो कोई अपराध किया नहीं है !"

नई बहू ने कहा, "देखिए, अंदर से सब कुछ सुना है मैंने, बाबा धर्म-भीरु आदमी हैं, इसीसे इतना सब होने के बाद भी आपको बुलाकर भलमनसाहत का व्यवहार करते हैं, मैं होती तो दूसरा ही व्यवहार करती।"

निवारण ने कहा, "तुम्हें सब कुछ मालूम नहीं है बहूरानी ! तुम किशनगंज में नई आई हो, इसीसे ऐसा कह रही हो। मालिक को मैंने बचपन से देखा है। अगर ऐसा ही होता तो इस हालत में मैं उनके पास

नहीं पड़ा रहता।"

दुलाल साहा ने बात लपक ली। उसने कहा, "मैं भी यही कह रहा हूं। बेकार वहां पड़े-पड़े लात-घूंसे क्यों खा रहे हो निवारण ? मैं डबल तनख्वाह देता हूं, चले आओ। यहां सुगर मिल खुलते ही और मोटी तनख्वाह मिलेगी।"

निवारण ने मुसकराकर कहा, "ज्यादा लालच न दिखलाएं साहाजी, यह जीवन तो गया ही, अब परलोक नहीं बिगाड़ना चाहता।"

"यही क्या तुम्हारा आखिरी फैसला है ?"

नई बहू बोल उठी, "आप अब उठिए भी बाबा, ऐरे-गैरे आदमियों के साथ बात करके आप अपना मिजाज खराब न करें। निताई काका हैं ही। पेंडुलबेंट के पास वाली आहर ये लोग कैसे रख पाते हैं, देखती हूं मैं।"

कहकर नई बहू दुलाल साहा का हाथ पकड़कर अंदर ले गई।

निवारण वापस आ रहा था, तभी अंदर कचहरी में कान्त ने पुकारा, "सरकार बाबू, सुनिए जरा !"

निवारण ने अंदर जाकर कहा, "क्या कह रहे थे कान्त ?"

"यही कि आप जैसा अहमक मैंने कोई नहीं देखा। अरे, ऐसा मौका कोई जाने देता है हाथ से !"

"कैसा मौका ? जरा ठीक से कहो न ?"

"कहता हूं कि मालिक अब कितने दिन हैं, जो कुछ बाकी था, वह भी जाने को ही है। यही तो वक्त है अपना ठिकाना बैठाने का।"

निवारण ने उसी फीकी हंसी के साथ कहा, "इतने दिन देखकर भी मुझे पहचाने नहीं कान्त ! हर आदमी क्या इस तरह इंतजाम कर पाता है या करना चाहता है ? या कि हर किसीमें ऐसा करने की प्रवृत्ति ही होती है ?"

कहकर निवारण और नहीं रुका। धूप चढ़ आई थी। छाता खोलकर पैर बढ़ा दिए।

जिस रात पूड़िया तले जाने की महक से मालिक की नींद खराब

उससे पहले दिन एक और घटना हो गई थी।

किशनगंज के लोगों ने साधारणतः ऐसी घटना कभी नहीं देखी। ...ी सुनी तक नहीं। दुलाल साहा जिस तरह मुंह-अंधेरे नौकर को लेकर ...च्छामती जाता था, नहाने के लिए, उस रोज़ भी गया था। हलका-सा ...धेरा था। सुबह नहीं हुई थी ठीक से। अचानक देखा, जैसे पीपल के ...ड़ के नीचे कोई निश्चल समाधि लगाए बैठा है। देखते ही जैसे लगा, इतने रोज़ से दुलाल साहा सर्वान्तःकरण से इन्हींको खोज रहा था।

यह बात सुबह चार बजे की है। और दस बजते-बजते पूरे किशन-गंज में हल्ला हो गया कि दुलाल साहा के घर साधु महाराज पधारे हैं। साहाजी उनसे दीक्षा लेंगे।

ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर सुकान्त नई रोशनी का लड़का है। कलकत्ते से नया-नया किशनगंज आया है। साइकल पर ऑफिस जा रहा था। अचानक दुलाल साहा के मकान के आगे भीड़ देखकर रुक गया।

"क्या बात है? भीड़ क्यों है इतनी?"

सुकान्त को देखते ही निताई बसाक भागा-भागा आया, "आइए साहब, आइए...बड़े मौके से आए..."

"बात क्या है निताई बाबू, हुआ क्या है?"

"अरे, आप लोग ठहरे साहब आदमी, आप इन बातों पर यकीन नहीं करेंगे। बात है भी बड़े आश्चर्य की। एकदम त्रिकालदर्शी हैं, भूत-भविष्य-वर्तमान सब साफ-साफ बतला देते हैं। मैं तो खुद ही ताज्जुब में पड़ गया। जो-जो बोला, एक-एक अक्षर मिल गया।"

बी० डी० ओ० सुकान्त के पल्ले बात नहीं पड़ी। उसने कहा, "कौन? कौन है वह आदमी? कहां से आया है?"

आदमी नहीं है, एकदम पहुंचे हुए महापुरुष हैं। हिमालय से आ... हैं, और कल वापस हिमालय ही चले जाएंगे।"

सुकान्त ने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला। एक सिगरेट सुल... कर साइकल पर सवार होते-होते उसने कहा, "छोड़िए भी निताई ब... यह सब आप लोगों का 'सुपरस्टिशन' है, अब और किसीके आगे न... बैठिएगा। लोग मज़ाक बनाएंगे।"

निताई बसाक ने साइकल का हैंडल पकड़ लिया, बोला, "ऐसी बात नहीं है, आप सिर्फ एक बार चलकर उनका चेहरा देख लें। लगेगा, नेत्रों से जैसे ज्योति निकल रही है।"

"बस रहने भी दीजिए, कहीं आपकी उस ज्योति की चमक में होश-हवास खो बैठा तो मुश्किल हो जाएगी, मैं चलूंगा।" कहकर बी० डी० ओ० सुकान्त साइकल पर सवार होकर सिगरेट के कश खींचता चला गया। लेकिन इससे भीड़ पर कोई असर न पड़ा। जैसे-जैसे दिन चढ़ता जा रहा था, भीड़ भी बढ़ रही थी। हल्ला हो गया था, दुलाल साहा के घर साधु महाराज पधारे हैं, साहाजी उनसे दीक्षा लेंगे। दुलाल साहा की आढ़त में जितने लोग आए थे, निताई बसाक ने उन सभीको निमंत्रित किया था।

"आज रात को आना है हाजरा बाबू! गुरुदेव का प्रसाद है।"

नाव से आनेवाले व्यापारी, रात नाव में बिताकर सुबह-सुबह किशनगंज से रवाना हो जाते। एक पार्टी आती, एक जाती। इसी तरह दिन-भर चलता। कोई-कोई किशनगंज के बाजार में इधर-उधर भी रात बिता लेते। लेकिन उस रोज सिर्फ हाजरा बाबू ही नहीं, पोद्दार बाबू, पाल बाबू और दास बाबू सभीने प्रसाद पाया। खालिस देशी घी की तली गरम-गरम पूड़ियां, कुम्हड़े की तरकारी, दाल, दही और खीर सब कुछ। इस तरह खाना कोई नई बात नहीं थी। व्यापारी लोग इस तरह साहजी के यहां बहुत बार खा चुके हैं। किशनगंज के लोग भी खाते। ब्राह्मणों के लिए अलग व्यवस्था होती, शूद्रों के लिए अलग।

सुकान्त बाबू के बंगले पर खुद निताई बसाक गया था निमंत्रण देने। सुकान्त ने कहा, "खाने में हमें किस बात की आपत्ति होगी, लेकिन श्रद्धा-भक्ति हम लोगों में नहीं है। इन ढकोसलों का कोई असर नहीं होता हमपर।"

"ठीक है, भक्ति न सही। लेकिन आपको आना है; दुलाल ने बहुत-बहुत करके कहलाया है। हां, और आपकी पत्नी भी आएगी।"

सुकान्त ना-नुकर करता रहा; निताई बसाक ने कहा, "आपको कोई तकलीफ नहीं होगी, गाड़ी भिजवा दूंगा, आप आइएगा और साधु ---

चले आइएगा।"

सुकान्त ने हंसकर कहा, "कुछ चढ़ाना पड़ेगा आपके साधु महाराज ?"

"अरे, नहीं-नहीं। ऐसे-वैसे साधु नहीं हैं ये, एक पैसा नहीं छूते। फल-फल छोड़कर कुछ भी नहीं खाते। दुलाल क्या ऐसे ही दीक्षा ले रहा है उनसे ?"

जरा रुककर फिर बोला, "आपको यकीन नहीं होगा, लेकिन जिससे जो कह रहे हैं, एकदम मिल रहा है। कब अमरूद के पेड़ पर चढ़ते वक्त गिरकर मेरा पांव टूटा, सब बतला दिया, दुलाल की तो पूछिए ही मत, सुबह से ही उनके पांव पकड़े बैठा है।"

"क्या कहते हैं ! दुलाल बाबू के बारे में भी कुछ कहा है क्या ?"

"कुछ क्या, सब कुछ बतला दिया है। कुछ भी बाकी नहीं है। दुलाल से कहा है कि 'गुड टाइम' शुरू हो रहा है। अब वह मिट्टी को हाथ लगाएगा और वह सोना हो जाएगी।"

सुकान्त ने कहा, "मेरा हाथ देखकर मेरा 'फ्यूचर' बतलाएंगे आपके साधु महाराज ? जन्म-पत्री तो है नहीं मेरी।"

"कहते क्या हैं ! हाथ दिखलाने की भी जरूरत नहीं है। आपका चेहरा देखते ही आपका भूत-भविष्य सटासट कह डालेंगे। आप जानना क्या चाहते हैं ?"

सुकान्त ने कहा, "जरा अपने कन्फर्मेशन के बारे में पूछकर देखता ! राइटर्स बिल्डिंग में इतनी अंधेरगर्दी चल रही है कि कुछ न पूछिए, मेरे पेपर दबा दिए हैं, जबकि मैं सबसे सीनियर हूं।"

निताई बसाक ने कहा, "अजीब बात है ! अच्छा, प्रफुल्ल सेन से परिचय नहीं है आपका ?"

सुकान्त, "नहीं तो, आप जानते हैं क्या ?"

"अरे साहब, मेरा परिचय किससे नहीं है, यह पूछिए? मुझसे कहा था !"

"अच्छा, अतुल्य घोष को भी जानते हैं आप ?"

"अतुल्यदा ?"

निताई बसाक मुसकराने लगा। फिर बोला, "पहले कहना चाहिए था न मुझसे ! आपने भी गज़ब कर दिया, मुझे एक बार भी नहीं बतलाया। कहा होता तो आपका काम कब का हो गया होता। सारे मिनिस्टर मेरी मुट्ठी में हैं। अब देखिए, शुगर मिल के लिए मशीन नहीं मिल रही थी, कलकत्ते में चिट्ठी लेकर सीधा दिल्ली चला गया, वहां पहुंचते ही आनन-फानन में काम हो गया।"

सुकान्त सेन खुद सरकारी अफसर है, लेकिन वह भी आश्चर्य में पड़ गया। बोला, "दिल्ली में किसे पकड़ा ?"

निताई बसाक के चेहरे पर रहस्यमयी मुसकान खिल गई, बोला, "सब कुछ बताऊंगा बाद में, सब कुछ बताऊंगा। मेरे रहते आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। दिल्ली में किसे पकड़ना है, कहिए न ! लालबहादुर शास्त्री, जगजीवनराम—कहीं भी काम हो। हर जगह की चाबी मेरे पास है।"

सुकान्त को जैसे तसल्ली मिली। उसने कहा, "ठीक है, शाम को पहुंच जाऊंगा मैं।"

निताई बसाक उठ खड़ा हुआ। बोला, "तो मैं गाड़ी भेज दूंगा। आप लोग चले आइएगा। भोजन करने के बाद गाड़ी छोड़ आएगी।" कहकर निताई बसाक चला गया।

रात काफी हो गई थी तब—पूड़ियां तले जाने की महक से हवा भर उठी थी। दुलाल साहा के घर के सामने तालाब के किनारे जूठे केले के पत्तों का ढेर लग गया था। आसपास के गांवों से भी लोग आकर खा गए हैं। साहाजी को इतने रोज बाद गुरु मिला है। दुलाल साहा ने न्योता देने में कंजूसी नहीं की। सब हरि-इच्छा है। भवसागर में हरि को छोड़ किसी का कोई भरोसा नहीं है। लोग आते और गुरु महाराज के दर्शन कर चढ़ावा चढ़ाकर चले जाते। एक बड़े-से चांदी के थाल में रुपये, पैसे, नोट तथा चांदी-सोने के सिक्कों का अंबार लग गया था। गुरु महाराज मख-मल की खोल चढ़ी डनलप की गद्दी पर विराजमान थे। रेशमी [illegible] गुरु महाराज को लपेट दिया है दुलाल साहा ने। गुरु महाराज [illegible]

निर्विकार हैं। दुलाल साहा का नौकर दोपहर बाद से ही खड़ा-खड़ा चमर डुला रहा था। माथे के ऊपर बिजली का पंखा मनमना रहा है लेकिन गर्मी नहीं कटती। धूप और धूनी से पूरा वातावरण धुआंसा हो गया है। गुरु महाराज का चेहरा भी धुएं के मारे धुंधला हो गया है। अच्छी तरह से देखने पर पता चलता है, दुलाल साहा साधु महाराज के पैरों के पास उलटा पड़ा है, उसके दोनों हाथ महाराज के चरण जकड़े हैं।

शाम से यही चल रहा है। जो भी आता, वही दुलाल साहा की भक्ति देखकर मुग्ध हो जाता। आंखें भर आती हैं। बी० डी० ओ० सुकान्त सेन पत्नी के साथ आया था। पहले इतना विश्वास नहीं हो रहा था। हमेशा से नास्तिक प्रवृत्ति का रहा है···साधु-संन्यासी या भगवान-वगवान के प्रति श्रद्धा नहीं रही। वह तो निताई बसाक पीछे पड़ गया, इसीसे चला आया, लेकिन आने के बाद साधु महाराज को देखकर और उनकी बात सुनकर आश्चर्यचकित रह गया।

आते वक्त न जाने क्या हुआ, जेब से पांच रुपये का एक नोट निकालकर चांदी के थाल में रख दिया।

बाहर निकलते ही निताई बसाक ने पकड़ा। बोला, "कहिए, जो कह रहा था, सब मिल गया या नहीं ?"

सुकान्त की पत्नी पास ही खड़ी थी। बोली, "सच, बड़ी अद्‌भुत बात है !"

सुकान्त ने पूछा, "साधु महाराज क्या कल सुबह ही चले जाएंगे ?"

"जी हां, सुबह चार बजे नाव में चढ़ा देना है। किसी भी तरह राजी नहीं हुए। एकदम विरागी हैं, लोगों के बीच रहना ही नहीं चाहते। दुलाल वाकई बड़ा पुण्यवान है कि उसे ऐसे गुरु मिले। एक फोटो उतरवा ली है, उसीको मढ़वाकर पूजा होगी।"

दोनों को फिर से गाड़ी में बैठाकर घर पहुंचवा दिया निताई बसाक ने। उधर व्यापारी लोग भी दर्शन करने और भेंट चढ़ाकर प्रसाद पाने के बाद चले गए। हाजरा बाबू, पोद्दार बाबू, पाल बाबू और दास बाबू सभी बड़े खुश थे। दुलाल साहा भक्त आदमी हैं। भक्ति के बिना इतना अच्छा गुरु किसे मिलता है ? सभी कहने लगे, कलियुग में भक्ति ही एकमात्र

पथ है।

मानिक ने आने से पहले कई बार सोचा था। दुलाल साहा के घर जाने से पहले अच्छी तरह सोचना ठीक था। दुलाल साहा सिर्फ जूट का आढ़तिया ही नहीं था, मानिक के जीवन का मूर्तिमान दुष्ट ग्रह भी था वह।

निवारण ने भी कहा था, "मालिक, आप वहां न ही जाते तो अच्छा रहता। दुलाल साहा आदमी भला नहीं है।"

दुलाल साहा अच्छा आदमी नहीं है, सो क्या मालिक नहीं जानते? अच्छी तरह से जानते हैं। यह बात मानिक से ज्यादा अच्छी तरह इस किशनगंज में और कोई नहीं जानता।

फिर भी उन्होंने कहा, "नहीं निवारण, मेरे गए बगैर काम नहीं चलेगा—चल।"

"लेकिन इस वक्त, इतनी रात में!"

मालिक ने कहा, "कल तक तो तुम्हारे साधु महाराज रुकेंगे नहीं।"

बात ठीक ही थी। कल सुबह ही चले जाएंगे। आज रात को गए बगैर कैसे होगा! निवारण सोने की तैयारी करीब-करीब कर ही चुका था। अचानक मालिक को न जाने क्या हुआ, खड़ाऊं खटखटाते ऊपर से चले आए।

बड़ी बहूजी उस रोज भी सरसों का तेल गर्म करके लाई थीं। लेकिन मालिक को अचानक कमरे में न देख चौंक उठी थीं। ऐसा तो नहीं होता। मानिक हमेशा खा-पीकर अपने पलंग पर आ लेटते हैं, लेकिन आज अचानक यह व्यतिक्रम क्यों? सो बड़ी बहूजी की समझ में नहीं आ रहा था। बगलवाले कमरे में आवाज सुनकर उन्हें और भी अजीब लगा।

"तुम यहां?"

मालिक तब खुद ही सन्दूक खोल रहे थे। काफी पुराना सन्दूक था। मानिक के प्रपितामह कानिकेश्वर देवशर्मन् के जमाने का। बन्द ही रहता। सन्दूक का लोहे का पल्ला खोलते ही जैसे युग-युग से जमा करके रखा अतीत दांत निकालकर हंस पड़ता। ऊपर कुछ पीतल और कांसे के

र्तन। उनमें से भी अधिकतर निकल चुके हैं। सिद्धेश्वर के विवाह पर बहुत-से बर्तन निकले थे। बाद में पता नहीं कहां गायब हो गए। एक-एक कर सारे बर्तन गायब हो गए। मालिक की नज़रों के आगे आज भी वह सब घूम रहा था। विवाह तो अच्छा-खासा ही हुआ था सिद्धेश्वर का, लेकिन यही दुलाल साहा ! दुलाल साहा ही दिन-रात भड़काया करता। न जाने कौन-सा मंत्र फूंक रखा था उसने ! जब देखें तब उन्हीं लोगों में जमा है।

एक रोज़ मालिक ने डांट दिया था। उस रोज़ भी काफी रात हो गई थी। सिद्धेश्वर अभी तक घर नहीं लौटा था। शादी हो गई। एक लड़की का बाप हो गया लेकिन आवारागर्दी नहीं गई सिद्धेश्वर की। उस दिन मालिक ने निवारण से कह रखा था कि सिधू के आते ही उन्हें खबर करे।

वहू से भी कह रखा था। नलहाटी के गगन चटर्जी की लड़की को वहू बनाकर लाए थे मालिक। मालिक ने कहा था, "तुम ज़रा कड़ी नहीं हो सकतीं बहूरानी ?

"मेरा लड़का होकर इस तरह फालतू लड़कों के साथ घूमता फिरता है ! मेरे मुंह पर कालिख पोत दी है इसने। अब इस उम्र में यही देखना बाकी बचा है !"

किसी-किसी रोज़ निवारण से भी पूछते, "अच्छा, इन लोगों के साथ यह आखिर जाता कहां है ?"

निवारण को मालूम सब था, लेकिन कहने की हिम्मत नहीं होती थी उसको। निवारण ने कितनी ही बार देखा है चंडीतला के घाट पर दुलाल साहा और निताई बसाक के साथ बैठे छोटे बाबू चिलम फूंक रहे हैं। एक तरह से निताई बसाक ही छोटे बाबू का जिगरी दोस्त था। दिन-भर कानाफूसी होती और फिर किसी रोज़ सारे दिन गायब। रात जब आधी बीत गई होती तो दबे पांव घर में घुसता।

"तुम ज़रा सख्त नहीं हो सकतीं बहूरानी ? ये सब-के-सब गुंडे हैं दुलाल साहा, निताई बसाक सब गुंडे हैं, एक-एक।"

बहूरानी ने कभी ससुर की ओर नज़र उठाकर देखा तक नहीं, प नहीं ये बातें उसके कानों तक जाती हैं या नहीं। बड़ी बहूजी भी उ

कुछ नहीं कहतीं।

मानिक वही बहूजी से भी पूछते, "अपना सिधू जाता कहां है ? तुम्हें मालूम है कुछ ? इतनी रात तक करता क्या है ?"

वही बहू कहतीं, "मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम !"

"तुम्हें अगर मालूम नहीं है तो लड़के की मां किसलिए बनी ?"

इसके बाद जैसे मानिक पर सनक सवार हो गई। एक रोज दीवान-खाने के आगे ही बैठ गए। बोले, "आज इस पार या उस पार..."

क्रमश: रात बढ़ती गई। मानिक बैठे रहे, निवारण भी बैठा रहा। आखिर निवारण ने कहा, "आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। आप जाकर आराम करें।"

मानिक ने कहा, "तुम चुप रहो निवारण, अगर तुम्हारा लड़का होता तो पता चलता कि लड़के का बाप होने की क्या ज्वाला होती है ! जिसके ऐसा लड़का हो, उसे नींद आती है ? उसे चैन मिल सकता है ?"

इसके बाद कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं हुई थी निवारण की।

रात के बारह बजे। एक बजा। मानिक वहीं जमे रहे। किसीकी एक न सुनी। बाद में भोर होते-होते जैसे मानिक का सिर घूमने लगा। वहीं बैठे-बैठे ही चक्कर खाकर गिर पड़े। अगले दिन डॉक्टर आए। पूरे छः महीने चारपाई पकड़े रहे मानिक। जब उठे तब सिर की गंज और भी बढ़ गई थी। छः महीने में जैसे दस साल के बूढ़े हो गए हों।

यह घटना भी पन्द्रह साल पहले की है।

पन्द्रह साल पहले जब दुलाल साहा और निताई बसाक किशनगंज में हरिसभा खोलने का हिसाब बैठा रहे थे, मानिक की सात बीघे जमीन पर दुलाल साहा अपना मकान खड़ा करने का मंसूबा बांध रहा था, तभी से सिद्धेश्वर उन लोगों के गुट में जा मिला था।

एक रोज मानिकने सिद्धेश्वर से सीधे ही पूछ लिया, "तुम इन लोगों से क्यों मिलते हो ?"

मानिक के आगे कभी मुंह खोलने की हिम्मत नहीं हुई सिद्धेश्वर की।

"बोलते क्यों नहीं ? इन लोगों से क्यों मिलते हो ? ये लोग क्या

तुम्हारे साथ उठने-बैठने के काबिल हैं ?"

सिद्धेश्वर इसपर भी कुछ नहीं बोला।

मालिक ने फिर से कड़ी आवाज़ में कहा, "न जाने कहां के आवारा और गुंडे, जिनकी जात तक का ठीक नहीं, तुम्हारे यार-दोस्त हैं ! जो लोग तुम्हारे बाप का अपमान कर जाते हैं, उनके साथ उठते-बैठते शर्म नहीं आती तुम्हें ? बेवकूफ कहीं के !"

ज़रा रुककर फिर बोले, "अब फिर कभी उन लोगों से मिले तो घर से बाहर कर दूंगा; याद रहे..."

अचानक जैसे किसीने बारूद में आग लगा दी। सिद्धेश्वर ऐसे ही सीधा-सादा और निरीह किस्म का रहा है। बचपन से ही कभी मालिक के आगे सिर उठाकर बात नहीं की। लेकिन उस रोज़ पता नहीं क्या हुआ। सिद्धेश्वर ने पहली बार सिर उठाया।

उसने कहा, "आपके घर में रहना भी नहीं चाहता मैं।"

"क्या ? क्या कहा ? क्या कहा तुमने ?"

सयाना जवान लड़का, लेकिन मालिक शायद उस रोज़ गुस्से के मारे होश-हवास खो बैठे थे। बोले, "क्या कहा तुमने, फिर से कहो ज़रा ?"

मालिक ज़ोर-ज़ोर से चीखकर ही बोल रहे थे। चीखकर बोलने की आदत है उनकी। चीख-पुकार सुनकर अंदर से बड़ी बहूजी चली आईं। बहू के कान तक भी आवाज़ गई। मालिक की चीख-पुकार से वह खाली मकान जैसे हाहाकार कर उठा। निवारण सामने होते हुए भी कुछ बोलने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था।

"आपके घर में अब और रहना भी नहीं चाहता मैं।"

और साथ ही चटाक से चांटा पड़ने की आवाज़ हुई। मालिक के बूढ़े हाड़ का चांटा, जवान सिद्धेश्वर की कनपटी सन्ना उठी।

निवारण डर से कांपने लगा। बड़ी बहूजी भी कमरे में आकर यह सब देख भौचक रह गईं।

मालिक थर-थर कांप रहे थे। कहने लगे, "जितना बड़ा मुंह नहीं, उतनी बड़ी बात ! घर में नहीं रहना चाहता तो निकल जा। निकल जा मेरे घर से..."

बड़ी बहूजी ने बात और बढ़ने नहीं दी उस रोज। सिद्धेश्वर का हाथ पकड़कर सीधे अंदर चली गईं। इसके बाद जितने रोज सिद्धेश्वर घर में था, बाप के साथ बोलचाल बंद रही। एक बार किसी तरह घर आता। वह भी काफी रात बीतने पर। कब आता, कब सोता और कब खाता— मालिक को कुछ भी पता नहीं चलता। शुरू-शुरू में तो लड़के का नाम तक जबान पर नहीं लाते थे।

काफी रोज गुजरने के बाद अपने को नहीं रोक पाए। बड़ी बहूजी से पूछा, "सिधू कहां है?"

बड़ी बहूजी ने कहा, "घर में ही है।"

मालिक ने पूछा, "अभी भी उन गुंडों से मेल-जोल है?"

"सो तो नहीं मालूम।"

इतना ही।

बाद में लड़के के बारे में कुछ भी नहीं पूछते थे। लड़का घर आता है, सोता है, खाता है, कुछ भी नहीं। निवारण से मालिक कितने ही विषयों पर सलाह-मशवरा करते. लेकिन भूलकर भी कभी सिद्धेश्वर का नाम जबान पर नहीं लाते थे।

धीरे-धीरे दुलाल साहा और निताई बसाक, दोनों ने ही मालिक के पास आना-जाना बन्द कर दिया। अपनी ही आंखों सब देखते रहे, अपने कान ही सब सुनते रहे। आखिर एक रोज सिद्धेश्वर वापस नहीं लौटा। रात बीती, अगले रोज सुबह हुई। उसके बाद भी एक दिन गुजर गया। लेकिन सिद्धेश्वर वापस नहीं लौटा।

बड़ी बहूजी उस रोज आकर बोलीं, "सिधू के बारे में पता नहीं लगाया तुमने?"

"क्यों? सिधू आया नहीं है?"

"नहीं।"

"कल किस वक्त गया था?"

"कल भी नहीं आया। आज तीन रोज से सिधू का पता नहीं है। रो-रोकर बहू का बुरा हाल हो गया है।"

मालिक गुम हो गए। सिद्धेश्वर जो गया तो फिर कुछ भी पता नहीं

था। किसीने खून कर दिया, या संन्यासी हो गया, इतने साल बाद भी कोई खबर नहीं मिली। मालिक ने भी कभी उसके बारे में नहीं पूछा। कभी खोज करने की कोशिश भी नहीं की। गया है तो जाए, जाने वाले को कौन रोक पाया है!

पिछले सालों में इतना सब हो गया लेकिन मालिक ने कभी हाय-तोबा नहीं की। चौंसठ साल की उम्र में अनिष्ट योग था, यह बात काशी के शिरोमणि वाचस्पति बतला गए थे। अब चौंसठ के हो गए हैं वे। अब और कौन-सी बाधा होगी? और बाधा होने से भी क्या होना है? इसी किशनगंज में इतना सब हो गया। यह दुलाल साहा और निताई बसाक ही तो असल में उनके जीवन की दो विकट बाधाएं हैं! ये दोनों ही ऐसा क्या बिगाड़ सके उनका? सात बीघे जमीन डकार ली, डकार लें! उन्हें झांसा देकर रकम ऐंठ ली, ऐंठ लें! इससे वे कोई खास गरीब तो हो नहीं गए! इसके अलावा भी देश में कितनी उलट-पलट हो गई। अंग्रेज चले गए हैं, हिन्दू-मुसलमानों के बीच मारकाट हुई; देश में अकाल पड़ा। पद्मा पार से लोगों ने आकर डेरा डाला। उन दिनों भी तो उन्होंने भरपेट खाया। उन दिनों भी उन्हें भीख नहीं मांगनी पड़ी। आज भी वे अपनी छत के नीचे ही सो रहे हैं। अभी भी सड़क पर तो नहीं खड़ा होना पड़ रहा है उन्हें!

लेकिन दुलाल साहा के घर साधु महाराज के आने की खबर सुनकर न जाने क्यों मालिक विचलित-से हो गए। निवारण से बार-बार पूछा था, "तुमने कुछ सुना है निवारण?"

निवारण को खयाल नहीं था। उसने पूछा, "किस बारे में मालिक?"

"सुना है, जिसे जो बतलाया है, सब मिल रहा है? साधु की बात कर रहा हूं। दुलाल साहा के घर जो साधु आया है।"

निवारण ने कहा, "जी हां मालिक! हूबहू मिल रही हैं। मैं बाजार गया था तो पान बाबू मिल गए, एकदम ताज्जुब में पड़ गए। बाद में सुकान्त बाबू से भी मुलाकात हुई!"

"यह कौन है?"

"जी, वह नया सरकारी दफ्तर खुला है न, उसीके बड़े साहब हैं।"

"बड़े साहब माने ?"

निवारण ने कहा, "जी, मोटी तनख्वाह है, ब्लॉक डेवलेपमेंट ऑफिसर हैं, बहू को लिए घूमा करता है।"

"बहू को लिए घूमता है ! किसलिए ?"

निवारण ने कहा, "जी, कलकत्ते का लड़का है न। यहां जंगल में आ फंसा है। क्या करे, इसीसे कभी-कभी किशनगंज के बाजार चला आता है खरीदारी करने के लिए।"

"उसने क्या कहा ?"

निवारण ने कहा, "वह भी ताज्जुब कर रहा था। कह रहा था कि अपने मालिक से कहना कि एक बार साधु महाराज के दर्शन कर आएं; साधु सब बतला देंगे, साहबजी को बड़े अच्छे गुरु मिले हैं।"

"हां, मैं तो जाऊंगा ही उस चंडाल के घर। उस नमकहराम के घर मेरी बला जाएगी।"

इसके बाद उठते वक्त शायद फिर से एक बार पूड़िया तले जाने की महक नाक तक पहुंची। नाक को हाथ से दबा लिया, फिर पूछा, "यह साधु जाएगा कब ?"

निवारण ने कहा, "जी, कल भोर होते ही चले जाएंगे। पिछले दो रोज से खाना-पीना और उत्सव हो रहा है, आज ही अंतिम खाना है। आप जाएंगे ?"

"फिर वही बात ! मैंने जिन्दगी में कभी पूड़िया नहीं खाई।"

कहते-कहते ऊपर अपने कमरे में चले गए। खाना पहले ही खा चुके थे। बड़ी बहूजी अभी कमरे में नहीं आई थीं। बिस्तरे पर लेटते-लेटते जैसे कुछ सोचने लगे। जंगला खुला था। उस ओर कितनी रोशनी हो रही है। काफी बड़ा उत्सव हुआ है। मालिक ने उस ओर देखा। फिर धीरे-धीरे बगल वाले कमरे में गए और कमरे से चाबी निकालकर लोहे के संदूक के सामने जा खड़े हुए। काफी पुराना संदूक था। जितना पुराना संदूक, ताला भी उतना ही पुराना। इतिहास की गर्द में जैसे सब ढक गया है। एक दिन केदारेश्वर भट्टाचार्य ने यही संदूक खोलकर चांदी के सिक्के निकाले हैं, हीरे-मोती निकाले हैं। तब यह संदूक भरा

हुआ था। जमींदारी से हुई आमदनी इसी संदूक में जाती थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय धान महंगा हुआ, कीमतें बढ़ीं, सारा नफा इसी संदूक में गया। संदूक के सामने पहुंचकर कीर्तिश्वर थोड़ी देर खड़े रहे। कहां के किस लोहार का बनाया संदूक आज जैसे अचानक बड़ा सजीव हो उठा। बचपन में मां रोज़ अपने हाथों इसी संदूक पर सिंदूर लगातीं, फिर गले में आंचल लपेटकर प्रणाम करतीं। यह वही संदूक है। अभी कुछ ही दिन हुए, एक और युद्ध हो गया। कहीं जर्मनी या अमरीका में। कीर्तिश्वर को उसके बारे में मालूम भी नहीं है। सिर्फ कभी-कभी किशनगंज के ऊपर हवाई जहाज़ उड़ते देखे हैं। लोग कहते—-बर्मा में बम फेंकने जा रहे हैं। युद्ध जहां भी हुआ हो, पहले की तरह एक पैसे की भी आमदनी नहीं हुई। एक पैसा भी नहीं गया संदूक में। जमीन बेचकर आया पैसा पेट भरने में खत्म हो गया। कीर्तिश्वर वहीं खड़े एक-एक चाबी ढूंढ़-ढूंढ़कर ताले के गढ़े में लगाने की कोशिश करने लगे। अतीत के स्वप्न जैसे फिर से पंछी बन इस रात में उनके सिर के ऊपर मंडराने लगे।

"तुम यहां?"

कीर्तिश्वर चौंक उठे। अचानक पीछे मुड़कर देखा, बड़ी बहूजी थीं। इसके बाद बिना किसी दुविधा के संदूक के अन्दर हाथ डाल दिया। जैसे ढेर-सी आशाएं एक-साथ वस्तु-रूप होकर उनके हाथों से आ टकराईं। आशाएं जैसे उनकी मुट्ठी में बंधना चाह रही थीं, लेकिन अंधेरे में दिखलाई नहीं दे रही थीं। अंधेरे में उन्हें पहचानना मुश्किल है। अंधेरे में उन्हें सिर्फ अनुभव किया जा सकता है। इसलिए हाथों में जितनी आ पाईं, उन्होंने भर लीं। फिर झटपट संदूक का ढकना लगाकर कमरे से निकल आए।

बड़ी बहूजी ने पूछा, "इन्हें लेकर कहां जा रहे हो इस वक्त?"

कीर्तिश्वर ने जवाब नहीं दिया।

बड़ी बहूजी ने पीछे-पीछे दरवाज़े तक आकर फिर पूछा, "कहां जा रहे हो, बतलाया नहीं?"

कीर्तिश्वर तब तक पहुंच के बाहर निकल गए थे। उनके कान तक बात पहुंच पाई या नहीं, सो भी समझ में नहीं आया। सिर्फ उनकी

खड़ाऊं की आवाज सीढ़ी से उतरती नीचे बरामदे के पास दीवानखाने के भीतर अस्पष्ट हो गई।

तो उस रोज इतनी रात गए निवारण को साथ लिए ही इस घर में आए थे। उत्सव-आयोजन जो भी हो, इस वक्त देखकर लग रहा था, सब खत्म हो चुका है। अच्छा ही हुआ। कोई देख नहीं पाएगा। मानिक आज अर्से बाद यहां आए। उन्हींकी दी जमीन है। दुलाल साहा को हरि-सभा के नाम पर दान में दे दी थी। लेकिन उस वक्त क्या मालूम था कि यहां इतना बड़ा प्रासाद खड़ा कर लेगा दुलाल साहा और प्रासाद बना-कर खुद डेरा जमा लेगा।

"निवारण, पहले तुम ही अंदर जाओ, जाकर कहो कि मानिक आए हैं।"

"आप यहां यहां खड़े रहेंगे, वह क्या अच्छा दिखाई देगा ?"

मानिक खीझ उठे, बोले, "जो कहता हू, वही करो ना!"

इसके बाद निवारण के लिए खड़े रहना मुश्किल था। वह अंदर जाने लगा। मानिक बाहर से प्रासाद का ऐश्वर्य देखकर हतवाक् हो रहे थे। इलेक्ट्रिक भी ले ली है दुलाल साहा ने। इलेक्ट्रिक की रोशनी में सफेद पत्थर की सीढ़ियां चकचका रही थीं। थोड़ी ही दूर पर जूठे केले के पत्ते, कुल्हड़-सकोरे पड़े थे। वहां कुत्तों का झुंड जमा था। पूड़ियां तलना शायद बंद हो गया है। अब महक उतनी नहीं रह गई है। जूठे केले के पत्तों की गंध ही महक रही थी चारों ओर।

लेकिन निवारण को ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ा। सामने से शायद निताई बसाक आ रहा था। हाथों-हाथ पकड़ लिया। जरा दूर से मानिक को देखते ही दौड़कर निताई बसाक ने पांव की धूल माथे लगाई।

"अरे बस-बस, निताई, बस भी करो।"

लेकिन निताई बसाक मानने वाला नहीं था। बोला, "नहीं मानिक, पांव छुए बिना मैं यहां से उठनेवाला नहीं हू।"

आखिर मानिक ने निताई बसाक को दोनों हाथों से पकड़कर उठाया, फिर बोले, "सुना है, दुलाल के यहां कोई साधु पधारे हैं ?"

"जी हां मानिक, आप नहीं पधारे, इसलिए, दुलाल [illegible]

...त्री है, आज हम लोगों के लिए कितने सौभाग्य का दिन है !"

मालिक ने कहा, "अब पहले-सा शरीर तो रहा नहीं निताई, इसी... बाहर निकलना नहीं हो पाता ।"

"आइए, अंदर पधारें ।"

निताई बसाक आहिस्ते-आहिस्ते बड़े एहतियात के साथ मालिक को अंदर ले जाते-ले जाते कहने लगा, "यह मकान बनने पर आपके पधारने की आशा थी। बाद में दुलाल के लड़के विजय के विवाह पर भी आप नहीं आ पाए; यह क्या हम लोगों के लिए कम अफसोस की बात है मालिक ?"

मालिक चल रहे थे और हर ओर का ठाट-बाट देख हतवाक् हो रहे थे। इतना बड़ा मकान बनवाया है इस कमीने ने ! सब क्या चोरी के पैसे से ही हुआ है ? इतने रोज जो सुना था, आज उसपर से यकीन हटने लगा मालिक का। चोरी के पैसे से भला इतना कुछ हो सकता है ! केवल ऐश्वर्य ही नहीं, यह सुख, ये सफेद पत्थर, इलेक्ट्रिक लाइट, यह उत्सव ! इसके माने उन्होंने जो सुना, वह झूठ था !

निवारण पीछे-पीछे आ रहा था। मालिक ने पीछे मुड़कर कहा, "निवारण, आओ।"

जैसे निवारण के बगैर उनमें जोर नहीं आएगा। साथ में निवारण का होना जरूरी है। फिर बोले, "वह है न साथ ?"

निवारण ने कहा, "जी हां, सब है..."

फिर जैसे अपनी कमज़ोरी को छुपाने के लिए ही निताई बसाक की ओर देखकर बोले, "कुछ जन्म-पत्रिकाएं ले आया था..."

निताई बसाक ने कहा, "लेकिन जन्म-पत्रिका लाने की क्या जरूरत थी ? बाबा तो चेहरा देखकर भूत-भविष्य सब बतला देते हैं।"

मालिक को जैसे आशा बंधी, बोले, "सच ? ठीक-ठीक बतला देते हैं !"

"जी हां मालिक ! एकदम हतबुद्धि करके छोड़ दिया है हम लोगों को दुलाल ने तो कल से पल-भर के लिए भी बाबा के पांव छोड़े ही नहीं हैं..."

अचानक जैसे कोई सामने आ खड़ा हुआ, आकर मालिक को ऊपर से नीचे तक नज़रों से परखने लगा।

निताई बसाक ने कहा, "यही है हमारी नई बहू।"

"नई बहू !" मालिक पहचान ही नहीं पाए।

"जी, विजय की बहू। दुलाल की पुत्रवधू..."

विजय ? मालिक किसीको भी नहीं पहचानते। कब विजय पैदा हुआ, कब इस घर में उसकी बहू आई, ये खबरें उनके कानों तक ही पहुंची थीं। किसी को भी देखा नहीं था।

फिर भी बोले, "विजय दुलाल का लड़का है न ?"

निताई बसाक ने कहा, "जी हां, विजय तो यहां है नहीं इन दिनों, आपको देखकर काफी खुश होता !"

"कहां है वह ?"

"जी, वह तो विलायत गया है, डाक्टरी पढ़ने।"

मालिक के कान में बात तीर की तरह जा बिंधी। दुलाल साहा ने सिर्फ मकान और गाड़ी ही नहीं खड़ी की है, साथ में लड़के को भी आदमी बना दिया है। यह सभी क्या चोरी के पैसे से हुआ है ? सभी क्या झूठ और फरेब से हुआ ?

"नई बहू, आओ, इन्हें प्रणाम करो !"

मालिक चौंक उठे। बोले, "अरे, नहीं-नहीं, प्रणाम-प्रणाम की क्या ज़रूरत है ?"

नई बहू लेकिन एक कदम भी न बढ़ी। वहीं खड़े-खड़े बोली, "किसे प्रणाम करने को कह रहे हैं काका? जो आप लोगों का अपमान करता है, आप लोगों को देखते ही जो गाली-गलौज करने लगता है आप किस बुद्धि से उसीको प्रणाम करने के लिए कह रहे हैं मुझे ?"

निताई बसाक भी थोड़ा घबड़ा गया। बोला, "देखा आपने, आज-कल की लड़कियों के बात करने का तरीका ?"

नई बहू फिर भी नहीं रुकी। जीभ की धार उसी तरह तेज रखते हुए उसने कहा, "काका, आजकल की लड़कियों में भी मान-अपमान समझने की तमीज आपके इन मालिक की तरह ही भरी-पूरी है। उन्हें इतने

आसानी से नहीं वहकाया जा सकता।"

"चुप भी रहो नई वहू ! किसके साथ किस प्रकार वात की जाती है, तुम्हें नहीं मालूम। आइए मालिक, उधर वाले कमरे में ही वावा हैं— आइए···" कहकर निताई वसाक मालिक को अंदर ले आया।

सिर के ऊपर विजली का पंखा फरफरा रहा था। इसके वावजूद एक नौकर हाथ में चमर लिए वावा के माथे पर डुला रहा था। वावा के पैरों के सामने वाली गद्दी पर दुलाल साहा उल्टा पड़ा था। वावा का हाथ दुलाल के सिर पर था। निताई वसाक को ज्यादा नहीं कहना पड़ा, मालिक को एक वारगी वावा के सामने ले जाकर विठा दिया उसने। मालिक के पीछे निवारण भी वैठ गया। निताई वसाक ने जन्म-पत्रिकाओं का पुलिदा सामने डाल दिया। करीव पन्द्रह रही होंगी। पीले रंग के कागजों का गोल पुलिदा।

निताई वसाक ने आते ही पुलिदा वावा के आगे रख दिया था। जो वोलना था, सो भी वोल दिया।

धूप और धूनी की सुगंध से वातावरण जैसे स्वर्गीय-सा हो गया। केदारेश्वर भट्टाचार्य के पुत्र कीर्तिश्वर भट्टाचार्य आज स्वयं पधारे हैं दुलाल साहा के घर। यह भी जैसे एक घटना हुई है। कितने लोग ही तो आकर खा-पीकर वावा को प्रणाम कर श्रद्धानुसार भेंट चढ़ाकर चले गए। मालिक नहीं आए, इसके लिए किसीने अफसोस भी तो नहीं किया ! किशनगंज के वर्तमान इतिहास में मालिक की हैसियत है ही कितनी ? उनके आने-न-आने से किसीका क्या वनता-विगड़ता है ? लेकिन इसके वावजूद आखिर वे क्यों आए ? यह भी क्या उनकी कमजोरी है ? दुलाल साहा लोगों को ठगकर वड़ा आदमी वना है, इससे ईर्ष्या हुई है उन्हें ? नहीं तो इतनी वार खुशामद करने पर भी जव कभी नहीं आए तो आज क्या करने आए हैं ? जन्म-पत्रिका दिखाने ? उनका भी अच्छा समय है या नहीं, मालूम करने ? लेकिन वह तो शिरोमणि वाचस्पति ने चौंसठ साल पहले ही वतला दिया था। उनके जन्म के समय। आज ही तो चौंसठ साल पूरे हुए हैं उनके ! नीच कौम के संस्पर्श से उन्हें विपद है। तव क्या यहां आकर उनके लिए कोई विपद घटनेवाली है ?

मानिक ने पास बैठे निवारण की ओर देखा।

एक के बाद एक मुसीबतें उनके सिर से आंधी की तरह गुजरी है। लेकिन तब तो वे इतने दुर्बल नहीं हुए कभी। आखिर किसलिए आए हैं यहां? अपनी पीठ पर खुद ही चाबुक मारने की इच्छा हो रही थी उनकी जबकि कितने लोगों को उन्होंने ही चाबुक मारी है एक दिन। और तो और, सिद्धेश्वर के ही तमाचा जड़ दिया था। लेकिन उस रोज तो इस तरह नहीं टूटे थे वे। और बहूरानी? अगर बहूरानी उनकी तरह जग मदन हो पाती! बहूरानी भी एक रोज चली गई। मानिक को बड़ा आघात लगा था उस रोज। खुद देख-सुनकर पुत्रवधू लाए थे। सोचा था, कुलवधू के आविर्भाव से भट्टाचार्य-वंश की कुललक्ष्मी फिर से ऐश्वर्य-मंडित हो उठेगी। आज अभी दुलाल साहा की पुत्रवधू को देखकर उन्हें अपनी पुत्रवधू का स्मरण हो आया था।

पास बैठे निवारण की ओर मुड़कर बोले, "कैसी जली-कटी सुना रही थी?"

निवारण समझ नहीं पाया। उसने पूछा, "जी, किसकी बात कर रहे हैं?"

"उसी दुलाल साहा के लड़के की बहू की।" मानिक बोले, "एक बार तो मन में आया, गाल पर एक हाथ जड़ दूं।"

"जी, आप ठीक कह रहे हैं। बातचीत का तरीका ठीक नहीं है। मुझसे भी इसी तरह बोलती है।"

मानिक बोले, "इन लोगों के घर आए हैं इसीलिए कुछ नहीं कहा।"

निवारण ने कहा, "आपने उचित ही किया। आखिर पर-स्त्री जो ठहरी।"

मानिक बोले, "अरे धरे रहो अपनी पर-स्त्री। अपनी लड़की होती तो काटकर दो टुकड़े कर देता न।"

निवारण बोला, "जी, दुलाल साहा का कहना है, यह नई बहू ही इस घर की लक्ष्मी है।"

"कैसे?"

मालिक जैसे भूल गए कि कहां बैठे हैं। बोले, "ऐसा कहता है ?"

"जी हां, सो तो कहता ही है। इस बहू के आने के बाद ही दुलाल साहा की हालत पलटी है, लड़का विलायत गया, पहले किसी तरह चलता था। अब भरपूर है। यह नई बहू ही इस घर की सब कुछ है। दुलाल साहा की पत्नी तो है नहीं। पहले ही मर चुकी है।"

मालिक को ये सब सुनना अच्छा नहीं लग रहा था। यहां आकर इतनी ही देर में ऊब होने लगी। आस-पास दो-चार भक्त अभी भी हाथ जोड़े आंखें बंद किए बैठे थे। चूंकि आवाज भी नहीं हो रही थी। इस तरह चुपचाप बैठकर दुलाल साहा की भक्ति का ढकोसला देखने के लिए ही क्या वे यहां आए हैं ?

मालिक ने फिर कहा, "निवारण !"

"जी ?"

मालिक बोले, "चलो, हम लोग अब चलें, मोहर दे दो।"

निवारण अपनी फतुही की जेब से मोहर निकालकर मालिक की ओर बढ़ाने लगा। जहांगीर के जमाने की सोने की मोहर थी। एकदम पक्के सोने की मोहर।

मालिक बोले, "नहीं, तुम ही दो।"

बाबा के सामने चांदी का एक थाल रखा था। उसमें चांदी के सिक्के और नोट वगैरह पड़े थे। निवारण ने मोहर को उसीमें डाल दिया। डालते ही झन् से आवाज हुई।

मालिक ने कहा, "निताई को बुलाओ, उससे कहो कि हम लोग अ जाएंगे।"

निताई ने सुन लिया। मालिक के पास झुककर उसने कहा, "य कैसे हो सकता है मालिक ! जरा देर और बैठिए। अभी तो जन्म-पत्रि दिखलाना भी बाकी है।"

मालिक ने कहा, "रात बहुत हो गई है। अब रुकना मुश्किल सीने का दर्द भी बढ़ रहा है।"

"अच्छा, बस थोड़ी देर और बैठें।"

कहकर निताई ने बाबा के पास जाकर हाथ जोड़े, झुककर न

बता कहा। बाबा ध्यान में थे। उन्होंने आंखें खोली। फिर बोले, "भाग्य-फल ? किसका ?"

निताई बसाक ने मालिक की ओर इशारा किया। बाबा कुछ देर मालिक की ओर एकटक ताकते रहे। इसके बाद जैसे मन-ही-मन बोल उठे, "हतभाग्य ! भाग्य ने आपको परास्त किया है, मैं क्या कर सकता हूं ? मेरे हाथ में क्या है ?"

मालिक का चेहरा और भी गंभीर हो गया। उनके कुछ बोलने से पहले ही निताई बसाक ने बात संभाल ली, बोला, "जी, ये जन्म-पत्रिका लाए हैं, अगर आपकी कृपा हो तो…"

बाबा पुलिंदा खोलकर एक जन्म-पत्री देखने लगे। तभी कौन जाने क्या देखा, बाबा की दृष्टि और भी तीक्ष्ण हो गई।

मालिक तभी बोल उठे, "इसे न देखें, इनकी मृत्यु हो चुकी है।"

बाबा और भी तीक्ष्ण दृष्टि से देखने लगे। फिर पूछा, "मृत्यु हो चुकी है ?"

"जी हां, पन्द्रह साल पहले ही मर चुकी है।"

"यह जन्म-पत्री किसकी है ? आपकी क्या होती है ?"

मालिक ने कहा, "मेरी पौत्री, हरतन की…"

"आपको ठीक-ठीक मालूम है कि वह मर चुकी है ?"

निवारण भी चुपचाप सुन रहा था। अब बोला, "जी हां, बहुत रोज पहले मर गई, जीवित होती तो आज काफी उम्र होती उसकी—पन्द्रह साल पहले की बात है।"

"उम्र कितनी थी मरते वक्त ?"

निवारण ने ही जवाब दिया, "तीन साल।"

इसके बाद बाबा और भी मनोयोग से जन्म-पत्री देखने लगे। मालिक ने निवारण की ओर देखा। फिर वहीं से निताई बसाक की ओर नज़र घुमाई। क्यों, तुम्हारे साधु महाराज की पोल खुल गई न ! निवारण भी मन-ही-मन संदेह से भर उठा था। निताई बसाक भी परेशान था। बाबा की हार जैसे निताई बसाक की हार थी। दो दिन से इतने लोग आकर जांच कर गए, कोई पकड़ नहीं पाया।

मालिक ने ही जैसे पहली बार पकड़ा है। निताई बसाक को मालूम न हो, ऐसी बात नहीं है। दुलाल साहा को भी मालूम है, किशनगंज का हर आदमी जानता है। सिद्धेश्वर की पहली संतान। उसका अन्नप्राशन कितनी धूमधाम से किया था मालिक ने। पूरे मकान को नये सिरे से सजाया था। कितने लोग आकर खा-पी गए थे। तब हालत इतनी खराब नहीं हुई थी कीर्तिश्वर की। तब सिद्धेश्वर भी था।

दुलाल साहा का ध्यान जैसे इतनी देर बाद टूटा।

वह उठ बैठा, "बाबा!" कहकर भक्ति-भाव से हुंकार भरी। फिर चारों ओर देखा। निताई बसाक ने गद्गद भाव से मालिक की ओर देखा। उसके बाद ही फिर से आंखें बन्द करके बाबा के पैरों के सामने डनलप पिलो की गद्दी पर पेट के बल जा गिरा।

मालिक ने निवारण को इशारा किया। बोले, "चलो निवारण, हम लोग चलें।"

निवारण जन्म-पत्रियों को समेटने के लिए हाथ बढ़ा रहा था।

लेकिन हठात् बाबा बोल उठे। उन्होंने कहा, "वह मरी नहीं है। मर नहीं सकती—जातिका की आयु अभी शेष है।"

निताई बसाक भी जैसे विमूढ़-सा हो गया। उसने कहा, "लेकिन बाबा, हरतन तो कब की मर चुकी है, हम सभीको मालूम है।"

बाबा अभी भी जन्म-पत्रिका लिए मनोयोग से देख रहे थे। अब निवारण की ओर उसे बढ़ाकर बोले, "अष्टम में बृहस्पति है, यह जातिका अल्पायु नही है, दसवें स्थान में शुक्र है, चतुर्थ स्थान में लग्नपति बुध उच्च का है।"

जन्म-पत्रिका वापस लौटाकर बाबा निर्विकार हो गए।

लेकिन मालिक उठना चाहकर भी उठ नहीं पाए। बोले, "लेकिन चंडीतला श्मशान में उसका अंतिम संस्कार किया गया था।"

बाबा सिर हिलाने लगे।

"नहीं, आपकी यह पोती अभी जीवित है। वह आपके घर की लक्ष्मी थी। आपने उसे ही घर से दूर कर दिया! गृहलक्ष्मी का कोई त्याग करता है भला!"

मानिक का चेहरा जैसे शिशु-सुलभ सरल हो गया। आज यह क्या सुन रहे हैं वे ! उन्होंने एक बार निताई बसाक की ओर देखा। निवारण मानिक की ओर देख रहा था। वह भी जैसे हतवाक् हो गया था। पन्द्रह साल के बाद यह क्या सुनाई पड़ रहा है ?

"उसे आप वापस ले आइए। अपने घर ले आइए। आपके घर में फिर से खुशहाली आ जाएगी। फिर से आपकी हालत पलटेगी।"

"लेकिन वह तो मर चुकी है। मैंने चड़ीतला श्मशान जाकर उसका अंतिम सस्कार किया है।"

बाबा मुसकराए। बोले, "आपने खुद उसका सस्कार किया है ? जरा ठीक से सोचकर देखिए आप !"

मानिक का दिमाग काम नहीं कर रहा था। उन्होंने फिर से निवारण की ओर देखा। निवारण भी विमूढ़दृष्टि से उन्हींकी ओर देख रहा था। पूरे पन्द्रह साल पहले की बात है। इतने दिन बाद याद रखना क्या इतना आसान है ! तब तो सिद्धेश्वर भी था। मानिक की बड़ी लाड़ली पोती थी हरतन। वह हरतन अभी जिंदा है ! वही हरतन उनकी गृहलक्ष्मी है ! उसके वापस आने पर उनका घर धन-धान्य से भर उठेगा !

मानिक जैसे सब कुछ याद करने की कोशिश करने लगे।

बाबा ने फिर पूछा, "आपने स्वयं ही सस्कार किया था उसका ?"

मानिक ने कहा, "नहीं।"

"तब ? तब सस्कार के लिए श्मशान कौन गया था ?"

मानिक ने कहा, "मेरा लड़का सिद्धेश्वर गया था। मैं खुद नहीं गया था। हरतन मुझे बहुत ही प्रिय थी, इसलिए मैं खुद नहीं जा पाया श्मशान···" तभी अचानक निवारण की ओर देखकर बोले, "निवारण, तुम तो गए थे ! तुम्हें याद है कुछ ?"

निताई बसाक ने भी अब निवारण की ओर देखा।

दुलाल साहा अचानक भक्ति से विभोर हो पुकार उठा, "बाबा, तुम ही सत्य हो···तुम ही सत्य हो, दुनिया मे और सब झूठ है, माया है···"

धूप और धुनी के धुएं से कमरा धुंधला हो रहा था। तभी किसीने जैसे और भी थोड़ी धूनी डाल दी। नौकर ध्यान से सब सुन रहा था।

उसके हाथ की चमर जैसे अचानक रुक गई। जो लोग आंखें बन्द किए हाथ जोड़े बाबा का ध्यान कर रहे थे, उन्होंने भी आंखें खोलीं। वातावरण अस्वस्तिकर हो उठा था। बीसवीं सदी के इस सदी किशनगंज में जैसे अचानक रातोंरात मध्ययुग आ गया।

दुलाल साहा अब और नहीं रोक पाया अपने को। उसी तरह उल्टे लेटे-लेटे ही सुबक-सुबककर रोने लगा, भरी आवाज में आर्तनाद करने लगा, "भक्ति दो बाबा, भक्ति दो···"

मालिक के चेहरे की ओर देखकर निताई बसाक ने भी आवाज़ लगाई, "जय बाबा, जय गुरुदेव···"

और मालिक को लगा, जैसे वे पागल हो जाएंगे। निवारण की ओर देखकर डपटते हुए बोले, "क्या हुआ, याद पड़ा या नहीं तुम्हें ?"

निवारण बेचारे की मुश्किल थी। जी-जान से वह याद करने की कोशिश करने लगा। उसकी भी उम्र हो चली है अब। इस उम्र में क्या पहले जैसी याददाश्त रह सकती है ? वह क्या अब पहले का निवारण रह गया है ? उसके भी सिर में चांद है—बाल भी सफेद हो गए हैं। दांत भी हिलने लगे हैं।

"बाबा !"

अचानक दरवाज़े की ओर से जनानी आवाज़ सुन सबने चौंककर देखा। नई बहू खड़ी थी वहां।

नई बहू ने कहा, "रात काफी हो गई है, बाबा की तबीयत ठीक नहीं है, सारे दिन जल भी ग्रहण नहीं किया है; काका, अब इन लोगों से उठने को कहिए···"

अंधेरा रास्ता। और मालिक की आंखें भी अब पहले जैसी नहीं हैं। घर लौटते वक्त अपने को और रोक नहीं पाए। मालिक बोले, "इसी बीच सब भूल गए निवारण ?"

निवारण भी तो बूढ़ा हो चला है, अब उसकी याददाश्त तो कम हो ही सकती है ! आंखों की ज्योति कम हो सकती है। लेकिन मालिक जैसे यह सब नहीं मानना चाहते। तीस-चालीस साल पहले काम करने की

जैसी ताकत उसमें थी, अब वही ताकत वहां रह सकती है ? गुज़रे साल क्या अपनी कोई छाप नहीं छोड़ेंगे चेहरे पर ? निवारण के देखते-देखते ही भट्टाचार्य-वंश की ऐश्वर्य की ईंटें एक-एक कर ढहने लगी । उसकी आंखों के सामने ही तो मानिक की हालत दिनों-दिन बिगड़ती गई । जबकि यही दुलाल साहा और यही निताई बसाक एक दिन इसी निवारण को देखते ही विनय का अवतार हो जाते थे ।

मानिक अंधेरे में कहीं ठोकर न खा जाएं, इसलिए निवारण ने उनका हाथ पकड़ना चाहा; लेकिन मानिक ने हाथ खींच लिया । बोले, "बहुत हुआ, हाथ पकड़ने की जरूरत नहीं है ।"

"जी, यहां एक गड्ढा है ।"

"होने दो, मैं कोई तुम्हारी तरह चनौड़ा नहीं हूं ।"

फिर जैसे मन-ही-मन बड़बड़ाने लगे, "भाग्य ही खराब है, नहीं तो इस तरह सर्वनाश क्यों होता ? ऐसा मालूम होता तो मैं खुद ही श्मशान जाता । तुम लोगों पर काम छोड़ा इसीलिए यह सर्वनाश हुआ । अब क्या करूं ? मेरा तो सिर पीटकर मरने को जी चाह रहा है ।"

निवारण अपने-आपको कसूरवार मान रहा था । बोला, "मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं श्मशान गया था । मैं ही तो छोटे बाबू को बुलाकर लाया था ।"

"लेकिन यही बात वहां साधु बाबा के सामने नहीं कह पाए ? वहां तो तुम्हारे मुंह पर ताला लग गया था ।"

"जी, मैं तो यही कहने की सोच रहा था; लेकिन मैं शायद सत्कार के समय वहां मौजूद नहीं था । छोटे बाबू ने मुझे घर भेज दिया था । कहा था—सरकार बाबा, आप घर चले जाइए वहां बाबा को सम्हालिए ।"

मानिक बड़ी उत्सुकता से सुन रहे थे । बोले, "तो तुम सत्कार के समय वहां मौजूद नहीं थे ?"

"जी, रहता कैसे ? छोटे बाबू इस तरह पीछे पड़ गए, और आपका शरीर भी ठीक न था ।"

"मेरे शरीर की बात छोड़ो । ऐसा क्या हुआ है मेरे शरीर को !

आज हरतन होती तो मेरे शरीर का क्या हाल होता ! और, क्या दुलाल साहा ही मेरे देखते-देखते इस तरह तिल से ताड़ हुआ होता ?"

निवारण ने कहा, "मुझे क्या मालूम था मालिक कि ऐसा कुछ भी हो सकता है ? मालूम होने पर इस तरह मरने चला आता ?"

मालिक ने रोक दिया। बोले, "बस-बस, टेसुए बहाने की जरूरत नहीं है। फिर क्या हुआ सो कहो ?"

"जी, फिर और क्या होना था ? मैं चला आया।"

"फिर ?"

"आकर देखा, आप बेहोश पड़े हैं। मैं जाकर श्रीनाथपुर से डॉक्टर बुलाकर लाया।"

मालिक इस बार बुरी तरह बिगड़ गए, बोले, "अपनी बात कौन पूछ रहा है तुमसे ? अरे, पूछता हूं कि सिधू कब लौटा ? वापस लौटने पर सिधू कुछ बोला था तुमसे ?"

निवारण जी-जान से याद करने की कोशिश कर रहा था। इतने दिन पहले की बात कैसे याद रहती उसे ? पूरे पन्द्रह साल पहले की घटना थी। उन दिनों किशनगंज ऐसा नहीं था। दुलाल साहा और निताई बसाक ने अभी हाल ही में हरिसभा के चन्दे की बही लिए इधर-उधर चक्कर काटना शुरू किया था। और इन दोनों के साथ ही आ जुटे थे छोटे बाबू। मालिक की पौत्री किलकारी मारती फिरा करती थी।

हरतन उन दिनों मालिक की मन-प्राण थी। मालिक दीवानखाने में बैठे रहते। लोग-बाग आते। उनसे बातें करते। नाना प्रकार की समस्याओं पर। सब उनसे सलाह लेते। उन दिनों बगैर मालिक से सलाह लिए किशनगंज में कोई काम ही नहीं होता था। अंग्रेजी अखबार हो या बंगला, सब उनके दीवानखाने में पाए जाते।

अखबार सुनते-सुनते मालिक बीच-बीच में कहते, "यहां जरा फिर से तो पढ़ भानु !"

भानु कलकत्ते में लिख-पढ़कर गर्मी की छुट्टी होने पर गांव आता। गांव आते ही अखबार के लालच में मालिक के दीवानखाने में आ बैठता। छांटकर खबरें सुनाता सबको। सब लोग अंग्रेजी नहीं समझते

थे। भानु ही मतलब समझा देता।

"जरा फिर से पढ़ना भानु, बड़ी अच्छी बात कही है!"

भानु पढ़ता, "जनरल अकिनलेक ने कहा है :

'All political Matters will be in the hands of the new War Member under whom I shall serve, just as the Commanders in Britain serve under Civil Ministers.'"

मालिक कहते, "वाह, बड़ी अच्छी बात कही है। तुम्हें क्या लगता है भानु, ये अंग्रेज क्या वाकई चले जाएंगे देश छोड़कर ?"

भानु कहता, "जी, लगता तो यही है मालिक! कैबिनेट मिशन भी तो इसीलिए आया है, और गांधीजी का भी यही कहना है।"

गांधीजी का नाम सुनते ही मालिक बिगड़ उठते। कहते, "अरे गांधी की बात छोड़ो, उनकी बात मत करो। मैं यकीन नहीं करता उनकी बात का।"

भानु कहता, "जी, गांधीजी ने कोई गलत तो नहीं कहा है।"

"गलत नहीं कहा है माने ?"

गुस्से से आगबबूला हो उठते मालिक। गांधीजी की प्रशंसा सुनते ही बिगड़ उठते। सभी जानते हैं कि गांधीजी का नाम बर्दाश्त नहीं कर पाते मालिक।

मालिक कहते, "यह चरखा कातने की बात किसने कही ?"

सभी कहते, "जी, गांधीजी ने।"

"और बम्बई में कपड़े की मिल किसने खुलवाई ? यह मजाक है कोई ?"

मुश्किल में पड़ जाते सब लोग। एक-दूसरे की ओर देखते आंखें फाड़कर।

मालिक कहते, "बंगालियों से कह दिया कि चरखा कातो और बंबई जाकर गुजरातियों से बोले, कपड़े की मिल खोलो! इसपर भी तुम कहोगे कि गांधी सच्चा आदमी है ?"

कोई याद नहीं कर पा रहा था कि गांधीजी ने बंगालियों से चरखा

कातने को कहा, और गुजरातियों से ही कब कहा कि कपड़े की मिल खोलो।

मालिक ने सभीके चेहरों की ओर देखा, फिर बोले, "क्या हुआ बशीरुद्दीन, बोल नहीं रहे कुछ?"

बशीरुद्दीन ज़माने से मालिक की प्रजा रहा है। बोला, "जी मालिक, जब आप कह रहे हैं तो कोई झूठ थोड़े हो सकती है बात।"

मालिक कहते, "वैसे तुम्हारा जिन्ना भी आदमी ठीक नहीं है, यह भी कहे देता हूं।"

"सो तो है ही मालिक..."

मालिक कहते, "हमारा यह गांधी भी ठीक नहीं है और तुम्हारा वह जिन्ना भी ठीक नहीं है, समझे?"

इसके बाद जैसे सभीसे कहते, "क्या हुआ, तुम लोग चुप कैसे हो? मैंने ठीक कहा है न?"

सभी कहते, "जी, आप ठीक ही कह रहे हैं मालिक!"

मालिक कहते, "असल में दुनिया से अच्छे लोग उठते जा रहे हैं। देखते नहीं, जितने भले लोग थे, सब पटापट मर रहे हैं।"

फिर कहते, "अपने सुभाष बोस की बात लो, अच्छा आदमी था। कैसे पट से मर गया..." कहकर भानु को देखकर कहते, "पढ़ो-पढ़ो, तुम क्यों रुक गए? और क्या खबर है?"

भानु पढ़ने लगा, बोला, "पंडित जवाहरलाल नेहरू का स्टेटमेंट है।"

"यह एक और फालतू आदमी है। समझे! बोलता बहुत है। अरे कामकाजी लोग कभी इतना बोलते हैं? काम के नाम सिफर खाली लपवा लो। बाप उसका भला आदमी था। पंडित मोतीलाल नेहरू का नाम सुना है द्विजपद? द्विजपद तो आजकल बात ही नहीं करता, बात क्या है द्विजपद?"

द्विजपद बोला, "जी मालिक, मैं सुन रहा हूं।"

"सुन रहे हो कि नहीं सुन रहे, मैं कैसे समझूंगा? बीच-बीच में हूं-हां करनी चाहिए न?"

सारे दिन इसी तरह दीवानखाना गुलज़ार रहता। इन सभीको लेकर मानिक की महफिल जमती। यह भानु कलकत्ते पढ़ता। शहर की नई ताज़ी खबरें रखता और यहां आकर मानिक को सुनाता। भानु को देखते ही मानिक कहते, "क्या खबर है, तुम्हारे कलकत्ते के क्या हाल है ?"

भानु कहता, "जी, खबर और क्या होगी, सुना है, कैबिनेट मिशन आ रहा है !"

"माने ?"

मानिक को कैबिनेट मिशन के बारे में नहीं मालूम था।

भानु कहता, "जी, ये लोग इंडिया को स्वराज देने के लिए आ रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू शायद वायसराय होंगे।"

"हैं ? कहते क्या हो ?" मानिक चौंक उठे।

"जी हां, कलकत्ते से यही खबर सुनकर आ रहा हूं।"

मानिक ठहाका लगाकर हंस पड़े। व्यंग्य की हंसी। बोले, "देश में वायसराय बनाने लायक और कोई आदमी नहीं था ? लेकिन इंडिया के ऊपर इतनी दया क्यों हो आई इन अंग्रेज पट्ठों को ?"

दुलाल साहा और निताई बसाक भी तब मजलिस में शामिल होते थे। तब तक इतनी मान-मर्यादा नहीं मिल पाई थी उन्हें।

मानिक कहते, "क्यों, तुम लोग कुछ बोल नहीं रहे ? मैं गलत कह रहा हूं कुछ ?"

दुलाल साहा हमेशा से ही विनय की मूर्ति रहा है। बोला, "आप तो हमेशा उचित बात ही कहते हैं।"

मानिक कहते, "अब तुम लोग इसे मेरा गुण मानो या दोष मानो। अनुचित बात मेरे मुंह से नहीं निकलती। मैं खरी बात कहता हूं। हां, तो फिर ? इससे आगे कहो भानु, तुम चुप क्यों हो गए ?"

अचानक अंदर से बच्चे के रोने की आवाज़ सुनकर मानिक अनमने हो उठे। हरतन रो रही है ? फौरन निवारण को आवाज़ दी, "निवारण, देखो तो हरतन क्यों रो रही है ?"

निवारण जल्दी से अंदर जाकर हरतन को गोद में उठा लाया।

"लाओ-लाओ, मेरी गोद में दो।" कहकर मालिक ने हाथ बढ़ा दिए।

मालिक की गोद में आते ही हरतन एकदम चुप हो गई। अहा, कैसी फूल-सी लड़की थी! मालिक की उम्र तब भी काफी हो गई थी। उस उम्र में भी मालिक ने पोती को गोद में लेकर छाती से चिपका लिया। मालिक उससे बात करने लगे, "किसने मारा है मेरी बेटी को? किसने डांटा है? बुलाओ उसको…"

कहकर उस भरी मजलिस में ही पोती से लाड़ लड़ाने लगते। हरतन तब तक मालिक के हुक्के की नली को पकड़कर हिलाने लगती। मालिक अचरज से देखते रहते, फिर बोलते, "देखो भानु, सिधू की लड़की कितना चालाक हो गई है अभी से।"

भानु ने कहा, "जी, बड़ी होकर खूब बुद्धिमती होगी हरतन।"

दुलाल ने कहा, "अहा, बड़ा अच्छा नाम रखा है मालिक ने।"

बशीरुद्दीन ने कहा, "अल्लाहताला की दुआ क्या हर किसीके घर होती है मालिक?"

निताई बसाक बोला, "इसका विवाह कलकत्ते में कीजिएगा मालिक! कलकत्ते में आजकल बड़े अच्छे-अच्छे लड़के निकल रहे हैं—बी० ए०, एम० ए० पास लड़के को जमाई बनाइएगा।"

मालिक ने हरतन के चेहरे की ओर देखकर कहा, "क्या, सुना कुछ? निताई बसाक क्या कह रहा है?"

फिर निताई बसाक की ओर देखकर बोले, "जानते हो, निताई अपने बाप के पास नहीं रहती. रात में नींद से उठकर रोने लगती है, रट लगा देती है—दादा के पास। बाद में मेरी गोद में आते ही चुप।"

भानु ने कहा, "इसीलिए तो कह रहा था मालिक, खूब बुद्धिमती होगी।"

मालिक ने कहा, "असल में बात यह है कि मेरी मां इस जन्म में हरतन होकर बहू के पेट में आई है। इसका चेहरा देखो और उधर मां की फोटो, चेहरे की छवि हूबहू मिलती है या नहीं?"

सभी देखने लगे। भानु ने देखा, बशीरुद्दीन ने देखा। निताई बसाक ने देखा। दुलाल साहा ने देखा, हर किसीने देखा।

दुलाल साहा ने कहा, "अजीब बात है !"

मानिक ने कहा, "कहने में यकीन नहीं होगा दुलाल, जिस रोज बहू-रानी को दर्द उठा, मुझे कुछ भी मालूम नहीं था, मैं गहरी नींद में सो रहा था। अचानक लगा, जैसे मां आकर मेरे सामने खड़ी हो गई। मुझसे कह रही है, 'रीति, मैं आ गई हूं'—और आ गई हूं कहते के साथ-साथ मेरी नींद टूट गई।"

यह घटना भी सबने कई बार सुनी है, कितनी ही बार प्रसंगवश मानिक यह घटना सुना चुके हैं। उन दिनों वक्ता होते थे कौंसिलर और श्रोता होते किसनगंज गांव के सारे लोग। वे लोग नियमानुसार आते-जाते, बाद में एक वक्त हरतन को गोद में लिए मानिक उठ खड़े होते।

कहते, "अब उठता हूं, मेरे साथ बैठे बगैर हरतन खाना नहीं खाएगी।"

सिर्फ एक साथ खाना ही नहीं, एकसाथ सोना, बैठना, बात करना—सब कुछ हरतन के साथ। आखिर में ऐसा हुआ कि हरतन बाप-मां के पास जाती ही नहीं, सारे दिन मानिक के पास ही रहती। बड़ी बहूजी जब तक हरतन को लाकर बिस्तरे पर न सुला देतीं, मानिक भी छटपटाते रहते।

ये बातें पन्द्रह साल पहले की हैं।

इतने दिन बाद अंधेरे रास्ते में चलते-चलते दोनों के दिमाग में जैसे पन्द्रह साल पहले की सारी घटनाएं घूम रही थीं। पन्द्रह साल पहले वाली हालत होती तो क्या मानिक इस तरह इतनी रात बगैर बुलाए दुलाल साहा के घर पांव रखते? इन पन्द्रह सालों में कितना कुछ बदल गया है। दुलाल साहा ऊपर उठा और मानिक नीचे उतरे। निवारण को लगा, जैसे मानिक का हाथ थर-थर कांप रहा है। निवारण ने और भी जोर से हाथ पकड़ लिया। फिर बोला, "यहां जरा आहिस्ते, नाला है..."

इस बार मानिक कुछ भी नहीं कह रहे थे। निवारण के हाथ में गुड़ की गोर किसी तरह चलते रहे।

अगर आज सिधू होता तो क्या उन्हें इस हालत का सामना करना पड़ता? वह सिधू भी आखिर चला कहां गया!

मालिकने पुकारा, "निवारण ! तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

निवारण कुछ समझ नहीं पाया।

उसने कहा, "किसकी बात कर रहे हैं मालिक ?"

"और किसकी, उस साधु के बारे में ही बात कर रहा हूं। तुम्हें क्या यकीन हो रहा है उसकी बातों पर, या कि सब ऐसे ही ढकोसलाबाजी है ?"

निवारण ने झिझकते हुए कहा, "जी, मैं तो समझ ही नहीं पाया।"

मालिकने कहा, "सब ढकोसला है, मुझे तो यकीन नहीं होता। मेरी हालत देख भांप गया। देख तो रहा ही था कि मेरी उम्र हो गई है, इसीलिए मखौल कर रहा था।"

निवारण ने कहा, "जी, ऐसा क्यों कह रहे हैं ? चेहरे पर तो बड़ा पवित्र भाव झलक रहा था।"

मालिकने कहा, "लेकिन तुम तो उसका संस्कार कर आए, फिर भी वह जीवित कैसे रह सकती है, तुम ही कहो ?"

निवारण कोई जवाब नहीं दे पाया इस बात का।

"और अगर जीवित है भी तो इतने रोज बाद अब उसे ढूंढ़ निकालना असंभव है।"

कुछ देर तक दोनों के मुंह से और कोई बात नहीं निकली। घटना का एकमात्र साक्षी अगर कोई हो सकता है तो सिद्धेश्वर, लेकिन किसे मालूम कि सिद्धेश्वर आज जिन्दा है भी या नहीं ! इतना बड़ा जवान लड़का, बी० ए० पास भी किया। बामन के घर ऐसे कुलांगार ने कौन जाने क्यों जन्म लिया। ब्याही बहू को बाप के सिर पर छोड़ लापता हो गया !

तब तक घर नजदीक आ गया।

सामने झाड़-झंखाड़ पार कर चौड़ी जगह है। उसके बाद ही चौहद्दी से घिरा भट्टाचार्य-भवन है। रात काफी हो गई है। दुलाल साहा के घर की तरह यहां इलैक्ट्रिक नहीं है। देखभाल कर चलना पड़ता है। एक जमाना था जब यहां हाथी रहता था। दो बड़े-बड़े हाथी। मालिक ने

हाथी नहीं देंगे, सिर्फ अपने पिता केदारेश्वर से सुना है। सिर्फ हाथी ही क्यों ! गाय, भैंस, घोड़े—सभी। मोर घूमा करते थे इस जगह ! आज अंधकार है। भट्टाचार्य-भवन की ऐश्वर्यश्री के विलुप्त होने के साथ ही छोटे मालिक भी वहीं अन्तर्धान हो गए। अकेली बहूजी बेचारी रह गई थीं। आज वह भी नहीं है। वह रानी होतीं तो कम-से-कम उनसे कही जा सकती थी यह बात।

सामने ही सीढ़ी थी।

निवारण ने सावधान किया।

"सीढ़ी है, सम्हलकर चलिएगा।"

दालान पार कर दीवानखाना है। दीवानखाने में निवारण के तख्त पर की मसहरी उसी तरह झूल रही है। उसके पास से ही दबे पाँव मालिक का हाथ थामे निवारण ने उन्हें दोमंजिले के जीने तक पहुंचा दिया। फिर उनके पीछे वह भी चढ़ने लगा।

मालिक ने कहा, "तुम क्यों आ रहे हो ? जाकर सोओ, काफी देर हो गई है, मेरी नजर अभी काम करती है, मैं अकेले ही जा सकता हूं।"

यह कहकर मालिक अकेले ही धीरे-धीरे चढ़ने लगे लेकिन जीने के मोड़ पर पहुंचकर अचानक पुकार उठे, "निवारण, सुनना तो जरा…"

निवारण खड़ा ही था। बोला, "कहिए ?"

"यह साधु कल सुबह ही जा रहा है न ?"

निवारण ने कहा, "जी, सुना तो यही है।"

मालिक के हाथ में जन्म-पत्रियों का पुलिंदा था। उसे हाथ में लिए मालिक कुछ सोचते रहे। फिर उसी जगह खड़े-खड़े ही बोले, "जन्म-पत्री देख सके, ऐसा कोई है, तुम्हारी जानकारी में ? मतलब, अच्छा पंडित होना चाहिए। ऊपरी-ऊपरी देखने से काम नहीं चलेगा। है कोई यहां बिजनगंज में ?"

निवारण ने कहा, "बिजनगंज में तो ऐसा कोई नहीं है।"

"तो कहां है ?"

निवारण ने कहा, "जी, काशी में हो सकता है !"

"काशी में हो सकता है सो तो सभी को मालूम है ! लेकिन काशी इस

समय जा कौन रहा है ? तुम्हारी बात भी अजीब होती है ! लंका में सोना सस्ता है, इसीलिए…"

बात पूरी नहीं की मालिक ने। मन-ही-मन जैसे कुछ सोचते सीढ़ियां चढ़ते गए।

बड़ी बहूजी अभी जाग रही थीं। मालिक कमरे में घुसे। बड़ी बहूजी ने तब कुछ नहीं कहा। मालिक आहिस्ते-आहिस्ते बगलवाले कमरे का दरवाज़ा खोलकर अंदर गए। संदूक कोने की ओर था। अंधेरे में टोह लेते वहां तक गए। फिर बड़ी मुश्किल से लोहे का भारी ढकना किसी तरह खोलकर जन्म-पत्रियों का पुलिंदा उसमें डाल दिया। और संदूक का ढकना पहले की तरह बन्द कर अपने कमरे में बिस्तरे पर आ लेटे। इतने परिश्रम के बाद मालिक हांफने लगे थे, सीने के अंदर दम अटका जा रहा था।

"मालिश कर दूं सीने में ?"

मालिक समझ गए, बड़ी बहूजी अभी सोई नहीं हैं। मालिक जब तक नहीं सोते, बड़ी बहूजी भी नहीं सो पातीं, यह बात उन्हें मालूम थी।

मालिक बोले, "रहने दो, जड़ काटकर शाखें सींचने की ज़रूरत नहीं है।"

बड़ी बहूजी इन सब बातों के लिए कभी गुस्सा नहीं करतीं। आहिस्ते से उठकर ताक पर से तेल की कटोरी ले आईं और मालिक के सीने पर मालिश करने लगीं।

दुलाल साहा के घर पिछले दिन काफी रात गए तक उत्सव चला। मालिक और निवारण जब वहां से चले, दुलाल साहा की जापानी घड़ी में बारह बजे थे। इतनी रात में नाम के लिए कुछ खाकर सभीने थोड़ा विश्राम किया। चार बजते-बजते फिर उठ पड़े। भोर होते ही यात्रा थी।

किशनगंज के लोग अभी सो रहे थे। पिछले रोज दस गांव के लोग आकर खा गए हैं। इतनी सुबह-सुबह उठने का बूता नहीं रह गया था किसीमें। माल लाने-ले जाने वाले व्यापारी भी अपनी-अपनी नावों में खर्राटे भर रहे थे। दुलाल साहा की नाव कब घाट पर लगी, और कब गुरुदेव को उसमें चढ़ाया गया, किसीको भनक भी न पड़ी। किशनगंज से

गुरुदेव को लेकर नाव सीधे गंगा के मुहाने तक जाएगी। वहां से गुरुदेव अपनी इच्छानुसार जहां जाना चाहेंगे, चले जाएंगे। उन्हें पहुंचाकर नाव वापस किशनगंज चली आएगी। साथ दुलाल साहा की कचहरी का आदमी गया है। उसे हजार रुपये दिए हैं। जब जैसी जरूरत पड़े, खर्च करेगा। दुलाल साहा, निताई बसाक, यहां तक कि नई बहू ने भी घाट पर आकर गुरुदेव की पदधूलि माथे पर चढ़ाई। इसके बाद यथासमय नाव रवाना हो गई।

गुरुदेव को विदा कर दुलाल साहा की दिनचर्या शुरू हो गई। गोविंद बाल्टी, तेल और गमछा लिए हाजिर था। दुलाल साहा ने पूरे घाट पर झाड़ू लगाई। तेल मला, स्नान किया। तब तक पूरब में आसमान साफ हो चला था।

"कौन, मुकुन्द है क्या ?"

मुकुन्दपाल अभी ही उठकर लोटा लिए मैदान की ओर जा रहा था। दुलाल साहा को देखते ही पालागन कहा, बोला, "यह क्या साहाजी, आज भी छुट्टी नहीं ? आज भी इतनी सुबह-सुबह उठ गए ?"

दुलाल साहा मुसकराने लगा, फिर बोला, "क्या कह रहे हो तुम ! तुम्हें तो समझदार ही जानता था।"

"जी, कल रात तक तो उपवास ही किया आपने, इसीसे कह रहा था !"

दुलाल साहा ने उसी तरह मुसकराते हुए कहा, "अरे खाना तो नहीं भूलता मुकुन्द, मां गंगा को ही भूल जाऊं !"

"सच, आप बड़े पुण्यात्मा हैं ! आपके जैसी भक्ति अगर भगवान देते..."

दुलाल साहा ने कहा, "मिलेगी, मुकुन्द, मिलेगी, कोई हाथी-घोड़ा थोड़े ही है। थोड़ा प्रयास करते ही मिल सकेगी।"

"प्रयास तो करता हूं साहाजी, लेकिन हम लोग ठहरे पापी, हम लोगों को और कितनी मिलेगी ?"

दुलाल साहा ने कहा, "मिलेगी क्यों नहीं मुकुन्द ! इस दुनिया में असंभव कुछ भी नहीं है ! जरा लोभ कम करो ! यह लोभ ही सारे पापों

का मूल है…"

मुकुन्द ने कहा, "जी, लोभ तो नहीं करता मैं !"

"लोभ नहीं है तो मकान बनवाने के लिए क्यों पागल हो रहे हो ? मकान का लोभ क्यों है तुम्हें ? टीन के घर से काम नहीं चल रहा है न! मुझे देख लो, मुझे कोई लोभ नहीं है। जो कुछ भी है, सब छोड़कर साधु हो जाने का जी करता है। इतना बड़ा मकान बनवाया लेकिन उससे क्या शांति मिली ? पैसा भी कम नहीं कमाया। लेकिन उसीसे क्या शांति मिली ? मिली होती तो हाथ में झाड़ू लिए यह घाट क्यों धोता ?"

बात क्या हो रही थी और क्या होने लगी। मुकुन्द को खिसकने का रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। झटपट जाते-जाते बोला, "तो अब चलूं साहाजी…"

कहकर मैदान की ओर भागा।

घर पहुंचते ही देखा कि निवारण बेंच पर बैठा है।

"अरे निवारण, इतनी सुबह ? क्या खबर है ?"

इतनी सुबह निवारण को देख दुलाल साहा के चेहरे पर मुसकान खेल गई।

निवारण बोला, "जी, मालिक ने सुबह-सुबह ही भेज दिया। गुरुदेव क्या चले गए ?"

अभी भी रात के उत्सव के छिटपुट चिह्न इधर-उधर बिखरे थे। दुलाल साहा की पालतू बकरी फूलों की पपड़ी चबा रही थी। नौकर आंगन में झाड़ू लगा रहा था। कचहरी में अभी तक बिछौना बेतरतीब पड़ा था। उठाया नहीं गया था।

निवारण ने कहा, "कल सारी रात मालिक सो नहीं पाए।"

दुलाल साहा ने कहा, "अहा, बुढ़ापे में कैसा दुर्भोग है ! इसीसे तो कहता हूं, अपने मालिक से कहो कि ज़रा लोभ का त्याग करें—देखोगे, सब ठीक हो जाएगा।"

"जी, लोभ तो ऐसा कोई नहीं है।"

दुलाल साहा ने कहा, "लोभ नहीं है, तो पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर मुझे देने में छाती क्यों फटी जा रही है तुम्हारे मालिक की ?"

निवारण की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दे।

"इतना लोभ अच्छा नहीं होता निवारण! तुम्हारे मालिक की उम्र तो काफी हो गई है। अब उन्हें जरा धरम-करम में मन लगाने की सलाह दो। मुझे ही देखो न। मुझे कभी लोभ करते देखा है तुमने? लोभ किस चिड़िया का नाम है, मुझे नहीं मालूम। इसलिए देख लो, कितनी शांति से हूं। तुम्हारे मालिक की हांडी में कौन-सी दाल पक रही है, यह जानने के लिए कभी मेरे सिर में दर्द नहीं हुआ—और अब तो दीक्षा लेकर साधु ही हो गया हूं।"

जरा रुककर फिर बोला, "खैर, जाने दो इन बातों को, गुरुदेव से क्या काम था मालिक को?"

निवारण शायद जवाब देने ही जा रहा था कि तभी अचानक नई बहू के अंदर से आ पहुंचने से दोनों उसकी ओर देखकर चुप हो गए।

नई बहू ने साहाजी की ओर देखकर कहा, "बाबा, पूजा की तैयारी हो गई, चलिए—बात फिर हो जाएगी। चलिए…"

इसके बाद निवारण की ओर देखकर नई बहू ने कहा, "आप भी कैसे आदमी हैं सरकार बाबू, सभीको क्या अपने मालिक जैसा समझते हैं! देख रहे हैं कि सुबह का वक्त है, बाबा स्नान करके थके हुए आए हैं, अभी पूजा करने बैठेंगे, यही वक्त सूझा आपको बात करने का?"

निवारण घबड़ाया तो था ही। नई बहू की बात सुनकर उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, "मैंने तो साहाजी को नहीं रोका।"

"लेकिन इस तरह चिड़िया बोलते-बोलते घर में आकर बैठ जाने पर भला कोई चले जाने को कह सकता है?"

"अब और कुछ कहने की जरूरत नहीं है बहूजी, मैं खुद ही जा रहा हूं।" कहकर निवारण चला ही जा रहा था, लेकिन साहाजी ने उसे रोका।

"नाराज हो गए निवारण?"

"जी, नहीं तो।"

"नाराज न होना, हमारी बहूजी तुम्हारी लड़की की तरह है, इसकी बात का मैं भी बुरा नहीं मानता…"

निवारण ने कहा, "बुरा मानने से तो मेरा काम नहीं चलेगा साहाजी ! मैं हूं ही क्या ? मैं हुक्म के गुलाम के सिवाय कुछ भी नहीं हूं । आपके पास आने का हुक्म हुआ, सो चला आया, आप चले जाने को कह रहे हैं, चला जाता हूं ।"

साहाजी ने कहा, "कौन किसके चले जाने को कहता है निवारण ? अब देखो, इस विजय की मां की बात ही लो, मैंने कहा था उससे कि चली जाए, लेकिन फिर भी वह चली क्यों गई ? किसके हुक्म से चली गई ? कौन है वह ? कहां रहता है ? कहो न, कहां मिलेगा वह ?"

कहकर सवाल निवारण की ओर उछाल दिया ।

लेकिन निवारण को कोई जवाब न सूझा । दुलाल साहा को भी नहीं सूझा । दुलाल साहा के चेहरे पर अर्थपूर्ण मुसकान खेल गई । उसने कहा, "जवाब नहीं दे पाए न ! कोई दे भी नहीं सकता इसीलिए तो दीक्षा ले ली है निवारण ! नहीं तो मुझे क्या और कोई काम नहीं था कि बैठे-ठाले इस तरह दीक्षा लेने के लिए पागल होता ?"

नई बहू और धीरज न रख पाई । बीच में ही बोल उठी, "बाबा, आपको देर हो रही है ।" कहकर जबर्दस्ती ससुर को अन्दर ले गई ।

पहले चंडीतला की ओर ही श्मशान था । श्मशान अभी भी है । सिर्फ जरा दूर हट गया है । इमली के पेड़ों से जगह घिरी है । उन दिनों लोग इस ओर कम ही आते-जाते थे । जो लोग मुर्दा लेकर जाते, दिन रहते ही काम पूरा करके चले आते । अंधेरा होने पर कोई इस ओर नहीं आना चाहता था ।

लेकिन अब हवा बदल गई है । तब किशनगंज से चंडीतला जाने के लिए सड़क जैसी कोई चीज नहीं थी । अब पक्की सड़क है । क्वार-कार्तिक के महीने में किसान यहां धान डाल देते हैं सूखने के लिए । साइकल-वाइ-सिकल तब इस धान के ऊपर से ही जाती थी । कोई आपत्ति भी नहीं करता । हां, सड़क के पास वाले ग्वाले लाठी लिए पहरा देते हैं, जिससे गाय-बकरियां धान न खाएं । गाय-बकरी देखते ही दौड़ते—हट-हट···

गाय-बकरियों का उपद्रव ही ज्यादा है ।

चडीतला में जहां सड़क खत्म होती है, वहीं ब्लॉक डेवलेपमेंट ऑफिस है। कतार-की-कतार नये-नये मकान बन गए हैं। इस इलाके में ऐसे मकान पहली ही बार बने हैं। सीमेंट-कंकरीट के मजबूत दालान। सामने की ओर निकली कंकरीट की छतें। उन मकानों के आगे छोटे लॉन। रानाघाट और कलकत्ते के लड़के यहां आकर नौकरी करते हैं। मछुए-मल्लाह और किसानों के बच्चों के लिए स्कूल खुला है। स्लेट-पेंसिल और किताबें लिए बच्चे पढ़ने आते हैं। पहले जो बच्चे सड़क, घाट या जगल में खेलते फिरते, मछली पकड़ते या पक्षियों के पीछे घूमा करते, अब वहीं स्कूल में मन लगाकर पढ़ते हैं। अच्छे कपड़े पहनने लगे हैं और मां-बाप का कहना भी सुनते हैं।

यहां जैसे एक नया शहर ही बस गया है।

ब्लॉक डेवलेपमेंट ऑफीसर ने अपने घर के आगे अच्छा-खासा बाग लगा लिया है। प्लान में तीन कमरे थे। कण्ट्रैक्टर से कह-सुनकर चार करा लिए हैं। सुकान्त राय की उम्र ज्यादा नहीं है।

निताई बसाक ने पूछा था, "यह जो नौकरी मिली, किसीसे जान-पहचान थी क्या आपकी ?"

सुकान्त राय ने जवाब दिया था, "नहीं साहब, सिर्फ 'लक' कह सकते हैं।"

"आश्चर्य की बात है !" निताई बसाक सचमुच ताज्जुब में पड़ गया था।

"किसीको भी नहीं जानते थे ? प्रफुल्ल घोष, विधान राय, अतुल्य घोष, किसीको भी ?"

"जी नहीं।"

"तो फिर काम बना कैसे ? दरख्वास्त लगाने भर से नौकरी मिल गई ?"

"नहीं," सुकान्त राय ने कहा, "सो भी नहीं।"

निताई बसाक को और भी अजीब लग रहा था। सुकान्त राय ने कहा, "अजी, एम०ए० पास करने के बाद घनचक्कर की तरह चक्कर मार रहा था कि तभी एक घटना हो गई।"

"कौन-सी घटना ?"

सुकान्त राय ने कहा, "किरणशंकर राय का नाम सुना है आपने ?"

निताई बसाक ने कहा, "वाह, किरणशंकर राय का नाम नहीं सुना मैंने ? इतने बड़े कांग्रेस लीडर ! एंटी-सुभाष बोस···"

सुकान्त राय ने कहा, "उनके मरने की खबर मिलते ही उनके घर जा पहुंचा, उस वक्त उनकी डेड बॉडी बाहर लाई जा रही थी। मैं उनकी खटिया का एक किनारा कंधे पर लिए श्मशान तक गया था।"

"फिर ? फिर क्या हुआ ?"

"अखबारों में उस शवयात्रा की फोटो छपी थी। मेरी फोटो बिलकुल साफ आई थी। मैंने बुद्धिमानी से काम लिया और आनन्द बाजार पत्रिका ऑफिस से वह फोटो खरीदकर रख ली थी। नौकरी का विज्ञापन जब अखबार में निकला तो वही फोटो लेकर राइटर्स बिल्डिंग में सीधे मुख्यमंत्री के पास जा पहुंचा···"

"फिर ?"

सुकान्त राय ने कहा, "फिर क्या, एक नॉमीनल दरख्वास्त करनी पड़ी और साथ ही यह नौकरी मिल गई।"

यही था सुकान्त राय की सरकारी नौकरी का संक्षिप्त इतिहास। लेकिन सिर्फ यहीं तक। नौकरी ही नहीं, विवाह हुआ सो भी नौकरी की बदौलत। सुंदर बीवी मिली, लेकिन दूर-दराज इस गांव में उसे अच्छा नहीं लगता। निताई बसाक कलकत्ते जाता रहता है। सेक्रेटेरीएट में साठ-गांठ है। सुकान्त राय उसके साथ दिल की बातें करता है। सुकान्त राय के सजे बैठकखाने में बैठ निताई बसाक चाय पीता है। सुकान्त राय की पत्नी भी साथ बैठती है। किसी चीज़ की ज़रूरत होने पर निताई बसाक कहता, "मुझसे क्यों नहीं कहा, मैं इंतज़ाम कर देता।"

निताई बसाक सुकान्त राय का दाहिना हाथ बन गया था। निताई बसाक गाड़ी भेज देता। कहता, जहां जी चाहे घूम आएं, गाड़ी तो बेकार ही खड़ी रहती है, इसके अलावा महीने के आधे रोज़ तो मैं कलकत्ते ही रहता हूं।

गाड़ी थी, निताई बसाक था, दुलाल साहा था। इसीसे ब्लॉक

डेवलेपमेंट ऑफीसर सुकान्त राय को कोई फिक्र नही थी। नई कच्ची उम्र, नई बीवी, मस्ती जगह, कुछ मिलता नही था, इसलिए खर्च भी कुछ नही था। लेकिन बीवी खुश नही थी।

बीवी कहती, "देहात मे मन नही लगता।"

असल में मुश्किल यही थी। इसी मुश्किल की वजह से सुकान्त राय को भी अच्छा नही लगता था। निताई बसाक के कलकत्ते से वापस लौटते ही पूछता, "क्या हुआ निताई बाबू, सेक्रेटेरीएट की कोई खबर है?"

निताई बसाक आकर कुर्सी पर बैठता, "इस बार जाकर कोई भी काम नही हुआ सर, खाली पैसे की बरबादी—गया था आपके लिए कुछ जोड़-तोड़ बैठाने, लेकिन सब गुड-गोबर हो गया।"

"कैसे ?"

"कैसे क्या ! जिस रोज पहुचा, उसी रोज मिनिस्टर हेम भास्कर मर गए। फिर क्या कोई कामकाज हो सका है ?"

"लेकिन आप तो सात रोज तक वहा थे। सात रोज रहकर भी कुछ नही हुआ ?"

निताई बसाक ने कहा, "नही, मिनिस्टर के मरने पर कही काम-काज होता है ! कम-से-कम पद्रह दिन तो लग ही जाएगे शोक कटने में, इसीसे चला आया।"

इसी तरह दिन बीत रहे थे। निताई बसाक आशा दिलाए जा रहा था, सुकान्त राय भी नौकरी किए जा रहा था। एक साल गुजर गया। टेम्परेरी डिपार्टमेंट ठहरा। कब है, कब नही। निताई बसाक के सहारे किसी दूसरे डिपार्टमेंट मे जाने की कोशिश मे लगा था सुकान्त राय, या नहीं तो कलकत्ते हेड ऑफिस मे ही ट्रासफर हो जाता। लेकिन राइटर्स बिल्डिंग मे वह किसीको भी नही जानता। उस फोटो का ही एकमात्र आसरा है, जिसमे वह किरणशकर राय की लाश को कधा दिए है। फोटो मढवाकर उसने कमरे मे टाग ली थी। अखबार की उस पुरानी कटिंग को भी मढवाकर लटका दिया था। जिंदगी का यही मूलधन था उसके पास। इस मूलधन मे भविष्य के लिए और भी कुछ किया जा सकता है।

मौका मिलते ही सुकान्त राय लोगों को दिखलाता, "वह देखिए, 'आनंद बाजार पत्रिका' में फोटो छपा था मेरा।"

गांव के लोग मुग्ध हो जाते। वे लोग जैसे बी०डी०ओ० को न देख किसी देवता को देख रहे होते।

बीवी भी महिलाओं से कहती, "किरणशंकर राय इन्हें बहुत चाहते थे न।"

ठीक इसी बीच दुलाल साहा के घर साधु महाराज आ पहुंचे। निताई बसाक आकर आमंत्रित कर गया। और अगले दिन ही मिजाज पलट गया। निताई बसाक उसके दूसरे ही रोज़ आकर बोला, "कहिए सर, गुरुदेव कैसे लगे?"

सुकान्त था, उसकी पत्नी थी। सुकान्त ने कहा, "मिराक्युलस..."

"किस प्रकार?"

सुकान्त ने कहा, "मेरे पिताजी की मृत्यु की तारीख तक बतला दी गुरुदेव ने।"

"और नौकरी? नौकरी के बारे में कुछ नहीं कहा?"

सुकान्त बोला, "तीन साल की देर है।"

"देर किस बात की है?"

सुकान्त बोला, "उन्नति की। तीन साल बाद ऐसी उन्नति होगी कि मैं सोच भी नहीं सकूंगा।"

निताई बसाक ने कहा, "हमें तब भूल न जाइएगा सर, अगर मिनिस्टर हो जाएं तो एक-आध परमिट-वरमिट दिलवा दीजिएगा।"

"मुझे तो साहब, यकीन ही नहीं हो रहा था।"

सुकान्त की पत्नी ने कहा, "बहुत बार भविष्यवाणी फल भी जाती है।"

निताई बसाक बोला, "गुरुदेव की ऐसी-ऐसी अलौकिक बातें हैं कि सुनकर आप लोग चौंक उठेंगे।"

सुकान्त बोला, "इसलिए तो आते वक्त मैं पांच रुपये भेंट चढ़ा आया गुरुदेव को...अच्छा, निताई बाबू, गुरुदेव क्या चले गए?"

"हां सर, भोर में चार बजे नाव पर चढ़ा दिया। भेंट में जितना

मिला, देना चाहा। लेकिन एक पैसा भी नहीं छुआ, तब मैंने दुलाल से कहा, यह पैसा हरिसभा के फंड में जमा कर दो…"

सुकान्त बोला, "वह हरिसभा है क्या अभी तक ?"

निताई बसाक बोला, "कहते क्या हैं सर ! हरिसभा नहीं है ? एक दिन आकर देखिए न, रोज झाड़-पोंछ होती है। आजकल कोई आता नहीं इसलिए एक ओर दुलाल की गायें बंधती हैं।"

तभी बाहर सड़क की ओर नजर जाते ही बोला, " अरे, निवारण जा रहा है !

" वह देखिए, इसे जानते हैं ? "

सुकान्त बोला,"हां-हां, क्यों नहीं, कीर्तिश्वर भट्टाचार्यजी का सरकार है न ?"

निताई बसाक ने वहीं बैठे-बैठे आवाज लगाई, "अरे निवारण, ए सरकार बाबू !"

सरकार बाबू पुकार सुन रुके। फिर इस ओर ताका।

"आओ-आओ, अन्दर आओ।"

निवारण आहिस्ते-आहिस्ते जूते खोलकर अंदर आया।

"इतनी सुबह-सुबह किधर चले ?"

निवारण बोला, "जी बसाक बाबू, जरा चंडीतला की ओर जा रहा था। मालिक का हुकम है।"

"क्यों, चंडीतला क्या करने जा रहे हो ? किस मुहल्ले में ?"

"जी, मछुआपाड़े।"

"मछुआपाड़े में क्या होगा इस वक्त ? मछली चाहिए ?"

निवारण बोला, "जी नहीं, सुबह साहाजी के घर गया था, साहाजी पूजा करने चले गए इसलिए बात नहीं हो पाई, अब जा रहा हूं किशना मछुए के पास, दो-एक बातें पूछनी थीं। सुना है, किशना अभी जिंदा है।"

निताई बसाक ने कहा, "जिंदा तो है हीं। खासा तगड़ा हो रहा है। तुम्हारे मालिक की तरह पंगु होकर नहीं पड़ा है।'

निवारण बोला, "जी, मालिक की तरह कितनों को इतने दुःख झेलने पड़े हैं, आप ही कहिए, लड़का गया, लड़के की बहू गई, पोती गई—खुद

ापना स्वास्थ्य भी…"

"लेकिन गुरुदेव ने तो कहा कि पोती मरी नहीं है, ज़िंदा है !"

निवारण बोला, "यही सुनने के बाद तो मालिक जाने कैसे हो गए हैं…"

"कैसे हो गए हैं ?"

"जी, कल सारी रात सीने के दर्द से छटपटाते रहे। मालकिन भी जागती रहीं, मैं भी जागता रहा। तीनों ने ही जागकर रात काटी। सुबह-सुबह मुझे साहाजी के घर भेजा, लेकिन वहां पता चला कि गुरुदेव तो चले गए, अब किशना माझी के पास जा रहा हूं, अगर उससे कुछ पता चल पाए…"

जिस पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर को लेकर इतनी दर-दस्तूर हो रही थी, उसी पेंपुलबेड़ के पासवाली आहर के उस पार देखा गया, कुदाल-फावड़े लिए कुली-मज़दूरों ने काम शुरू कर दिया है। सुबह किसीकी नजर नहीं गई उस ओर, सुबह-सुबह किसे पड़ी थी उधर जाने की।

किशनगंज से करीब ढाई मील की दूरी होगी। यहां से केदारेश्वर भट्टाचार्य के ज़माने में खासी आमदनी थी। यानी कि चुंगी से भी सालाना आमदनी का बन्दोबस्त था। मालिक ने भी इस आमदनी का भोग किया है। चंडीतला के मछुए यहां मछली का कारोबार करते थे। सालाना नीलामी होती। एक-एक सरदार पूरी बस्ती की ओर से ठेका लेते। यह बात बीस-पच्चीस साल पहले की है। उन दिनों इच्छामती में पानी था। बारिश के दिनों में जब ढाल का पानी नदी में आता तो दोनों ओर की मेंड़ ढहरा पड़ती। जगह-जगह मेंड़ की मिट्टी धंस जाती। पानी मेंड़ लांघकर उठान की ज़मीन पर आ पहुंचता। धान के खेतों को पार कर ढाल से होकर पेंपुलबेड़ की पास वाली आहर के गड़हा में जाकर पड़ता। लगातार तीन दिन बारिश होने पर तो कहना ही क्या। इच्छामती और आहर एकाकार हो जाती और तब माझी मछली पकड़ने वाले जाल लेकर निकल पड़ते। किशनगंज के दूसरे लोग भी टोकरी, गमछे लिए धान के खेतों में आ उतरते। किसका खेत और किसकी ज़मीन, इस बात का

कोई हिमाव नही रहता था। मछुआ टोली के लोग सारी-सारी रात चारों ओर से पानी बांधने की कोशिश करते। बड़े-बड़े पेड़ों की शाखाएं, तने और मिट्टी डालकर मछलियां अटकाने की कोशिश करते। उन कुछ दिनों में किशनगंज मछलियों की गंध से सराबोर हो उठता।

लेकिन उसके बाद जाने क्या हुआ, इच्छामती का वह तेज भी धीरे-धीरे कम हो चला। उधर किशनगंज के दक्षिण में बांगड़ीपोता की ओर रेल का नया पुल बन गया, और पानी का ज़ोर भी कम हो गया। अब लगातार दस दिन बारिश होने पर भी पानी मेड़ लांघकर उठान तक नहीं पहुंचता। आहर सूखते-सूखते फटने लगी। चैत-बैसाख के महीनों में ग्वाले अपनी गाय, भैंस और बकरियां चराने के लिए आहर की इस ज़मीन पर ले आते। आदमकद ऊंची-ऊंची घास यहां उग आती। गाय-बकरियां भर पेट खाती।

लेकिन तभी से मालिक के खराब दिन शुरू हुए। आहर जल-कर की भी अदायगी नहीं होती। अब कोई ठेकेदार नहीं लेता। एक ज़माने की पानी से परिपूर्ण यह आहर अब खुले आसमान के नीचे धूल उड़ाती है। उस ओर देख-देखकर मालिक का हृदय व्यथा से भर उठता है। यह 'आहर' ही जैसे मालिक का हृदय था और वही हृदय अब सूख गया था। उसके साथ ही हरतन भी चली गई, सिद्धेश्वर भी लापता हो गया। अकेली बहूरानी बची थी। वह भी एक रोज़ सारी माया त्याग चल बसी। बचने के नाम पर वे अकेले ही थे।

निवारण रोज की तरह सुबह बाज़ार गया। खबर सबसे पहले बाज़ार में ही सुनी। पश्चिमी मुहल्ले का हलधर भी बाज़ार आया था। उसीने पूछा "मालिक ने क्या आहर बेच दी, सरकार बाबू ?"

निवारण हक्का-बक्का रह गया। वह बोला, "क्यों ? आहर क्यों बेचने लगे ?"

"लेकिन साहाजी के आदमी तो रास्ता बन्द कर रहे हैं। आते वक्त देख आया हूं।"

रास्ता बन्द कर रहे है ? बात कैसी अटपटी-सी लगी। एक मिनट भी रुकना मुश्किल था उसके लिए। हांफते-हांफते ढाई मील का रास्ता तय

के जब निवारण वहां पहुंचा तब तक सब कुछ खत्म हो चुका था। हर के एक ओर घेरना पूरा हो गया था। निताई बसाक का मैनेजर दानंद देख-रेख कर रहा था और करीब तीन सौ मज़दूर पूरे दम काम में लगे थे।

निवारण ने वहीं खड़े होकर कुछ देर दम लिया।

छाता लिए खड़े सदानंद ने दूर से ही निवारण को देखा। पास आते ही बोला, "आइए, सरकार बाबू, आइए, छाते के नीचे चले आइए—पसीने से तरबतर हो गए हैं..."

निवारण छाते के नीचे नहीं गया। उसकी जैसे बोलती ही बंद हो गई थी।

सदानंद ने फिर कहा, "आहा, मिट्टी देखते हैं, जैसे सोना..." कह-कर उसने झुककर मुट्ठी-भर मिट्टी उठा ली।

निवारण ने उस ओर नहीं देखा। बोला, "किसके हुक्म से ये मज़दूर लगाए हैं तुमने ? यहां आने का हुक्म किसने दिया तुम लोगों को ?"

सदानंद बोला, "इसका मतलब ?"

"मतलब तुम अच्छी तरह जानते हो सदानंद ! इस ज़मीन का मालिक तुम्हारा मालिक नहीं है, मालिक अभी भी ज़िंदा हैं, अभी तक मर नहीं गए हैं—यह तो जानते हो ?"

सदानंद बोला, "जी सरकार बाबू, सो तो मुझे मालूम ही न था..."

"तुम्हें यह नहीं मालूम कि मालिक अभी ज़िंदा हैं ?"

सदानंद बोला, "सो नहीं कहता, मेरे कहने का मतलब है कि म-कान तो पलट गया है आहर का।"

"मालिकाना पलट गया ! कैसे ?"

"जी, यह आहर तो साहाजी ने खरीद ली है न।"

यह बात सदानंद ने बड़े निर्विकार भाव से कही। लेकिन निवा-आसमान से गिरा। उसने कहा, "देखो सदानंद, देश में अराजक-है लेकिन आसमान में सूरज-चंद्रमा सब मौजूद हैं—जानते हो न ? जाने पर साहाजी की क्या हालत होगी, शायद तुम्हें यह बात स

जरूरत नहीं है। अभी भी कहता हूं, अपने आदमियों से रुकने को कहो, नहीं तो बाद में बवाल हो जाएगा—कहे देता हूं।"

सदानंद भी थोड़ा उत्तेजित हो उठा। उसने कहा, "सरकार बाबू, अदालत ही दिखलानी है तो इतनी तकलीफ उठाकर इस धूप में क्यों खड़े हैं, जाइए न, अदालत में ही पधारिए।"

निवारण भी साधारणतः कभी इतना उत्तेजित नहीं होता। बोला, "मैंने उचित बात कही और तुम मुझे अदालत दिखला रहे हो सदानंद? सोचते हो, अदालत जा नहीं सकता! मालिक की हालत खराब है इसीलिए क्या अदालत में भी जाने की औकात नहीं रही, समझते हो?"

सदानंद और नहीं रोक पाया अपने-आपको। बोला, "जाइए न, जो करना हो सो कर लीजिए, फालतू बकझक न करें।"

"क्या कहा?"

उधर के लोगों को शायद सिखला रखा था। अचानक निवारण अपने चारों ओर देख अचकचा गया। उसने देखा, चारों ओर से जैसे बहुत-से लोगों ने उसे घेर लिया है। चारों ओर अच्छी तरह देखने के बाद जैसे उसका सिर चकराने लगा। चिलचिलाती धूप, सिर जैसे फटा जा रहा था। जब तक उसे होश रहा तब तक याद है। सब जैसे उसके ऊपर टूट पड़े। कुछ दीख नहीं रहा था, कुछ सुन नहीं रहा था, समझ भी नहीं आ रहा था। सब कुछ गड्डमड्ड हो गया था।

मालिक के पास जो भी खबर आती, साधारणतः निवारण के मार्फत ही पहुंचती। जब तक आंखें ठीक थीं, अखबार खरीदते थे, बाद में लोगों से पढ़वाकर सुनते। किशनगंज के लोग भी आकर इधर-उधर की बहुत-सी खबरें दे जाते। अब वह सब बंद हो गया है। वे ही लोग अब जाते हैं दुलाल साहा के घर।

निवारण सुबह का बाजार गया था। दोपहर हो चली, अभी तक उसका पता नहीं है।

बड़ी बहूजी ने यथा रीति चूल्हा सुलगा दिया था। तीन आदमियों के लिए खाना बनाने में वक्त लगता ही कितना है। देखते-देखते पटाक-

से खाना बन जाता है। इसके बाद फिर कोई काम नहीं रहता घर में। घर में बात करने वाला भी कोई नहीं है। बड़ी बहूजी की भी उमर हो गई है। लड़का, बहू, पोती सब जा चुके हैं। एक औरत आकर ऊपर का काम कर जाती है। झाड़ू लगा जाती है, मसाला पीस देती है, या हुए तो कपड़े धो देती है। फिर थाली भर भात लेकर चली जाती है।

रात को सरसों का तेल गर्म करके मालिक के पास आने पर भी खास बात नहीं होती। बड़े चुपचाप आदमी हैं। उस रोज़ किशना माझी की खोज में जाने के बाद से मालिक जैसे कुछ चंचल हो गए थे। निवारण ने पूरी बात सुनकर भी उनका मन जैसे छटपट कर रहा था।

निवारण ने कहा था, "उसने कहा है, वह खुद एक बार आपके पास आएगा। आपके जाने की ज़रूरत नहीं है।"

मालिक ने कहा था, "लेकिन तुम उसे साथ ही क्यों नहीं लिवा लाए ?"

"जी, वह अपने नाती के घर जा रहा था, इसीसे नहीं आया था। नाती मोहनपुर में है। मोहनपुर से लौटते ही यहां आने को बोला है।"

"लेकिन इतने दिन हो गए, अभी तक आया क्यों नहीं ?"

"जी, मोहनपुर कोई यहां थोड़े ही है। वहां जाएगा। नई जगह पहुंचकर क्या एक दिन में वापस आ सकता है ? उसने कहा है कि हर-तन के संस्कार के वक्त वह मौजूद था। छोटे बाबू ने श्मशान पहुंचकर किशना माझी को खबर कराई थी। उसीसे लोगों को बुलाकर लकड़ियों का इन्तजाम किया था।"

"फिर ? संस्कार हुआ था ?"

निवारण ने कहा था, "किशना लकड़ियों का इन्तजाम कराकर अपने घर चला गया था। इसके बाद आंधी-पानी देखकर फिर नहीं आया था।"

"इसके माने संस्कार नहीं हुआ ?"

निवारण ने कहा था, "किशना इससे ज्यादा कुछ नहीं कह पाया। और कौन-कौन श्मशान में था, उसे याद नहीं है, बूढ़ा भी तो हो गया है। सब कुछ याद रखना भी मुश्किल।"

"लेकिन तुमने कहा क्यों नहीं कि और लोगों ने पूछनाछ कर पता लगाए ? मछुआटोली के और भी लोग तो थे उस रोज़।"

"यह भी कहा था उससे, लेकिन वह जाने के लिए तैयार था। और कुछ नहीं बोला।"

"लेकिन तुमने खुद ही किसीसे पूछ लिया होगा ? मछुआटोली तो गए ही थे।"

निवारण ने कहा था, "किशना ने खुद ही कहा कि वह मोहनपुर से लौटने पर पता लगाएगा, इसीलिए मैंने कुछ नहीं कहा, वापस चला आया।"

मानिक को तसल्ली नहीं हुई। वक्त नाम की चीज़ नहीं है। एक काम भी अगर कोई कर पाता। फिर भी दो रोज़ तक राह देखी। सोच रहे थे, किशना अब आए, तब आए। हर रोज़ सुबह उठते ही बाहर की ओर देखते। आंखों में उतनी रोशनी नहीं रही है। सड़क पर आते-जाते लोगों को भी पहचान नहीं पाते। फिर भी कोशिश करते, नीचे आकर पूछते, "किशना मांझी आया ?"

"जी नहीं, अभी तक तो नहीं आया।"

"आए तो मुझे बुला लेना।"

"जी, आपको फौरन खबर करूंगा। आपके पास ही तो आएगा वह।"

"आएगा-आएगा तो कब से सुन रहा हूं, लेकिन आता कहां है।

निवारण ने कहा, "जी, वह मोहनपुर गया है, वापस लौटते ही आएगा। जब बोला है तो आएगा, ज़रूर। किशना मांझी बुरा नहीं है।"

मानिक भन्ना जाते, कहते, "कैसा आदमी है. यह बात मुझे सिखलाने की ज़रूरत नहीं है लेकिन आ क्यों नहीं रहा है वह ?"

ज़्यादा देर बात करने से कहीं सिर भारी न हो जाए इसलिए मानिक और कुछ नहीं बोलते। सीधे ऊपर चले जाते। दिन भर में तीन-चार बार ऊपर-नीचे करने में ही सीना धड़कने लगता था। उसके बाद सारा गुस्सा उतरता बड़ी बहूजी पर। जैसे सारा कसूर उन्हीं का हो। कहते, "नहीं-नहीं; तेल-मालिश करने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

इसपर भी बड़ी बहूजी हाथ बढ़ा देतीं। सारी ज़िंदगी ही तो मालिक का गुस्सा सहती आई हैं। उनका मिज़ाज जानती हैं। कहतीं, "ज़रा मालिश कर दूं, देखना, नींद आएगी।"

"नींद आ जाने से ही क्या फायदा है! अब तो हमेशा के लिए नींद आने में ही चैन मिलेगा।"

उनके साथ ही ज़रा ठंडे हो जाते। कहते, "अब यही देखो न, कोई किसी काम का नहीं है। निवारण को किशना माझी के पास भेजा था। लेकिन उस निवारण के द्वारा कुछ हो सकता है? भला आदमी कह गया कि ज़िंदा है, तो ज़रा पता लगा लेने में नुकसान ही क्या है! जिससे जो कुछ कहा, मिल गया। यही नहीं मिलेगा! अगर अभी ज़िंदा है तो मालूम है, अठारह साल की उम्र हो गई होगी। तुम्हें भी कोई चिंता-फिकर नहीं है! सारी चिंता मेरे ही सिर है! तुम्हें क्या लड़की के लिए माया-मोह कुछ भी नहीं होता?"

अंधेरे में बड़ी बहूजी का चेहरा दिखलाई नहीं दे रहा था। बोलीं, "मेरी बात जाने दो।"

"सो तो है ही, मेरा और है ही कौन! मेरी बात तो कोई नहीं सोचता। देखते-देखते हरिसभा के नाम पर दुलाल साहा ने ज़मीन और पैसा मुझसे ठग लिया, किसीने सोचा है इस बारे में? मैंने कहा है कभी तुमसे इस बारे में? या तुम्हींने कभी कुछ जानना चाहा है?"

बड़ी बहूजी ने इस बात का भी कोई जवाब नहीं दिया।

"जो हुआ, ठीक ही हुआ। जहन्नुम में जाए सब। मुझे ही क्या है! देखते-देखते चला जाऊंगा। तब पता चलेगा तुम लोगों को! ज़मीन-जायदाद मुझे तो ले जानी नहीं अपने साथ। मेरे पीछे तुम्हें पहनने की तकलीफ न हो, इसीलिए सोचता हूं यह सब। नहीं तो क्या पड़ी है!"

इसी तरह क्या-सब कहते रहते।

लेकिन उस दिन सुबह उठते ही धम-धम करते नीचे पहुंचे। ...रण मुंह-हाथ धोकर कुर्ता गले में डालने ही जा रहा था। ...पूछा, "सज-धजकर किधर चल दिए? ऐसा कौन-सा ज़रूरी

पड़ा ?"

"कहीं जाने को कह रहे हैं मुझसे ?"

"तुम्हें और कहां जाने को कहूंगा ! तुम्हारे लिए कौन-सा काम हो सकता है ?"

"जी, आप कहिए तो सही कि कहां जाना है !"

"मैं कहूंगा और तब जाओगे तुम ! खुद ही अक्ल नहीं है तुम्हारे ! किशना मांझी के यहां गए कितने दिन हो गए तुम्हें, लेकिन आज तक उसका पता नहीं है। तुम क्या एक बार जा नहीं सकते थे ? एक बार जाकर पता नहीं लगा सकते थे कि वह मोहनपुर से वापस लौटा या नहीं ?"

इसके बाद निवारण नहीं रुका। बाजार की थैली लेकर निकल गया। झटपट सौदा लेकर लौटते वक्त मछुआटोली का चक्कर लगा आएगा। बड़ी बहूजी भी चूल्हा सुलगाकर बैठी थी। नौकरानी ने मसाला पीसा। दो बाल्टी पानी भी लाकर रख दिया रसोईघर में। लेकिन सरकार बाबू का पता नहीं था अभी तक।

नौकरानी मुहल्ले की ही थी। काम करते सालों हो गए। पहले मां काम करती थी, अब लड़की काम करती है। बग़ैर एक जने के काम चल भी कैसे सकता है।

बड़ी बहूजी ने कहा, "तू घर जा गौरी, तेरी मां फिकर करती होगी।"

गौरी बोली, "रसोई नहीं चढ़ाओगी मां ?"

"सरकार बाबू बाजार से ही नहीं लौटे, रसोई कैसे चढ़ाऊं ?"

गौरी और कब तक रुकती ! वह भी चली गई। बड़ी बहूजी भात चढ़ाकर बैठी थी। भात हो गया। बड़ी बहूजी ने भात का मांड निकाला। फिर दाल चढ़ाई। दाल भी हो गई। इसके बाद करने को कुछ नहीं था। रसोईघर में चुपचाप बैठी रहीं। बाहर आंगन में धूप खिसकते-खिसकते पूरब की ओर दालान में जाकर हल्की हो गई। उधर छाया भी हो गई। सरकार बाबू का अभी भी पता नहीं है। पूरा घर जैसे आधी रात की तरह सांय-सांय कर रहा था।

अचानक घर के सदर दरवाज़े पर कुछ लोगों की आवाज आई।
लोग ज़ोर-ज़ोर से बातें करते वहां आए थे।
मालिक चौंक उठे। पहले साफ़-साफ़ नहीं देख पाए। सामने वाले
...की पगडंडी पार कर बहुत-से लोग सदर दरवाज़े पर आए थे।
...आने पर भी उन्हें पहचान नहीं पाए मालिक।

"कौन ? कौन हो तुम लोग ?"

पहले की तरह लोगों का आना-जाना तो रहा नहीं है। इसीसे ज़रा अजीब लग रहा था।

"मैं हलधर हूं मालिक !"

हलधर को जानते थे मालिक। उनकी रैयत का ख़ास आदमी था। पर तभी मालिक ने अचानक जैसे भूत देखा। निवारण के सारे बदन पर खून की धार बह रही थी। मालिक ने ज़रा और झुककर देखा।

"निवारण है न ? क्या हुआ इसे ?"

घर के अंदर और भी बहुत-से लोग जमा हो गए थे। सरकार बाबू को उन लोगों ने तख्त पर लिटा दिया। निवारण के मुंह से कोई बात नहीं निकल पा रही थी। चोट सिर में ही गहरी थी। निवारण कुछ बोलने जा रहा था. उससे पहले ही हलधर बोल उठा, "सरकार बाबू से किशनगंज के बाजार में मुलाकात हुई थी। मैंने पूछा कि मालिक ने पेंपुलवेड़ के पास वाली आहर बेच दी है ?"

मालिक जैसे आसमान से गिरे। बोले, "कहते क्या हो हलधर ? पेंपुलवेड़ के पास वाली आहर मैंने बेच दी है ! क्यों बेचने लगा किसे बेचूंगा ?"

"जी, साहाजी को। यही तो सुना है मैंने !"

"दुलाल साहा को बेच दी है ? मेरा क्या दिमाग ख़राब हो ... है ?"

पूरी बात सुनकर मालिक आगबबूला हो उठे। दुलाल साहा ... पाखंडी है ! वह जमीन हथियाने के लिए काफी रोज से मंसूबे बां... था। शुगर मिल खोलेगा। मालिक वहीं खड़े-खड़े थरथर कांपने ... अचानक उन्हें लगा, जैसे उनके घर की जमीन भी उनके पां...

खिसकी जा रही है। उनके देखते-देखते केदारेश्वर भट्टाचार्य-वंश का सारा ऐश्वर्य धूल में मिल गया था। एक तरह से यही भर बाकी रहा था। और जमीन-जायदाद तो सब एक के बाद एक जा ही चुकी थी। इस आहर का ही भरोसा था उन्हें। यह भी चली गई तो उनके पास बाकी क्या रहेगा? उनका रिहाइशी मकान? उसे जाते भी कितना वक्त लगता है?

जो लोग निवारण को लेकर आए थे, वे अभी भी खड़े थे। दोनों पक्षों में उनका कोई मतलब नहीं है। किसी एक पक्ष के भी नहीं हैं। हालांकि दोनों पक्षों के ही साथ हैं। दोनों पक्ष के उत्थान-पतन के साथ ये लोग भी चढ़ते उतरते हैं।

"डाक्टर बाबू को खबर कर आऊं मालिक?"

कहकर एक जना चला गया। मालिक निवारण के चेहरे पर झुके देख रहे थे। किसीने निवारण की धोती से कपड़ा फाड़कर उसके माथे पर पट्टी बांध दी थी। उसके ऊपर खून जमकर पपड़ी हो गया था।

मालिक ने पूछा, "ये लोग तुम्हें मारने क्यों लगे निवारण? क्या किया था तुमने?"

निवारण की आंखों से टपटप आंसू गिरने लगे।

"जमीन बेचने की बात किसने कही तुमसे?"

निवारण ने बहुत ही आहिस्ता से कहा, "मालिक, इसका बदला एक रोज भगवान जरूर लेंगे।"

"भगवान की बात जाने दो निवारण; इतनी उमर हो गई तुम्हारी, इतना सब देख चुके हो, फिर भी भगवान के नाम नालिश कर रहे हो।"

"जी, ठीक है मालिक, लेकिन चांद और सूरज तो उग रहे हैं अभी तक।"

"उगने दो! वे लोग तुम्हें मारने क्यों लगे? तुमने हाथ उठाया था उन लोगों पर?"

निवारण ने कहा, "जी, सदानद देख-रेख कर रहा था, उसने कहा कि साहाजी ने जमीन खरीद ली है। इसपर मैंने कहा—मालिक जमीन

और मुझे पता नहीं चलेगा ? उसके बाद क्या हुआ, मुझे नहीं
त ।"

मालिक गुस्से के मारे लाल-पीले हो गए ।

उन्होंने कहा, "हरामजादे, सुअर के बच्चे ने समझा क्या है ? गरीब
गया हूं तो क्या समझता है कि मर गया हूं ? थाना, पुलिस और
वर्नमेंट कुछ भी नहीं है ?"

हलधर बोला, "मालिक, थाने में रपट लिखाइए, हम गवाही देंगे।"

निवारण हाथ हिलाने लगा । फिर कमजोर आवाज में बोला,
"नहीं-नहीं..."

मालिक बोल उठे, "तुम्हें डर किस बात का है, दो पैसे गांठ में हो
गए हैं इसलिए गैरकानूनी काम करते रहेंगे और हम चुपचाप सहते
रहें ?"

अचानक बाहर गाड़ी रुकने की आवाज हुई । सभी देखने लगे, बात
भी अजीब थी । जंगल जहां खत्म होता है, वहीं उस संकरी पगडंडी के
पास आकर मोटरगाड़ी रुकी, कीर्तिश्वर भट्टाचार्य आंखों से देख नहीं
पाते लेकिन दुलाल साहा की मोटर की आवाज पहचानते हैं । उस ओर
देखकर उन्होंने अपनी नजर और भी तेज की । लेकिन तिसपर भी कुछ
अंदाज नहीं कर पाए ।

हलधर बोला, "साहाजी की गाड़ी है ।"

मालिक ने मन-ही-मन अपने-आपको तैयार किया ।

आज किसी तरह कोई रहम नहीं करेंगे । इस दुलाल ने जिंदगी-
जलाया है । विनय का बाना पहन उनके मुंह का कौर छीना है । उ
देखते-देखते किशनगंज में सिर उठाकर खड़ा हुआ है । उससे भी पेट
भरा । अब जोर-जबरदस्ती के रास्ते कीर्तिश्वर को खत्म करना च
है । इतनी हिम्मत हो गई है इसकी !

तभी हलधर फिर बोल उठा, "क्या मालूम, साहाजी नहीं
तो नई बहू है ।"

नई बहू ! दुलाल साहा की पुत्र-वधू !

नई बहू गाड़ी से उतरकर सीधे आने लगी । मालिक कु

नहीं पा रहे थे। जैसे एक छाया-मूर्ति आकर उनके पास खड़ी हो गई। आते ही उनके पांव छूकर हाथ माथे से लगाया।

"मैं नई बहू हूं ताऊजी!"

मालिक नई बहू की ओर एकटक देखते रहे। ठीक नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें।

काफी देर तक उनके मुंह से कोई आवाज़ नहीं निकली। मालिक जैसे यकीन ही नहीं कर पा रहे थे। उनका व्यक्तित्व, उनकी मर्यादा, सब जैसे दुलाल साहा की इस पुत्र-वधू के आगे पलभर में धूलिसात हो गए।

लेकिन नई बहू को तब उस ओर देखने की फुर्सत नहीं थी। सीधे निवारण के तख्त के पास झुककर बैठ गई। बोली, "सरकार बाबू, हुआ क्या था, मुझे साफ-साफ बतलाइए तो?"

निवारण के माथे पर पट्टी बंधी थी। दर्द के मारे आंखों के आगे अंधेरा छाया हुआ था। अचानक इस अनहोनी घटना से जैसे उसका दर्द भी कम हो गया, लेकिन मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। वह भी जैसे हतवाक् हो गया था। हलघर के साथ खड़े जो लोग इतनी देर से बात-चीत कर रहे थे, वे सब भी पलक मारते जैसे गूंगे हो गए थे।

"आप मुझे सब कुछ बतला दें कि क्या हुआ था। किसने आपके ऊपर हाथ उठाया? आप बेहिचक मुझे बतलाएं। डरने की कोई बात नहीं है, मैं असली घटना जानना चाहती हूं।"

तब जैसे मालिक के मुंह से बात फूटी।

उन्होंने कहा, "इससे पहले यह बतलाओ कि तुम्हें यहां किसने भेजा है? दुलाल साहा ने? या कि निताई बसाक ने? मेरे पास आकर वकालत करने के लिए किसने भेजा है तुम्हें, पहले वही कहो।"

नई बहू ने मुंह घुमाया, मालिक की ओर देखकर बोली, "आप मेरा जो भी अपमान करेंगे ताऊजी, मैं चुपचाप सह लूंगी लेकिन निरीह भले आदमी पर अन्याय, अत्याचार नहीं चलने दूंगी।"

मालिक बोले, "अत्याचार दुलाल साहा के कहने पर ही हुआ है यह भी मालूम होगा?"

ाप यकीन करें, मुझे कुछ भी मालूम नहीं है, और जो कुछ सुना
ार यकीन नहीं था। इसीलिए सरकार बाबू से पूरी बात सुनने के
हां चली आई हूं।"

मालिक बोले, "यहां आई हो, यह अच्छा ही किया लेकिन अन्याय
किसीने किया ही हो तो उसका प्रतिकार करने की क्षमता क्या
में है?"

नई बहू ने कहा, "प्रतिकार अगर खुद न भी कर सकूं तो देश में
लिस है, थाना है, वे लोग प्रतिकार कर सकते हैं; कोर्ट-अदालत-हाई-
कोर्ट भी तो हैं।"

मालिक मुसकराए। कर्कश व्यंग्य की मुसकान ने उनके चेहरे को
और भी तीखा कर दिया, फिर बोले, "थाना, पुलिस और अदालत का हाल
तुम्हें मालूम नहीं है इसीसे कह रही हो। आज बगैर पैसे के वहां भी पूछ
नहीं होती। और दुलाल साहा को अच्छी तरह मालूम है कि मेरे पास
वह नहीं है; इसीलिए इतनी हिम्मत हो गई है।"

नई बहू बोली, "बाबा भोजन करने के बाद अभी-अभी विश्राम करने
लेटे थे, इसीलिए उनके कान में बात नहीं डाली, नहीं तो उन्हें भी साथ
ले आती।"

मालिक बोले, "तुम्हारे न कहने पर भी, दुलाल साहा होशियार
आदमी है, उसे सब मालूम है। अंदर-ही-अंदर उसीकी सूझ-बूझ से यह
सब हुआ है।"

नई बहू ने कहा, "बाबा के नाम नाहक दोष न दें ताऊजी, बाबा
इस पचड़े में नहीं हैं।"

"तब क्या पॅपुलबेड़ के पासवाली आहर भूतों ने खरीद ली?"

मालिक गुस्से में थे। ज़रा ऊंची आवाज़ में ही बोल रहे थे। रु
कर फिर बोले, "आज दो साल से दुलाल साहा और निताई बसाक
ज़मीन को हथियाने पर तुले हैं। निवारण को भी फोड़ने की को
करते आए हैं। इस बीच मेरी हालत ऐसी क्या खराब हो गई
ज़मीन बेचने जा पहुंचूंगा दुलाल साहा के पास? मैं ही ज़मीन के
हूं और मुझे ही कुछ पता नहीं? यह भी यकीन करने को

मुझसे ? इस जमीन के आसरे ही हमारी सात पुश्त बनी रही, हमारा वंश, हमारी प्रतिष्ठा एक दिन इसी पर निर्भर थी। आज न हुआ, वह जमीन सूख गई है लेकिन इसीलिए क्या मैं उसे बेच डालूंगा ? इसके अलावा बेचने के लिए मुझे और कोई नहीं मिला, उस चोर, बदमाश और पाखंडी को बेचूंगा ? सोचती हो, तुम दुलाल साहा के लड़के की बहू हो इसलिए जो कहोगी, मैं वही मान लूंगा ? इतना मूर्ख और बेवकूफ समझ रखा है ? सोचती हो, मैं तुम लोगों का मतलब नहीं समझता ?"

इसके बाद *आवाज जरा धीमी करके बोले*, "खैर, अब जाओ, काफी देर हो गई है, तुम अब घर जाओ बिटिया, फैसला जो करना होगा मैं अकेला ही कर लूंगा, तुम जाओ।"

नई बहू जैसे अब तक सपना देख रही थी। मालिक की बात पूरी होते ही बोली, "लेकिन आपने वह आहर बेची नहीं है ?"

मालिक ने और भी जोर देकर कहा, "नहीं-नहीं, नहीं बेची ! मेरा दिमाग इतना खराब नहीं हुआ कि पेट के लिए वह जमीन बेच दूं।"

"लेकिन मैंने दलील देखी है।"

"अगर देखी है तो गलत देखी है, और नहीं तो जाली दलील देखी है।"

"लेकिन उसमें आपके दस्तखत हैं, किशनगंज के रजिस्ट्रार के दस्तखत हैं, *स्टाम्प है, सब कुछ मैंने अपनी आंखों से देखा है।*"

मालिक ने कहा, "तब तुम अपने ससुर को अभी तक पहचान नहीं पाईं। दुलाल साहा दिन को रात कर सकता है। रात को दिन कर सकता है। ऐसा कोई पाप नहीं, जो दुलाल साहा और निताई बसाक नहीं कर सकते। तुम अभी बच्ची हो, तुम्हारी समझ में ये बातें नहीं आएंगी।"

"लेकिन उस आहर के लिए आपको पच्चीस हजार रुपये नहीं मिले ?"

"अरे नहीं-नहीं ! दुलाल साहा और पच्चीस हजार देगा ! अच्छा, अब तुम जाओ, अभी खाना भी नहीं खाया होगा तुमने, मैंने भी अभी नहीं खाया-पिया है। सिर भन्ना उठा है। बहुत काम पड़ा है, मैं

करनी है। इस दुलाल साहा को जेल भेजे वगैर मुझे चैन नहीं
ा।"

नई वहू ठीक नहीं कर पा रही थी कि क्या कहे।

अचानक दुलाल साहा का ड्राइवर आ पहुंचा। वोला, "वहूरानी
से कांत वावू आए हैं वुलाने के लिए।"

कांत भी खड़ा था। उसने कहा, "हां वहूरानी, साहाजी ने आप
लाने भेजा है।"

"क्यों, वावा क्या सोकर उठ गए हैं ?"

"जी हां, डाभ का पानी पीने का समय हो गया है।"

नई वहू को जैसे अचानक याद आया। खाने के वाद थोड़ी देर विश्राम करने के वाद साहाजी डाभ का पानी पीते हैं। डाभ का पानी पीकर कचहरी में वहीखाते लेकर वैठते हैं। यह वंधा नियम है। इतना वक्त किधर निकल गया, कव दिन ढल गया, इस वात का किसीको खयाल ही नहीं रहा।

नई वहू ने मालिक की ओर घूमकर कहा, "अच्छा तो ताऊजी, अव मैं चलूं ?"

मालिक वोले, "हां जाओ। और अपने ससुरजी से कहना कि इस मामले का फैसला करके ही दम लूंगा मैं।"

नई वहू ने इस वात का जवाव नहीं दिया। सिर का पल्लू ज़रा और खींचकर वाहर जाते हुए वोली, "चलो दिगंवर!"

हलधर अपने दलवल के साथ इतनी देर से काठ के पुतले की तर चुप खड़ा था। अव उसके मुंह से भी वात फूटी। उसने कहा, "
मालिक, अव चलें हम लोग ?"

मालिक उस ओर ध्यान न दे अंदर चले गए। कुर्ता पहनकर आए, पैरों में चप्पलें डालते हुए वोले, "निवारण, इस वार मजा च कर छोड़ूंगा।"

कहकर वाहर की ओर चल दिए।

हलधर ने आगे वढ़कर पूछा, "इतनी दोपहर में कहां जा मालिक ?"

मालिक ने गंभीर आवाज में कहा, "थाने…"

कहकर फिर नहीं रुके। उसी चिलचिलाती धूप में बाहर निकल गए।

किशनगंज के बाजार में उसी रोज बात फैल गई। कानों-कान फैलते-फैलते बात ने दूसरी ही शक्ल ले ली थी। आखिर में जो कहानी बनी, वह यह थी—कीर्तिश्वर भट्टाचार्य का सरकार निवारण भाड़े के लठैत लेकर सुबह पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर दखल करने गया था। लेकिन निताई बसाक के आदमी वक्त से खबर पाकर उन्हें बाधा देने आए। जिससे निताई बसाक का मैनेजर सदानंद घायल होकर अस्पताल में पड़ा है।

सदानंद भी घायल हुआ है, यह शुरू में कोई नहीं जानता था।

मुकुंद ने कहा था, ' साहाजी, आप मालिक के नाम रिपोर्ट करिए—यह अधर्म कभी न सहिएगा।"

कांत खड़ा था। उसने कहा, "पच्चीस हजार रुपये भी लेंगे और जमीन दखल भी नहीं करने देंगे, इतनी शेखी…"

दुलाल साहा की कचहरी में जितने लोग बैठे थे, सब यही कह रहे थे, "मालिक सठिया गए हैं। लगता है, पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर का मोह नहीं छोड़ पा रहे हैं। जमींदारी जब थी तब थी। वह युग कब का चला गया, जमींदारी का मोह अभी तक बना है। चीनी की मिल लगने से कितने लोगों को काम मिलेगा, कितने लोगों को दोनों जून रोटी मिलेगी, सो कुछ भी नहीं ? अपने वंश का गौरव और मर्यादा ही मालिक के लिए सब कुछ है !"

मुकुंद बोला, "ग्वालों के मुहल्ले में तो साहाजी, दूसरी ही बात सुनने में आई।"

कांत बोला, "क्या सुना ?"

"सुना है कि मैनेजर बाबू ने पीट-पीटकर सरकार बाबू की हड्डी-पसली एक कर दी है।"

दुलाल साहा माला जप रहा था, अचानक जैसे भक्ति का ...

…से एक बार अन्दर और एक बार बाहर कर रहे हैं। पिछले …से यही चल रहा है। जिस रोज़ निवारण सरकार माथे पर …ांध आया, सीने का दर्द भी उस रोज़ से बढ़ गया है। दुलाल …की पुत्र-वधू उस रोज़ आई थी, तभी से।

…ड़ी बहूजी वैसे बोलती नहीं हैं, लेकिन उस दिन चुप न रह पाईं। …, "उन लोगों की बहू आई थी न तुम्हारे पास !"

मालिक बोले, "हां, देख रहा हूं तुम्हारे कान तक सभी बातें जा …चनी हैं। तुम्हें खबर किसने दी, जरा मैं भी तो सुनूं ?"

"गौरी ने।"

"अड़ोस-पड़ोसवाले ने खूब मजा लिया होगा ?"

बड़ी बहूजी ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

"लें, मजा लूटें, इस बार सारा मजा निकाल दूंगा। और भी बहुत कुछ गुनोगी अब। दुलाल साहा ही रहेगा या मैं ही रहूंगा। कहता है, मैंने जमीन बेच दी है। पच्चीस हजार में मैंने पंपुलबेड़ के पास वाली …आहर बेची है दुलाल साहा को ! और कोई काम नहीं है जो दुलाल …साहा को जमीन बेचूंगा। जमीन दान कर दूंगा, ऐसा ही हुआ तो लुटा …गा, दुलाल साहा को क्यों देने लगा सुनूं जरा ? वह क्या साला है …रे बाप का ?"

इसी तरह जाने क्या-क्या बड़बड़ाते रहते आप-ही-आप।

उसी दिन सुबह उठने के बाद यथारीति नीचे आए थे मालिक। आकर देखते हैं, निवारण तख्त पर उठकर बैठ गया है। साथ-ही-सा… मालिक का पारा चढ़ गया। चढ़ा तो था ही, और चढ़ गया।

बोले, "यह क्या, तुम उठकर बैठ क्यों गए ?"

निवारण ने धीमी आवाज में कहा, "आज थोड़ा अच्छा लग …है।"

"अच्छा लग रहा है माने ? तुम्हें अच्छा लगने से ही हो ग… अभी से अच्छा लगना तो ठीक नहीं है। मालूम है, दुलाल साह… निताई बसाक के नाम थाने में डायरी कर दी है ?"

"जी, क्यों बेकार वह सब झझट करने गए ? इससे कोई फायदा नहीं होगा।"

"फायदा नहीं होगा माने ?"

"जी, जिसके पास पैसा है, वही जीतेगा। बड़े आदमियों के साथ मामले-मुकदमे में न उतरना ही समझदारी है।"

"लेकिन मेरे पास क्या पैसा नहीं है ? मकान नहीं है ? यह मकान बेचकर मुकदमा लड़ूंगा। दुलाल साहा को धुल मे न मिलाया तो मेरा नाम नहीं। तुम चुपचाप लेटे रहो। उधर दुलाल साहा ने सदानंद को भी अस्पताल मे भर्ती कराया है। वह भी माथे पर पट्टी बांधे वहां पडा है, मालूम है तुम्हे ?"

निवारण बोला, "लेकिन मैंने तो सदानद को हाथ भी नहीं लगाया।"

"तुम क्यों लगाने लगे हाथ ? मुझे बन्द कराने के लिए खुद ही अपना सिर फोड़ लिया है। दुलाल साहा मुझे जमीदारी चाल सिखला रहा है ! सोचता है, मैं कुछ भी नहीं समझता ! जैसे मैं एकदम मूर्ख हूं ! तुम लेटे रहो, कुछ रोज और लेटे रहो, जब तक पुलिस की जांच पूरी नहीं हो जाती तब तक तुम्हे पड़े रहना है। देखता हू, दुलाल साहा कैसे पार पाता है..."

निवारण कोई चारा न देख फिर से लेट गया तख्त पर।

किशनगज के सदर अस्पताल मे सदानद पलग पर पड़ा था। दुलाल साहा ने कोई कमी नहीं रहने दी है। साहाजी के घर से दोनो वक्त महीन चावल का भात आता है। अस्पताल के डाक्टर और नर्स उसकी पूरी हिफाजत करते हैं। दुलाल साहा भी देख जाता है।

दुलाल साहा पूछता है, "सदानद, अब जी कैसा है ?"

"जी, दर्द से सिर फटा जा रहा है..."

"हरि का स्मरण करो सदानद ! हरि का नाम लो। इस भव-सागर मे हरि छोड़ और किसीका भरोसा नहीं है। मुझे देखते हो न। हरि को छोड़ और किसीकी चिन्ता नहीं करता, नहीं तो इस उमर मे मुझे दीक्षा लेने की क्या पड़ी थी ? ऐसी कौन-सी आफत थी कि मैं दीक्षा

ह से एक वार अन्दर और एक वार वाहर कर रहे हैं। पिछले
से यही चल रहा है। जिस रोज निवारण सरकार माथे पर
ांधे आया, सीने का दर्द भी उस रोज से वढ़ गया है। दुलाल
ी पुत्र-वधू उस रोज आई थी, तभी से।

ड़ी वहूजी वैसे वोलती नहीं हैं, लेकिन उस दिन चुप न रह पाई।
, "उन लोगों की वहू आई थी न तुम्हारे पास !"

मालिक वोले, "हां, देख रहा हूं तुम्हारे कान तक सभी वातें जा
ती हैं। तुम्हें खवर किसने दी, जरा मैं भी तो सुनूं ?"

"गौरी ने।"

"अड़ोस-पड़ोसवाले ने खूव मजा लिया होगा ?"

वड़ी वहूजी ने इस वात का कोई जवाव नहीं दिया।

"लें, मजा लूटें, इस वार सारा मजा निकाल दूंगा। और भी वहुत कुछ सुनोगी अव। दुलाल साहा ही रहेगा या मैं ही रहूंगा। कहता है, मैंने जमीन वेच दी है। पच्चीस हजार में मैंने पेंपुलवेड़ के पास वाली आहर वेची है दुलाल साहा को ! और कोई काम नहीं है जो दुलाल साहा को जमीन वेचूंगा। जमीन दान कर दूंगा, ऐसा ही हुआ तो लुटा दूंगा, दुलाल साहा को क्यों देने लगा सुनूं ज़रा ? वह क्या साला है मेरे वाप का ?"

इसी तरह जाने क्या-क्या वड़वड़ाते रहते आप-ही-आप।

उसी दिन सुवह उठने के वाद यथारीति नीचे आए थे मालिक। आकर देखते हैं, निवारण तख़्त पर उठकर वैठ गया है। साथ-ही-साथ मालिक का पारा चढ़ गया। चढ़ा तो था ही, और चढ़ गया।

वोले, "यह क्या, तुम उठकर वैठ क्यों गए ?"

निवारण ने धीमी आवाज़ में कहा, "आज थोड़ा अच्छा लग र
हैं।"

"अच्छा लग रहा है माने ? तुम्हें अच्छा लगने से ही हो गय
अभी से अच्छा लगना तो ठीक नहीं है। मालूम है, दुलाल साहा
निताई वसाक के नाम थाने में डायरी कर दी है ?"

"जी, क्यों बेकार वह सब झंझट करने गए ? इससे कोई फायदा नहीं होगा।"

"फायदा नहीं होगा माने ?"

"जी, जिसके पास पैसा है, वही जीतेगा। बड़े आदमियों के साथ मामले-मुकदमे में न उतरना ही समझदारी है।"

"लेकिन मेरे पास क्या पैसा नहीं है ? मकान नहीं है ? यह मकान बेचकर मुकदमा लड़ूंगा। दुलाल साहा को धूल में न मिलाया तो मेरा नाम नहीं। तुम चुपचाप लेटे रहो। उधर दुलाल साहा ने सदानंद को भी अस्पताल में भर्ती कराया है। वह भी माथे पर पट्टी बांधे वहां पड़ा है, मालूम है तुम्हें ?"

निवारण बोला, "लेकिन मैंने तो सदानद को हाथ भी नहीं लगाया।"

"तुम क्यों लगाने लगे हाथ ? मुझे बन्द कराने के लिए खुद ही अपना सिर फोड लिया है। दुलाल साहा मुझे जमींदारी चाल सिखला रहा है ! सोचता है, मैं कुछ भी नहीं समझता ! जैसे मैं एकदम मूर्ख हूं ! तुम लेटे रहो, कुछ रोज और लेटे रहो, जब तक पुलिस की जांच पूरी नहीं हो जाती तब तक तुम्हें पड़े रहना है। देखता हूं, दुलाल साहा कैसे पार पाता है···"

निवारण कोई चारा न देख फिर से लेट गया तख्त पर।

किशनगंज के सदर अस्पताल में सदानद पलग पर पड़ा था। दुलाल साहा ने कोई कमी नहीं रहने दी है। साहाजी के घर से दोनों वक्त महीन चावल का भात आता है। अस्पताल के डाक्टर और नर्स उसकी पूरी हिफाजत करते हैं। दुलाल साहा भी देख जाता है।

दुलाल साहा पूछता है, "सदानद, अब जी कैसा है ?"

"जी, दर्द से सिर फटा जा रहा है···"

"हरि का स्मरण करो सदानद ! हरि का नाम लो। इस भव-सागर में हरि छोड़ और किसीका भरोसा नहीं है। मुझे देखते हो न। हरि को छोड़ और किसीकी चिन्ता नहीं करता, नहीं तो इस उमर में मुझे दीक्षा लेने की क्या पड़ी थी ? ऐसी कौन-सी आफत थी कि मैं दीक्षा

जाता ?"

सदानंद ने कहा, "थाने से दरोगा बाबू आए थे।"

"अच्छा, तो तुमने क्या कहा ?"

"जी, जो मालूम है सो ही कह दिया मैंने। कह दिया कि मैं मजदूरों को ज़मीन पर मेंड़ लगवा रहा था कि अचानक कीर्तिश्वर भट्टाचारजी के मैनेजर निवारण सरकार ने पीछे से आकर मेरे सिर पर लाठी से वार किया।"

दुलाल साहा ने कहा, "देखो, सच बोलना सदानंद, भूलकर भी झूठ न बोल बैठना, नहीं तो तुम्हारी जीभ गिर जाएगी।"

"पुलिस और-और लोगों की भी गवाही लेगी ?"

"तुम्हें इस सबके बारे में सोचने की ज़रूरत नहीं है। निताई हैं। तुमने जिस तरह गवाही दी है, ये लोग भी उसी तरह गवाही देंगे, सच छोड़कर झूठ कोई भी नहीं बोलेगा। अरे, झूठ बोलने से नरक में नहीं सड़ना पड़ेगा ? नरक का डर नहीं है क्या किसीको ? तुम चुपचाप हरि का नाम लो पड़े-पड़े, मेरी तरह सब कुछ हरि के भरोसे छोड़कर आराम करो, देखोगे…"

बात पूरी नहीं हो पाई। नई बहू पास आकर खड़ी हो गई।

दुलाल साहा ने हंसकर कहा, "यह देखो, नई बहू भी आ गई। जानते हो सदानंद, पहले अपनी यह नई बहू भी गलत समझ बैठी थी। इसका खयाल था, मैं ही जैसे मालिक से झगड़ा करने गया ! अरे, अगर यही सब करना है तो यह दीक्षा क्यों ली ? मुझे किस चीज़ का मोह है ? बाकी जितने दिन हैं इस दुनिया में, शांति से कट जाएं, और कुछ भी नहीं चाहिए बाबा ! धन-दौलत, रुपया, मकान, गाड़ी, किसी चीज़ में आकर्षण नहीं रहा बेटी !"

नई बहू नहाने के बाद रूखे बाल किए आ गई थी। ला... किनारी की रेशमी साड़ी पहने थी। उसी ओर देखकर दुलाल सा... राने लगा। फिर बोला, "नहीं बेटी, तुम्हारा कोई दोष नहीं ... ऐसी ही जगह है, यहां असली सोना देने पर भी लोग उसे पीत... हैं। सुनार से जांच कराते हैं।"

नई बहू बोली, "बाबा, निताई काका आ रहे हैं···"

"निताई आ गया तो यहां क्यों नहीं चला आया ?"

नई बहू बोली, "कलकत्ते में खबर भेजी है, मिनिस्टर को लेकर शाम तक आ पहुंचेंगे।"

"मिनिस्टर ! मिनिस्टर किसलिए ? कौन-सा मिनिस्टर ?"

"कालीपद मुखर्जी, आदमी अभी-अभी आकर खबर दे गया है। घर पर ही रुकेंगे सब लोग। किशनगंज के बाजार में सभा होगी। हां, तो इन सभीके खाने-पीने का इन्तजाम करना पड़ेगा ! इसलिए मैं खुद ही चली आई।"

दुलाल साहा बोला, "आकर अच्छा ही किया।"

"लेकिन कितने रोज रुकेंगे, इस बारे में तो कुछ भी नहीं कहलाया।"

"दो-एक रोज तो जरूर ही रुकेंगे। मंत्री खुद आ रहे हैं तो कम-से-कम दो सौ लोगों का इन्तजाम तो करना ही पड़ेगा। चलो, घर चलें।"

"खाने में क्या-क्या रखना होगा ?"

"सभी कुछ रखना पड़ेगा—मांस-मछली, पुलाव-कलिया, चॉप-कटलेट और पूरी-भात···"

"टेबल-चेयर लगाकर या जमीन पर पत्तों पर ?"

दुलाल साहा ने कहा, "इन्तजाम दोनों तरह का ही रखना पड़ेगा। उस बार क्या हुआ था, याद है ? हम लोगों ने पत्तलों का इन्तजाम किया था। बाद में कांटे-चम्मच और चेयर-टेबल का इन्तजाम करना पड़ा था ! रिस्क लेने की कोई जरूरत नहीं है। अपने यहां दोनों तरह का इन्तजाम तो है ही। और जब पुलिस मंत्री हैं तो हो सकता है, गोरे साहब हों। इसलिए दोनों तरह का इन्तजाम ही करना पड़ेगा। खर्च की फिकर न करना। हरि के ऊपर छोड़ दो—हरि ही सम्हाल लेंगे।"

मालिक पहले तो पहचान ही न पाए। बात भी तो कितनी पुरानी हो गई। पूरे पन्द्रह-सोलह साल पहले देखे किशना मांझी को न पहचान पाना स्वाभाविक है। सिर के बाल सन के समान सफेद हो गए हैं। बैठके

इधर-उधर देख रहा था। आंखों से शायद ठीक से अंदाज़ा
र पा रहा था।

"कौन ?"

मालिक की नज़र भी उतनी अच्छी नहीं है।

"मैं किशना माझी मालिक—पा लागन..."

किशना माझी ने आगे बढ़कर मालिक के सामने ज़मीन पर सिर
ा।

"साथ में यह कौन है ?"

किशना माझी बोला, "मेरा नाती है, जमाई के घर गया था, साथ
में इसे भी ले आया। मालिक को परणाम कर।"

किशना माझी के नाती ने भी नाना की तरह ज़मीन पर माथा छुआ-
कर प्रणाम किया।

मालिक बोले, "हां तो किशना, मैंने अपनी पोती के बारे में जानने
के लिए तुम्हें बुलाया था। पोती का ख़याल है तुम्हें ? हरतन ! तीन
साल की मेरी पोती ! सिद्धेश्वर की लड़की ! वह तो मर गई थी, बाद
में सिद्धेश्वर भी लापता हो गया, बहूरानी भी चल बसी—ये बातें मैं तो
भूल ही गया था, लेकिन अभी कुछ दिन पहले दुलाल साहा के यहां एक
साधु महाराज आए थे, तो उसकी जन्म-पत्री देखकर उन साधु महाराज
ने ही कहा कि वह अभी जीवित है।"

किशना माझी बोला, "जी, सरकार बाबू से सब सुना है मैंने।"

"ओह, तुम सुन ही चुके हो तो फिर से कहने की क्या ज़रूरत है।
तो यह बात सुनने के बाद से मेरा जी छटपट कर रहा है, समझे ? चांद
सी बिटिया को इस तरह फेंक दिया। अब तुमसे क्या कहूं कि मुझे कित
अफ़सोस हो रहा है। अच्छा, अच्छी तरह सोचकर देखो कि हर
बिटिया का संस्कार हुआ या नहीं ? कुछ याद है तुम्हें ?"

किशना ज़मीन पर ही बैठ गया।

बोला, "याद तो किया है मालिक, मुझे जितना ध्यान है, वि
का संस्कार होते नहीं देखा मैंने—बड़े आंधी-पानी की रात थी।
का इन्तज़ाम करके मैं घर चला गया था। सत्य था, सत्य से कह

तू देखना, मैं चलूंगा—दमे का रोगी हूं न।"

"सत्य कौन है ?"

"जी, बसंत माझी का लड़का।"

"तो वह क्या कहता है ? उसे खबर नहीं कर सकते ? अगर कुछ याद हो उसे ?"

"जी, तब तो झंझट ही खत्म हो जाता ! वह तो यहां नही है, लड़के के पास रहता है।"

"लड़का कहां रहता है ?"

"नौकरी करता है हावड़ा की जूट मिल में। कलकत्ता।"

मालिक जैसे उत्तेजित हो उठे। बोले, "उसके लड़के का ठिकाना दे सकते हो ? न हो अपने इस नाती के हाथ ही भेज देना, तुम्हें खुद आने की जरूरत नही है, पर्ची पर उसका ठिकाना किसीसे लिखवाकर भेज देना। मैं खुद ही कलकत्ते जाकर सत्य से मिल आऊंगा।"

किशना बोला, "सो तो ठीक है, पर आप इस उमर में अकेले कलकत्ता कैसे जाएंगे ?"

मालिक ने कहा, "क्या किया जाए ? जाना ही होगा।"

जरा रुककर फिर बोले, "इसके अलावा मेरा और है ही कौन जो जाएगा ? लड़का-लड़की, नाती-पोते कोई भी तो नही है मेरे, जिसके भरोसे निश्चिन्त चैन की नींद सो सकूं, ऐसा कोई नहीं है मेरे किशना, कोई नहीं।"

किशना बोला, "जी, सो तो भगवान की मर्जी, आप उसमें क्या कर सकते हैं।"

मालिक ने कहा, "नहीं किशना, भगवान को दोष न दो, भगवान ने कुछ किया होता तो भी बात समझ में आती लेकिन मेरा सर्वनाश करने वाला तो इंसान है। दुनिया में इंसान का इंसान जैसा शत्रु दूसरा नहीं है. फूल-सी लड़की इस तरह चली जाती ? बेचारी बहूरानी बची थी—[illegible] भी चल बसी ! यह किसकी शत्रुता है ? किसकी ?"

किशना माझी को समझ में कुछ नहीं आया। वह आंखें फाड़े [illegible] की ओर देखता रहा।

और किसकी ! इस दुलाल साहा की ! इस दुलाल साहा ने ही
रा सर्वनाश किया है। नहीं तो इस हरिसभा के झंझट में पड़ने की
जरूरत थी मुझे ? और, तो और यह दुलाल साहा ही इतनी जगह
यहां किशनगंज ही क्यों आया मरने ? और कोई जगह नहीं मिली ?
देख लो, एक निवारण था, उसका भी सिर फोड़ डाला।"

जरा रुककर फिर बोले, "खैर, जाने दो, ये बातें कहकर तुम्हारा
माग खराब नहीं करना चाहता। तो वही ठीक है। ठिकाना भेज देना,
कलकत्ते जाकर आखिरी कोशिश कर आऊंगा। जब डूबना ही है तो
क बार नीचे तले तक देख लिया जाए ! अच्छा, तुम्हें कैसा लगता है
किशना, हरतन जीवित है ?"

किशना ने जैसे दिलासा देते हुए कहा, "जी, साधु-संन्यासियों की
कही बातें कभी झूठ हो सकती हैं—अपने दिव्यचक्षुओं से सब कुछ देख
सकते हैं।"

"मेरा भी यही ख़याल है। साधु महाराज ने क्या कहा, मालूम है ?
कहा है कि हरतन अगर वापस आ जाए तो भट्टाचार्य-भवन फिर
से जगमगा उठेगा, पहले की तरह फिर से लोगों का आना-जाना शुरू
होगा, नौकर-चाकर और आत्मीय लोगों से घर भर उठेगा। आज दुलाल
साहा को देख रहे हो न, और पहले भट्टाचार्य-भवन को भी देखा है तुम
लोगों ने ! उसके सामने यह, तुम्हीं कहो न ? उसके साथ इसका कोई
मुकाबला हो सकता है ? ओछा कहीं..."

किशना माझी चुपचाप सुन रहा था।

मालिक कहते रहे, "लेकिन मैं भी आज कहे देता हूं तुझसे कि इस
दुलाल साहा की ठसक निकालकर ही दम लूंगा। मैं भी देखता हूं। यह
दुलाल साहा कितना बड़ा हरामी है। सोचता है, मैं मर गया हूं। मैं म
नहीं हूं, जैसे सिर पर भगवान जैसी कोई चीज ही नहीं है ! अगर भ
वान नहीं है तो ये चांद और सूरज घूम कैसे रहे हैं, दुनिया कैसे घूम
है ? यह जो इतना बड़ा युद्ध हो गया, हिटलर भी मर गया,
गया दुनिया का कोई नुकसान हुआ है ? कहो, तुम्हीं कहो ? मैंने
गलत कहा है ? दुनिया का रत्तीभर भी नुकसान हुआ है ?"

किशना माझी बोला, "जी, सो तो है ही मालिक···"

"तब ! इतना गरूर किस बात का ? लड़का विलायत गया है इस-लिए ज़मीन पर पांव ही नहीं पड़ता; जूट की आढ़त क्या हुई जैसे सिर ही चढ़ गया है ! एक बार अगर हुस्तन आ जाए तो फिर कहां जाओगे बच्चू ! तब अगर मेरा पाव ज़मीन पर न पड़े, मैं भी अगर सिर चढ़ बैठूं ?"

कहते-कहते मालिक को शायद खयाल ही न रहा कि इतनी बातें वे किसे सुना रहे हैं। खयाल होते ही रुक गए।

बोले, "खैर, जाने दो, भगवान की कृपा से फिर कभी दिन फिरे तो तुम लोग खुद ही देख लोगे, अभी से कहकर क्या फायदा—तो वही बात पक्की रही किशना, याद रहेगी न मेरी बात ?"

किशना माझी अपने नाती का हाथ थामे उठ खड़ा हुआ। बोला, "जी, अच्छी तरह याद रहेगी।"

मालिक बोले, "खुद ही कलकत्ते जाऊंगा किशन ! दूसरों के किए काम नहीं होता, दूसरों के भरोसे रहने पर काम चौपट होता है। जैसे भी हो, खुद ही जाऊंगा।"

किशना माझी नाती का हाथ पकड़े सदर दरवाज़े से निकलकर झाड़ियों के बीच खो गया। मालिक उन लोगों को नहीं देख पा रहे थे, लेकिन उनकी आंखों के आगे एक दूसरा ही दृश्य उभर आया। उन्हें लगा, जैसे देखते-देखते सामने एक बाग लहलहा उठा। फूलों का बाग। कोने की ओर।

फूल की झाड़ी फिर से खिल उठी। सफेद फूलों के गुच्छे खिल रहे हैं। लाल चौड़े रास्ते पर लाल और सफेद घोड़े-जुती गाड़ी खड़ी है। सईस-कोचवान गाड़ी के सिरे पर बैठे हैं। उधर तालाब में फिर से पानी तरंगें मार रहा है। पहले की तरह ही कमल के फूल खिले हैं। मालिक के सीने की धड़कन जैसे बढ़ गई। आनन्द और भय से मालिक जैसे मन-ही-मन सिहर उठे। एक-एक कर कमल के फूलों को गिनने लगे। आश्चर्य ! पूरे एक सौ आठ कमल के फूल ! एक सौ आठ कमल के फूल एकसाथ खिल रहे हैं।

सामने वाले खुले मैदान में पूरे दम
शनगंज में दुलाल साहा ... ... चल रही थी। निताई बसाक को एक मिनट बैठने की फुर्सत नहीं
असली नेता वही है। खद्दर की तहाई चादर कंधे पर डाल रखी
बीच-बीच में दुलाल साहा के पास पहुंचकर कान में कुछ फुसफुसाता,
मुंह पर उंगली रखकर भीड़ की ओर देख कहता—आहिस्ते,
हिस्ते...

जो लोग भाषण सुनने के लिए आए हैं, सब सीधे-सादे और सरल
आदमी हैं। गड़बड़ करने की हिम्मत उनमें नहीं है। ब्लॉक डेवलेपमेंट
ऑफिस के पूरे स्टाफ को आज छुट्टी मिली है। वे लोग सब पहली लाइन
में बैठे हैं, उनके पीछे जूट के व्यापारी हैं। फिर हैं मछुआटोली के अन-
पढ़ किसान और खेत-मजदूरों का समूह। भय और श्रद्धा के मारे सब
गद्गद हैं। गद्गद हुए बगैर चारा भी नहीं है। थाने से पुलिस ने आकर
चारों ओर से घेरा डाल रखा है। बीच में तख्त लगाकर, स्टेज बनी है
और उसपर कुर्सियां हैं। डिप्टी मजिस्ट्रेट, थानेदार और दुलाल साहा
वहीं बैठे हैं। फूलों की माला गले में डाले मंत्री कालीपद मुखर्जी भाषण
दे रहे हैं।

दुलाल साहा ऊपर नहीं बैठ रहा था।

उसने कहा था, "मेरी क्या जरूरत है? मैं कौन हूं? मैं यहां एक
ओर बैठकर ही भाषण सुनूंगा।"

निताई बसाक ने कहा था, 'यह भी कोई बात हुई? यही तो मुश्किल
है तुम्हारे साथ। मंत्री कोई रोज-रोज तो आएंगे नहीं, इसी मौके पर
छुपे रहोगे तो अकेला मैं क्या-क्या सम्हालूंगा?"

आखिर बहुत कहने-सुनने के बाद दुलाल साहा राजी हुआ। हाथ
हरिनाम की माला-झोली थी। हरिनाम जपते-जपते ही भाषण सुन र
था।

मंत्री महोदय का गला अच्छा था। वे कह रहे थे, "इस संकट के स
सिर्फ सरकार के हाथ देश-सेवा की जिम्मेवारी छोड़कर निश्चित बै
काम नहीं चलेगा। आप लोग भी आइए, आप लोगों को भी हमा
देश-सेवा में हाथ मिलाकर चलना है। यह देश आपका अपना है

अनेक कष्ट झेलकर अनेक जवानों की बलि चढ़ाकर आपको यह स्वाधीनता प्राप्त हुई है। जिस तरह आपने यह स्वाधीनता अर्जन करने का दायित्व एक दिन अपने कंधों पर लिया था, अब वही स्वाधीनता भोगने का गुरुदायित्व भी आपको लेना पड़ेगा। आप ही देश के मालिक हैं, आप यानी कि जनसाधारण ही इस देश के कर्णधार हैं, हम मंत्री होते हुए भी कुछ नहीं हैं। आपकी ओर से हम देश की उन्नति के लिए चेष्टा कर रहे हैं। गांधीजी ने क्या चाहा था? बोलिए, आप लोग गांधीजी के बारे में तो जानते ही हैं, आप ही कहिए, गांधीजी ने क्या चाहा था, कहिए ?"

हलधर सामने ही बैठा था। मंत्री महोदय ने उसीकी ओर देखकर प्रश्न किया था। वह और भी घबड़ा गया।

कांत पास ही बैठा था। उसकी हिम्मत की दाद देनी चाहिए। झट से बोला, "जी, वे चाहते थे कि हम लोगों का भला हो।"

मंत्री महोदय ने बात लपक ली। बोले, "बिलकुल ठीक। गांधीजी रामराज्य प्रतिष्ठित करना चाहते थे। रामराज्य माने क्या होता है? आपने रामायण पढ़ी है, रामराज्य के बारे में आप लोगों को ज्यादा कुछ बतलाने की आवश्यकता नहीं है। यानी रामराज्य माने ऐसा राज्य, जहां···जहां···"

दुलाल साहा ने निताई बसाक की ओर देखकर इशारे से पास बुलाया। निताई बसाक के पास आकर नीचे झुकते ही दुलाल साहा ने फुसफुसाते हुए पूछा, "मालिक मीटिंग में आए हैं क्या ?"

निताई ने कहा, "नहीं।"

"हिम्मत तो कम नहीं है। तुमने खबर कराई थी ?"

निताई ने कहा, "सुना है, बुड्ढा कलकत्ते गए हैं।"

"कलकत्ते! कलकत्ता क्या करने गए हैं? पहचान का है क्या कोई? खबर ली है ?"

निताई ने कहा, "अरे जाने दो न, मैं किसलिए हूं ?"

"नहीं, वो बात नहीं है, जरा होशियार रहना चाहिए। सदानंद को अस्पताल में चुपचाप रहने को कहो और डॉक्टर को दो सौ रुपये देने को

था, सो दिए हैं न ? डॉक्टर के हाथ में ही तो सब कुछ है न !"

"उस बारे में फिकर मत करो, वह लिख देगा कि लाठी की चोट ने से 'स्कल' फट गया है ।"

"स्कल माने ?"

निताई ने कहा, "इस वक्त ये बातें छोड़ो । बुढ़ऊ को ऐसा मजा खाऊंगा कि याद करेंगे । तुम देखे जाओ ।"

"और निवारण ? उसका क्या हाल है ? जिन्दा है न ?..."

मंत्री महोदय कह रहे थे, "हम लोग चाहते हैं कि भारत के साढ़े सात लाख गांवों के लोग अपनी समस्याओं का समाधान खुद ही करने के काबिल बनें । सरकार पक्की सड़कें बनवाएगी, आप लोग मिलकर दोनों ओर फलों के पेड़ लगाएं, देश की खाद्य-समस्या मिटाने का भार आपपर है । बंगाल सुजला-सुफला शस्य श्यामला देश है । आप लोग कोशिश करें तो यहां सोना फल सकता है । पोखरों में मछली पालिए, खेतों में धान रोपिए, आप जरा-सी कोशिश कर अन्न और वस्त्र-समस्या का समाधान कर सकते हैं । छोटी-छोटी बातों के लिए सरकार को परेशान न करें, सरकार बड़े-बड़े कामों में व्यस्त है । सरकार अगर आपकी इन छोटी-छोटी समस्याओं में ही लगी रहेगी तो बड़ी-बड़ी समस्याओं के बारे में कब सोचेगी ? इन कुछ ही सालों में सरकार ने क्या-क्या किया है, आप लोगों को मालूम ही होगा । डी० वी० सी० बांध बना है, मयूराक्षी बांध बन है. अब फरक्का बांध बनेगा । और भी बहुत-से काम बाकी हैं, अब अग सरकार को देखना पड़े कि किसने किसकी जमीन गैरकानूनी तरीके हड़प ली है, किसकी बकरी ने किसके खेत का धान खा डाला तो सर कोई भी काम नहीं कर पाएगी । आप भी आगे आएं, हमारे साथ मिलाएं, तभी तो राष्ट्र में नवजागरण होगा । तभी तो हम दुनि और पांच शक्तियों की तरह सिर ऊंचा करके खड़े हो सकेंगे । स जितना कुछ कर सकती है, कर रही है । हाल ही में रूस से ख्रुश्चेव हमारे कामों की प्रशंसा कर गए हैं, चीन से आकर चाऊ-एन पंडित नेहरू के जन्मदिन पर बहुत-से उपहार दे गए हैं । अपने की ओर हमने दोस्ती का हाथ बढ़ाया है, अखबारों में आपने प

देश दिनोदिन प्रगति की राह पर तेजी से बढ़ रहा है, ऐसे वक्त आप लोग पीछे न रहें। सारी दुनिया से हमारी दोस्ती है, जर्मनी ने हमारे लिए इस्पात का कारखाना बना दिया है, रूस ने हमारे लिए···"

दुलाल साहा ने फिर से इशारा किया निताई बसाक को।

निताई के पास आने पर उसने फुसफुसाकर कहा, "मंत्री महोदय को अस्पताल ले जाना होगा। उनको बतलाना होगा कि यहां का अस्पताल कितना सुव्यवस्थित है, वही सब···माने अस्पताल के लिए मैंने कितना चंदा दिया है, यही बात जरा, कायदे से···"

निताई बोला, "तुम फिकर मत करो।"

"एक बात और, मंत्री मेरे साथ बात कर रहे हैं ऐसी एक फोटो, समझे? बड़े साइज में मढ़वाकर टांगने के लिए···नई बहू से कहा है, खाने-पीने का इंतजाम जरा ठीक से करने के लिए···"

निताई बोला, "तुम बेकार नर्वस क्यों हो रहे हो? मैं तो हूं।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। पता नहीं, मंत्री अब दुबारा कब आएं। अरे हां, वह बात याद है न?"

निताई बसाक समझ नहीं पाया। उसने पूछा, "कौन-सी बात?"

"कब कौन-से काम में कसर रह जाए, कहा नहीं जा सकता न। मैंने नई बहू से कह रखा था कि वह मंत्री को प्रणाम करके पांच सौ चांदी के रुपयों की थैली उन्हें भेंट करे। शरणार्थी फ़ंड के नाम पर, माने···"

निताई बसाक कुछ कहने ही जा रहा था कि अचानक हुई तालियों की गड़गड़ाहट से सजग हो गया। दुलाल साहा भी सीधे होकर बैठा। कालीपद बाबू का भाषण पूरा हो गया था। निताई बसाक ने पीछे जाकर झुककर कहा, "वण्डरफुल भाषण हुआ, क्या बात है! बात को आपने इतना सहज करके समझा दिया कि पानी की तरह गले उतरे।"

मीटिंग पूरी होने के बाद काफी देर तक लोग आ-आकर कहते रहे—वाह, क्या भाषण दिया है!

सुकान्त राय ने सीधे आकर पदधूलि ली। माथे से लगाई। पत्नी भी थी। उसने भी पदधूलि लेकर माथे से लगाई। सुकान्त बोला, "वण्डरफुल सर, वण्डरफुल। किरणशंकर राय का भाषण सुना था, आपका भाषण

नसे भी ओजपूर्ण, उससे भी जोरदार था।"

दुलाल साहा ने कुछ भी नहीं कहा। वह तो जैसे निमित्तमात्र था। जैसे कुछ भी नहीं है। सारे कामकाज, वर्तमान-भविष्य सब कुछ जैसे हरि के भरोसे छोड़ निश्चित है। उसे न कोई उद्वेग है और न ही कोई दुश्चिता।

सुकान्त ने पूछा, "आपको भाषण कैसा लगा साहाजी ?"

दुलाल साहा ने कहा, "सब हरि की इच्छा है भाई, उसकी इच्छा हो तो हर काम सही उतरता है। इसीलिए तो कहता हूं कि इस भवसागर में एकमात्र हरि का भरोसा है।"

तब तक पुलिस वाले सजग हो उठे। कोई आगे न बढ़ आए, भीड़ ठेलकर कोई मंत्री महोदय के सिर पर न आ पाए। खास-खास कुछ लोगों को छोड़कर सबको पीछे हटा दिया—पीछे हटिए, पीछे हटिए।

सुकान्त राय निताई बसाक को ढूंढ़ रहा था। एक बार सिर्फ मामूली-सा परिचय हो पाया था। निताई बसाक ने ही परिचय करा दिया था।

निताई बसाक ने कहा था, "आप यहां के बी० डी० ओ० हैं, किरण-शंकर राय के प्रधान शिष्य।"

सुकान्त ने कहा था, "आपने शायद मेरी फोटो देखी हो। आनंद बाजार पत्रिका में छपी थी।"

"कैसी फोटो ?"

सुकान्त ने कहा, "जी, मैंने किरणशंकर राय की 'डेड बॉडी' को कंधा दिया था—केवड़ातल्ला श्मशान तक, पूरे सात मिल का रास्ता था, लेकिन यहां जंगल में पड़ा हूं, बच्चों के एजूकेशन के लिए अगर कहीं कलकत्ते के आसपास बदली हो जाती···"

भीड़ के मारे बुरा हाल था। अकेले में कोई बात कह सके, अपनी समस्या का ब्योरा सविस्तार समझाकर कह सके, इसका कोई भरोसा नहीं था। पुलिस के दरोगा, डिप्टी मजिस्ट्रेट, सब जैसे ठीक उसी वक्त आ धमके। मिनिस्टर को देखते ही हर कोई स्वार्थसिद्धि में लग जाता है। सुकान्त की बात पूरी होने से पहले ही और दस आदमी टूट पड़े। ठीक से बात कहने का मौका ही नहीं दिया किसीने।

निताई बसाक ने कहा था, "चलो ठीक है। परिचय तो हो गया। मिनिस्टर भी रहेंगे, मैं भी रहूंगा, आपको फिकर किस बात की है ?"

सुकांत ने कहा, "लेकिन देखा न आपने, हर किसीको ठीक इसी वक्त काम पड़ गया। सोचा था, किरणशंकर राय की बात कहकर ट्रान्सफर की बात उठाऊंगा।"

"लेकिन आप तो बच्चों की एजूकेशन की बात कर रहे थे, आपके बच्चे कहां हैं ?"

"बच्चों की एजूकेशन के अलावा और क्या कारण बतलाता ? और कोई कारण दिमाग में ही नहीं आया।"

"ठीक ही किया आपने, बाद में फिर चांस जुटा दूंगा आपके लिए। चीफ मिनिस्टर तक को इस किशनगंज में ला सकता हूं, मालूम है ? आप हैं कहां ! एक बार जरा शुगर मिल हो जाने दीजिए।"

हां, तो इस सबके बाद भी सुकांत ने आशा नहीं छोड़ी। मीटिंग के बाद ही झट से मिनिस्टर की पदधूलि माथे से लगाई। सोचा था, मौका मिलते ही अपनी बात कहेगा लेकिन पुलिस वालों ने फिर सब गड़बड़ कर दिया।

क्या करे, ठीक न कर पाकर सुकांत और सुकांत की पत्नी वहीं खड़े रहे। अगर निताई बाबू दिखलाई दे जाएं तो उनसे कहकर मिनिस्टर से अपनी बात कहने की आखिरी कोशिश करे। किशनगंज से एक बार चले जाने के बाद फिर क्या उसे मौका मिल जाएगा मिनिस्टर से बात करने का ? अचानक थोड़ी दूर पर निताई बसाक दिखलाई दिया।

"निताई बाबू, निताई बाबू !"

लेकिन निताई बसाक जैसे आज 'ईद का चांद' हो गया था। दूर भीड़ में एक बार जरा दिखलाई देकर फौरन ही भीड़ में फिर खो गया। पुलिस के पहरे में मिनिस्टर तब तक दुलाल साहा के घर, बाहर के दालान में पहुंच गए थे। साथ में डिप्टी मजिस्ट्रेट, दुलाल साहा और बहुत से गण्य-मान्य लोग।

घर के अंदर टेबल सजाकर खाने-पीने का इंतजाम हुआ था। वहां पहुंचते ही जैसे चौंक उठा—यह कौन है ! कौन है यह !

नई बहू भी वहां खड़ी थी। खड़ी-खड़ी बात कर रही थी। ससुर को देखते ही पास चली आई।

"नई बहू, वह कौन है ?"

नई बहू ने धीमे से कहा, "उस घर की बड़ी बहूजी आई हैं।"

दुलाल साहा की समझ में तब भी नहीं आया, निताई बसाक ने पास आकर पूछा, "बुढ़ऊ तो सुना है, सलाह-मशवरा करने कलकत्ता गए हैं, यह क्या करने आई हैं ?"

नई बहू बोली, "बड़ी मुश्किल में पड़ गई हैं। घर में कोई नहीं है, सरकार बाबू की हालत अब-जाए तब-जाए है, क्या करें, कुछ समझ में न आने पर नौकरानी को साथ लिए यहां चली आई हैं···"

निताई बसाक भभक उठा, "सरकार बाबू बीमार हैं तो हम क्या करें ? हमें क्या मतलब उससे ?"

दुलाल साहा दूरदर्शी आदमी ठहरा। उसने कहा, "कैसी बात कर रहे हो निताई ! विपत्ति में शत्रु-मित्र नहीं देखा जाता, मैं जा रहा हूं।"

निताई बसाक बोला, "इस वक्त तुम्हारे जाने से कैसे होगा ? यहां कौन सम्हालेगा ?"

"यहां देखने के लिए बहुत लोग हैं। आदमी का जीवन बड़ा है, न कि मिनिस्टर की आव-भगत। हरि-हरि, तब तो मैं बेकार ही हरि-हरि करता हूं।"

बड़ी बहूजी सिर ढके एक ओर खड़ी थीं। ऐसी मुश्किल में पहले कभी नहीं पड़ी थीं। घर में और कोई था नहीं, सो नौकरानी को साथ लेकर यहां चली आईं। घर के दीवानखाने में पड़े सरकार बाबू की हालत हाथ के बाहर हो चली है। आसपास कोई नहीं जिससे मदद मिल सके। मालिक अपनी धुन में कलकत्ते जा बैठे हैं। उनकी चिंता अलग लगी थी। खबर देनेवाला भी कोई नहीं था आसपास। गौरी आई काम करने, उसीको लेकर चली आईं। यहां इतनी भीड़ होगी, उन्हें यह भी मालूम नहीं था। पुलिस का पहरा देखकर ज़रा अजीब ही लगा था। लेकिन औरत को देख किसीने रोक-टोक नहीं की। सीधे अंदर चली आईं।

दुलाल साहा ने आगे बढकर कहा, "आप फिकर न करें मालकिन ! मैं सारी व्यवस्था किए देता हूं।"

कहकर किसीको पुकारा, "ए कांत, इधर आ।"

इसके बाद ही सारी व्यवस्था हो गई। अपनी गाड़ी में बैठाकर बड़ी बहूजी को घर पहुंचा दिया। डाक्टर बुलवा भेजा। निताई बसाक से कहा, "दिमाग जरा ठंडा रखकर काम करना चाहिए।"

निताई बोला, "कहां का कौन मरा या बचा, उससे हमें क्या मतलब ?"

'तुम्हारा सिर !"

दुलाल साहा ज़ोर-ज़ोर से माला फेरने लगा।

"निवारण को अभी अगर कुछ हो जाए तो क्या होगा, सोचकर देखा है ? अरे दिमाग को जरा ठंडा रखना चाहिए, हरि-हरि, अरे, यह हरि-हरि क्या ऐसे ही किया करता हूं ? जाओ, फोटो खिचवाने का इंतजाम करो। फोटो होने के बाद एक बार निवारण को देखने जाना है मुझे !"

उधर सभी मंत्रीजी को लेकर व्यस्त थे। मंत्रीजी के पासवाली कुर्सी दुलाल साहा के लिए खाली रखी गई थी। दुलाल साहा जाकर उसपर बैठा। कैमरामैन तय कर ही रखा था। वह भी तैयार था। दुलाल साहा के बैठते ही कैमरे में आंख बैठा दी उसने।

उधर दरवाज़े के सामने बड़ी बहूजी दुलाल साहा की गाड़ी में बैठीं।

नई बहू ने आहिस्ते-से दरवाजा बन्द करते हुए कहा, "आप जरा भी फिकर न करें, ताऊजी नहीं हैं तो क्या हुआ, हम लोग तो हैं। इधर का काम जरा सिमटते ही मैं बाबा के साथ आऊंगी, आप बेफिकर रहें।"

दुलाल साहा की गाड़ी स्टार्ट लेकर बड़ी सड़क पर जा पहुंची।

हावड़ा जूट मिल में उस रोज यात्रा ठीक जम नहीं रही थी।

'रानी रूपकुमारी !'

अराकान के राज्य की महारानी हैं। अराकान के राजा राजपाट खोकर जंगल और वनों में घूम रहे थे; राज्य में विद्रोह हो रहा था।

माथ थीं रानी रूपकुमारी और कन्या राजकुमारी वन्हिवाला। रास्ता भूलकर तीनों तीन दिशाओं में चले गए। काफी जमने वाला नाटक है। एक बार बैठने पर बगैर पूरा देखे उठने को जी नहीं करता। दर्शक बुत बने बैठे रहते। जब तक अंजना रानी रूपकुमारी का पार्ट करती रही, ऐसे ही चलता रहा। चंडी बाबू दोनों हाथों से पैसा बटोरते रहे। दल के आदमियों को मोटी तनख्वाह दी। लोग दूसरे दल को छोड़कर चंडी बाबू के दल में आते। चंडी बाबू खाना भी अच्छा खिलाते थे। साबुन और तेल के लिए भी लोगों को अपनी गांठ का पैसा नहीं खरचना पड़ता था।

चंडी बाबू कहते, "तुम लोग खुश रहो, मेरी खुशी तो इसीमें है। मेरा और कौन है, मेरे लिए तुम्हीं लोग सब कुछ हो।"

थोड़े साबुन और सरसों के तेल की ही तो बात थी। खरचा ही कितना आता था। पहले चंडी बाबू इस सबके लिए परवाह नहीं करते थे। चितपुर की थोक दुकान से सस्ता रंगीन साबुन, दर्जन के हिसाब से खरीद लेते और सरसों का तेल जब जहां होते वहीं मिल जाता। ज्यादातर उसका इंतजाम पार्टी की तरफ से ही हो जाता। नाम होता चंडी बाबू का।

लोगों ने बीड़ी-सिगरेट की भी मांग की थी। लेकिन चंडी बाबू उसके लिए राजी नहीं हुए।

चंडी बाबू बोले थे, "नहीं भाई, इसमें तो मेरा दीवाला ही पिट जाएगा। तेल-साबुन दे रहा हूं, धुएं का इंतजाम मेरे बस का नहीं है। इतना धुआं लगने से मेरी रोकड़ फेल हो जाएगी..."

जितना मिलता है, वही सही। इसके लिए किसीने ज्यादा बावेला भी नहीं किया।

चंडी बाबू कहते, "पैसे धुआं क्या जुटा नहीं सकता! लेकिन पराये पैसे पर फोकट में धुआं फूंककर गले का क्या हाल होगा? गले के बारह बज जाएंगे।"

लेकिन तेल-साबुन के दाम रोज बढ़ने लगे। पहले एक साबुन के पड़ थे छः पैसे और बहुत हुआ तो दो आने। उसी के लिए अब पांच आ मांगते हैं। और तेल? चंडी बाबू के दल की हालत जैसे-जैसे गिरती ग

सरसों के तेल का भाव उसी अनुपात में ऊपर उठता गया। पाकिस्तान का बाजार गया, आसाम का बाजार भी जा-जा कर रहा था, ऊपर से अंजना का शरीर टूटने लगा सो अलग। दल को लेकर बाबू जा रहे थे, पहला अंक पूरा करके मेक अप-रूम में आकर बोली, "सर, तबीयत कुछ गिरी-गिरी हो रही है।"

शुरू-शुरू में गोलियों से काम चलाया। एस्पीरिन की गोलियां। जहां भी जाते शीशी भरकर एस्पीरिन की गोलियां साथ ले जाते चटी बाबू। कहते, "घबड़ाने की कोई बात नहीं है, गोली खाकर एक गिलास पानी पी लो।"

बाद में उन गोलियों से काम नहीं चलता था। तब शुरू हुआ मिक्स्चर। डाक्टर के मिक्स्चर से कुछ रोज काम चला। लेकिन बाद में वह भी बेकार। बात वही की वही। सिर-दर्द ठीक होता तो बुखार लग जाता, और बुखार उतरता तो फिर वही सिर-दर्द। डॉक्टर ने कहा, "यह राजरोग है!"

बस। अंजना को जब से राजरोग हुआ, तभी से 'श्रीमानी ऑपेरा' भी जैसे लंगड़ा हो गया। किसी तरह नाम पर चल रहा था। एक लड़की नहीं थी जो दल को इस गिरती हालत में से खींच निकालती। फिर भी एक जमाने में मशहूर होने की वजह से 'श्रीमानी ऑपेरा' को अभी भी बॉन मिलते थे। लोग कहते—अरे, रानी के वेश में यह तो पुरुष पात्र है।

दाढ़ी-मूछ अच्छी तरह साफ कर, साटन का अच्छा ब्लाउज और जार्जेट की साड़ी पहनकर भी बंकू पकड़ा जाता। इसके अलावा बीड़ी पी-पीकर बंकू ने होंठों को इस कदर काला कर लिया था कि रसिक लोगों की नजरों से बच पाना मुश्किल था। वैसे चटी बाबू काफी दिनों से बंकू को बदलने की फिराक में थे। लेकिन वैसा कोई मिले कहां? कलकत्ते के थियेटर छोड़ मुफस्सल में धूल फांकने कौन जाता! बंकू जब गले को भरसक मुलायम बनाकर हाथ नचाकर गाता

कहां जाऊं, कहां जाऊं, मैं अबला नारी,
कौन यहां अपना,
कहां पाऊं शरण, हे अंतर्यामी···

तो दर्शकों में से लोग सीटी बजाना शुरू कर देते। इतने अच्छे पार्ट की एक्टिंग भी नहीं आती। नाटक धीमा पड़ जाता।

हावड़ा जूट मिल में भी उस रोज वही हो रहा था। चंडी बाबू के मेकअप-रूम में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ाने से क्या होगा, मन और कान तो नाटक में पड़े रहते। जूट मिल के बाबुओं ने मोटी रकम दी है एड-वांस में। अब अगर गड़बड़ हो गई तो आफत हो जाएगी। 'श्रीमानी ऑपेरा' के बारह बज जाएंगे। हुक्का पीते-पीते उसने आवाज़ दी, "फकीरे, हल्ला कुछ कम हुआ ?"

फकीरे ने कहा, "अभी तो दुर्लभराम का एक्ट चल रहा है। अभी कोई नहीं चिल्लाएगा। हल्ला होगा इसके बाद···"

मालिक कुर्सी पर चुपचाप बैठे थे। ऐसी जगह जीवन में कभी नहीं आए थे। बचपन में उन्होंने कितनी बार नौटंकी देखी है। 'नल-दमयंती' का नाटक कितनी बार उनके घर पर ही हो चुका है। 'हरिश्चन्द्र' भी हुआ है, 'विजयवसंत' नाटक हुआ है। किशनगंज के लोग उनके घर के सामने वाले मैदान में जमा होते। उन बातों को कहने की जगह यह नहीं है।

चंडी बाबू ने कहा था, "फरीदपुर के किशनगंज में उस बार बड़ी खातिरदारी हुई थी हमारी। खा-खा करके दल के लोगों के पेट ही चल निकले। अहा, क्या बात है, वैसा गुड़ हम कलकत्ते वालों ने कभी देखा भी नहीं है—आपके यहां का गुड़ कैसा है ?"

फकीरा बोला, "नहीं बाबू, पेट गुड़ खाने से खराब नहीं हुआ था। पेट तो खराब हुआ था चने की दाल खाकर···"

"तू चुप रह फकीरे, पेटू कहींका, लोभी की तरह जो मिलेगा, खाएगा। हुक्के में ठीकरा लगाया है ?"

"लगाया क्यों नहीं है, बगैर लगाए तम्बाकू सजता है ?"

"तो धुआं क्यों नहीं निकल रहा है ? दम मारते-मारते मेरे गाल दुखने लगे।"

मालिक से और नहीं रहा गया। बोले, "देखिए, मुझे बैठे-बैठे काफी देर हो गई। लगता है, सत्य मांझी यहां नहीं है।"

"यह कैसे हो सकता है ?" चंडी बाबू के सम्मान को आघात पहुंचा। उन्होंने पूछा, "आपको ठीक मालूम है कि इसी मिल में काम करता है ?"

मालिक ने कहा, "सुना तो यही है। मैं बसंत माझी को जानता हूं। हमारी रैयत में से ही था। उसीका लड़का है सत्य माझी। सुना है, सत्य माझी का लड़का यहां काम करता है। जरूरी काम न होता तो इस उमर में यहां मरने आता ? काम क्या, जीवन-मरण का प्रश्न है। इसी-लिए न झक मारनी पड़ रही है···"

कहते-कहते मालिक दम लेने के लिए रुके, फिर कहने लगे, "ठीक सुबह का बैठा हूं ट्रेन में, सियालदह पहुचते-पहुचते शाम हो गई। पहले कभी ऐसी जगह नहीं आया, आने का प्रयोजन भी नहीं पड़ा। आप नौटंकी की बात कह रहे थे न, यह नौटकी मैंने अपने घर के सामने मैदान में खुद कराई है। हजारों लोग मेरी ड्योढी पर नाटक सुनते। खैर, जाने दीजिए, इन बीती बातों में क्या रखा है, अब चलूगा मैं। रात की ट्रेन से वापस लौटना है।"

चंडी बाबू बोले, "लेकिन इतनी रात में कैसे जाएंगे ?"

"नही लौट पाया तो स्टेशन पर रात काटनी पड़ेगी। रुकने की और कोई जगह तो है नही।"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद भगवान है सिर पर।"

चंडी बाबू को जैसे इतनी देर बाद होश आया, बुजुर्ग आदमी हैं। देखकर लगता है, बड़े वंश के हैं। उन्होंने कहा, "साथ में किसीको लेकर आना था। यह कलकत्ता शहर है। आप वृद्ध आदमी हैं। मुझी को देखिए न, बावन साल की उमर हो गई, अब पहले-सा तेज नही रहा, किसी रोज मैं ही···"

कहते-कहते अचानक जैसे कुछ याद आया।

"ऐ निकुंज के बच्चे, सो रहा है क्या, घंटी कौन बजाएगा ? एक्ट पूरा हो गया, होश है या नहीं ? खाल खींचकर रख दूंगा !"

निकुंज थोड़ा नशा करता है, चंडी बाबू को मालूम था। डांट खाकर

पटाक से उठा और घंटी बजा दी। इस घंटी को सुनकर ही साजिंदे अपनी कन्सर्ट शुरू करेंगे। बाजे की आवाज़ सुनते ही दुर्लभराम और वंकू चले आए। पसीने से नहा गए थे दोनों। वंकू साड़ी ऊपर उठाकर अपनी टांगें खुजलाने लगा।

"बाप रे बाप, कितने मच्छर हैं, पैर को गुब्बारा बना डाला खा-खाकर।"

मालिक अपनी पोटली लिए उठ खड़े हुए। उस छोटी-सी जगह में खड़े रहना भी मुश्किल हो रहा था। सखियों का पार्ट करने वाले छोकरे, राजा-रानी और दूसरे सब वहीं आ घुसे थे। चंडी बाबू उन्हीं लोगों में बकझक कर रहे थे।

फिर भी उसीके बीच मालिक ने सौजन्यता निबाहते हुए कहा, "अच्छा, तो मैं चलता हूं अब।"

कहकर दरवाजे से निकल ही रहे थे कि तभी अचानक किसीने आकर कहा, "आप ही···आप ही मिलना चाह रहे थे ?"

मालिक ने आदमी की ओर देखा। पहचानने की बात ही नहीं थी और पहचाना भी नहीं। सिर्फ इतना ही पूछा, "तुम्हारा नाम ··तुम क्या सत्य मांझी के लड़के हो ?"

लड़का भी कुछ समझ नहीं पाया। काली पैंट, शर्ट पहने था, बाल उलटकर काढ़े हुए था। उसने पूछा, "आप कौन हैं ?"

"मेरा नाम कीर्तिश्वर भट्टाचार्य है, किशनगंज से आया हूं।"

जैसे कोई जादू हो गया। लड़के ने झुककर पदधूलि ली। फिर बोला, "बाबा बाहर नाटक देख रहे हैं, अभी बुलाकर लाता हूं।"

इसके बाद ही उस अनजान जगह, भीड़, दिन-भर की थकान और अनाहार सब मिलाकर मालिक को लगा कि वे वहीं गिर जाएंगे। लग-तार जमीन पर जैसे दोनों पांव टेककर खड़े रहने की ताकत भी उनमें नहीं रह गई थी। थरथर कांपने लगे। इसके बाद और कुछ याद नहीं है। सब कुछ जैसे अस्पष्ट हो गया था। सिर्फ याद है उन्हें, बड़े जोर से प्यास लगी थी। पानी, एक घूंट पानी···

मिनिस्टर कब के चले गए। किशनगंज के लिए मिनिस्टर आने की खबर पुरानी हो चुकी थी। इच्छामती के घाट पर जूट के व्यापारी एक खेप पहुंचाकर खाली नाव लिए फिर आ गए हैं, पॅपुलबेड़ के पास वाली आहर पर मजदूरों ने फिर से काम शुरू कर दिया है। उधर जाने पर जगह पहचानना मुश्किल है। सदानंद नहीं है, लेकिन काम बंद नहीं हुआ है उसके लिए। मजदूर सिर पर ईंट ला रहे हैं और चिनाई का काम हो रहा है। शुगर मिल होने की खबर चारों ओर फैल चुकी है। और थोड़े दिनों की बात है, फिर यहीं धकाधक मिल चलेगी। गांव के लोगों को रोजी मिलेगी।

मुकुंद कहता, "साहाजी, आपने कहा था न कि धरम की कल हवा में हिलती है..."

मिल के पहले तरह-तरह की बातें करता था दुलाल साहा। एक बात शुरू होने ही उस बात में हरि की बात आ जाती। लेकिन आदमी अब कैसा हो गया था।

कहता, "नहीं मुकुंद, किसीके बुरे दिन देखकर हंसना नहीं चाहिए, यह पाप है।"

मुकुंद कहता, "पाप-पुण्य की बात तो मुझे नहीं मालूम, जो देखता हूं, वही कह रहा हूं।"

"हो सकता है, लेकिन देखकर भी कहना नहीं चाहिए, उससे पाप होता है। यही देख न, सदानंद को बेकार इतने दिन अस्पताल में पड़े-पड़े दुख भोगना पड़ा, इसके लिए भी मुझे भोगना पड़ रहा है और उधर निवारण को कसूर करके भोगना पड़ा, उसके लिए भी मुझे भोगना पड़ रहा है! मेरा दुगुना खरच हो रहा है।"

मुकुंद कहता, "लेकिन सरकार बाबू के लिए आपको खर्च करने की क्या जरूरत थी?"

दुलाल साहा ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया। इतना ही कहा, "हरि के लिए जैसा सदानंद, वैसा बदमाश निवारण भी—मेरे लिए दोनों समान हैं, दोनों ही हरि के जीव हैं।"

कहकर दुलाल साहा भीगे कपड़ों में घर की ओर चल दिया। वैसे दुलाल साहा मुंह से जो कहता, उसके कामों से भी उसीका सबूत मिलता।

क नहीं है इसीलिए क्या दुलाल साहा भी मर गया है ! सूद देने लोगों से कहता, "जल्दी करो, इन दो पैसों के लिए बैठे रहने की त मुझे नहीं है। निवारण को देखने जाना है।"

निताई वसाक जिस तरह मिल के काम में लगा था, इंजीनियर गियलिस्ट, एक्सपोर्ट और परमिट लेकर सिर खपा रहा था, दुलाल ाहा उसी तरह निवारण को लेकर व्यस्त था।

दुलाल साहा कहता, "शुगर मिल हो न हो, निवारण अच्छा हो जाए तो शान्ति मिले—वेचारा !"

सुवह पूजापाठ करके दुलाल साहा तैयार हो लेता। नई वहू तैयार ही होती। गाड़ी में बैठ दोनों सीधे भट्टाचार्य-भवन जाते। ड्योढ़ी पर गाड़ी से उतरकर नई वहू को लिए दुलाल साहा जाकर सीधे दीवानखाने में निवारण के तख्त पर वैठता। पूछता, "कैसी तवियत है निवारण ?"

रोज इसी तरह। सुवह-शाम दोनों वक्त।

अन्दर जाकर नई वहू पुकारती, "ताईजी..."

वड़ी वहूजी अलग परेशान हैं। कलकत्ते जाने को कहकर मालिक ा गए हैं अभी तक उनकी कोई खवर नहीं मिल पाई है। नई वहू दोनों वक्त आकर खाना खिला जाती। ढाढ़स वंधाती। कहती, "आप नहीं खाएंगी तो आज मैं भी कुछ नहीं खाऊंगी। मैं भी यहां से नहीं उठती, कहे देती हूं।"

छुआछूत की वात न होती तो नई वहू खाना वनाकर ही ले आती। कभी दवाएं लिए आती तो कभी खेत की ताजी तरकारी। दुलाल साह ने ही कह रखा था, वड़ा ऊंचा खानदान है। जव मेरे पास कुछ भी न था, दो वक्त खाना भी नसीव नहीं होता था तव इन मालिक की कृ से ही दिन कटते थे। उन सव वातों का ही खयाल कर नई वहू जैसे घर की ही सदस्य हो गई थी।

उधर निवारण के पास वैठा दुलाल साहा कहता, "पंपुलवेड़ की तुच्छ आहर के लिए तुमने अपनी जान की वाजी लगा दी निवा और संपत्ति वड़ी है या जान ? जान चली गई तो संपत्ति कौन ख कहो ? तुम खाओगे या तुम्हारे मालिक ? या कि तुम्हारे मालि

लड़का ? लेकिन वह भी तो लापता है, फिर किसलिए है यह हाय-हाय?"

प्रश्न करने के बाद खुद ही उत्तर देने लगता, "कोई किसीका नहीं है, समझे निवारण! अगर वैसा ही होता तो मैं भी तुम्हारे मालिक की तरह संपत्ति-संपत्ति कहता रहता! भाड़ में जाए ऐसी संपत्ति! संपत्ति बटोरकर अगर स्वर्गलाभ हो जाता तो दिन-रात हरिनाम क्यों करता रहता ?"

शुरू-शुरू में कहता, "जरूर किसी मतलब से गए हैं! नहीं तो फालतू में ऐसे ही इतने रोज क्यों पड़े रहेंगे कलकत्ते में ?"

निवारण कहता, "लेकिन एक चिट्ठी तक नहीं लिखी। पहुंचने की खबर तक नहीं दी।"

दुलाल साहा कहता, "कामकाज में व्यस्त होंगे।"

निवारण कहता, "ऐसा कौन-सा काम हो सकता है, मेरी तो समझ में नहीं आता।"

इसी तरह चल रहा था कि एक दिन अनहोनी हो गई। और वह भी दुलाल साहा और नई बहू की आंखों के आगे।

उस दिन डाकिया आकर एक सरकार बाबू की चिट्ठी दे गया। साहाजी को देख नमस्कार किया।

"क्या बात है गोपाल ? अच्छे तो हो ? घर में सब ठीक है ?"

"जी, सरकार बाबू की चिट्ठी है।"

सरकार बाबू लेटे थे। चौंककर उठ बैठे। उसे चिट्ठी कौन लिखेगा! दुलाल साहा को भी आश्चर्य हुआ। नई बहू भी नहीं समझ पाई। दरवाजे की आड़ में बड़ी बहूजी भी खड़ी थी।

निवारण ने चिट्ठी हाथ में लेकर कहा, "मालिक की चिट्ठी है, कलकत्ते से लिखी है।"

निवारण सुना-सुनाकर पढ़ने लगा। मालिक ने लिखा है .

'सदा सुखाभिलाष प्रसाद प्रणत सर्वंव आशीर्वाद के श्री कीर्तिश्वर देवशर्मणः परम शुभाशीषम् राशमन्तु परम तोमार सुख स्वच्छन्दे सानन्द विशेष: अत्र पत्रे विशेष सुसवाद ज्ञात करा रहा हूं। श्री श्री भगवान के परम अनुग्रह से कल्याणीया हरतन का पता लग गया है...'

उसके बाद और नहीं पढ़ पाया निवारण। गला जैसे रुंधने लगा।
न मिल गई! दोनों आंखें जैसे धुंधली हो गई। जैसे यकीन नहीं हो
था। मन-ही-मन निवारण ने उन लाइनों को बार-बार पढ़ा।

दुलाल साहा बोल उठा, "हरि-हरि! हरि, तेरा ही सहारा है..."

नई बहू की भी बोलती बंद थी।

निवारण अचानक बोल उठा, "मालकिन, हरतन को साथ लेकर
मालिक आ रहे हैं..."

मिनट-भर में जैसे निवारण की बीमारी ठीक हो गई। उसकी समझ
में नहीं आ रहा था कि क्या करे। वहीं तख्त पर बैठे-बैठे ही उसने पुकारा,
"मालकिन, मालकिन..."

बड़ी बहूजी दरवाजे की आड़ में ही खड़ी थीं। एकदम निस्पंद की
तरह। उन्हें लग रहा था जैसे पैरों के नीचे से जमीन खिसकी जा रही
है। बड़ी बहूजी वैसे भी चुप ही रहती हैं। लेकिन आज तो जैसे पूरी तरह
मूक ही हो गई। दोनों हाथ उठाकर अन्तर्यामी को प्रणाम करने तक की
क्षमता जैसे उनमें नहीं रह गई थी।

एक मामूली चिट्ठी ही तो थी। लेकिन उस मामूली चिट्ठी ने जैसे
किशनगंज की हवा का रुख ही बदल दिया। हालांकि उस चिट्ठी के
सारांश को किसीने अखबार की हेडलाइन में नहीं छपाया था! किसीने
पंडाल बनाकर सभा में घोषणा भी नहीं की। पांच पैसे के एक पोस्ट
कार्ड पर लिखी उन कुछ लाइनों ने जैसे पूरे किशनगंज में उथल-पुथ
मचा दी।

दुलाल साहा सुबह जब स्नान के लिए घाट जाता तो साधारण
वहां कोई नहीं होता था। लेकिन अगर कोई आ पहुंचता तो दुलाल स
को उसकी भी जवाबदेही करनी पड़ती।

दुलाल साहा कहता, 'अहमक कहीं का, भक्ति क्या इतनी सरल
भक्ति अगर एक बार हो गई, तो फिर तुझे कौन पा सकता है? तूने
सागर पार कर लिया। फिर तुझे किसीसे भय करने की जरूरत नहीं

घाट पर ज्यादातर मुकुंद से ही मुलाकात होती, दुलाल साह

मुकुंद दुनियादार आदमी है। दुनियावी चिन्ता-फिकर और सन्देह से ही परेशान रहता है। वह बोला, "लेकिन साहाजी, मुझे तो यकीन नहीं होता।"

"क्यों, तुझे यकीन क्यों नहीं हो रहा ?'

"जी, यह कोई सतयुग तो है नहीं। सतयुग होता तो बात समझ में आती ! कोई लड़की क्या इतने दिन बाद इस तरह मिल सकती है ? न पता न ठिकाना, कलकत्ते गए और मिल गई। इस युग में ऐसी अनहोनी हो सकती है ! आप ही कहिए ?"

दुलाल साहा समझदार की तरह मंद-मंद मुसकराता। मुकुंद जैसे मूढ़ आदमी की बात पर हंसे नहीं तो और करे भी क्या ?

"तो तेरा कहना है कि अनहोनी नहीं हो सकती ?"

"जी, वह सब होता था, जब महापुरुष अवतार लिया करते थे। वे लोग त्रिकालदर्शी हुआ करते थे।"

"क्यों रे, मुझे देखकर भी तुझे यकीन नहीं होता ? यह जो मैं तेरे सामने जीता-जागता खड़ा हूं। मुझे आंखों के आगे देखकर भी तुझे यकीन नहीं होता ?"

सिर्फ मुकुंद ही नहीं, सभी से यही एक बात कहता था दुलाल साहा। तिजारती धंधे के सिलसिले में जो लोग उनके पास आते थे, सब अपढ़ और गंवार ही होते थे ज्यादातर। गरज के मारे आते थे। उनसे भी कहता, "अब हरि है या नहीं, विश्वास हुआ या नहीं ? मैं जब हरि-हरि करता था तो तुम लोग मेरी मखौल उड़ाया करते थे। कहते थे साहाजी ढोंग करते हैं !"

माला जपते-जपते फिर कहने लगता, 'मालिक की ही बात ले लो, मालिक से मैंने खुद जाकर कहा, हरिसभा हो रही है, आपको प्रेसीडेंट बनना है। मालिक किसी भी तरह राजी नहीं हो रहे थे। कहने लगे, 'मैं केदारेश्वर भट्टाचार्य के वंश का हूं। हमारे पुरखे गौड़ेश्वर के राजपुरोहित थे। हाथी पर चढ़कर राजमहल जाते थे, एक सौ आठ कमल के फूलों से रोज कुलदेवता की पूजा होती थी। मुझे हरिभक्ति सिखलाने आए हो दुलाल ?' "

ता कहते, "फिर ?"

लाल साहा कहता, "मैं भी ठहरा हरि का भगत। बस, हरि का नाम
मालिक के पैर पकड़ लिए। और कहा, हरि भक्ति के लिए मैं सब
कर सकता हूं मालिक, आप अगर प्रेसीडेंट नहीं हुए तो समझूंगा, मेरी
भक्ति झूठ है! समझूंगा, हरिभक्ति के नाम पर मैं पैसा लूट रहा
।"

"फिर क्या हुआ, मालिक राजी हुए ?"

"अरे तो और कह क्या रहा हूं ? हरिभक्ति क्या इतनी सरल चीज
है समझा ! मुंह में हरिनाम और बगल में छुरी ! मैं कोई वैसा भगत
थोड़े ही हूं। मैंने कहा, मेरी भक्ति अगर वैसी हुई तो मैं छत्तीस जन्मों
तक रौरव नरक में सड़ूंगा। सात या चौदह नहीं पूरे छत्तीस !...अरे,
यह क्या ? तीन पैसे कम क्यों दे रहा है रे
नितार्ई ?" तीन पैसे और निकाल। और एक अधेला भी नहीं

नितार्ई बोला, "जो लाया था, दे दिया; और एक अधेला भी नहीं
है मेरे पास।"

"लेकिन देख, तू किसे कम दे रहा है ? मुझे या हरि को ? हरि जैसे
मुझमें हैं वैसे ही तुझमें भी तो है...अरे निवारण, आओ...आओ...इस
हालत में तुम यहां..."

सब देखने लगे, मालिक के सरकार बाबू आए हैं। कमजोर शरीर
हांफ रहा है। इसी आदमी को लेकर इतने रोज कितना कुछ नहीं हुआ
दो दिन पहले अब जाएं-तब जाएं हालत थी। उसीको अचानक सशरी
आते देख सब जैसे अचम्भे में पड़ गए। सबने इधर-उधर खिसक उ
लिए जगह की।

"जी, मालिक की एक और चिट्ठी आई है।"

"तो मुझे कहला भेजा होता। मैं खुद ही चला आता। यह भी
बात हुई ! इतनी दवा-दारू हो रही है और तुम इस तरह अपने
अत्याचार कर रहे हो ! डॉक्टर बाबू से पूछकर आए हो ?"

"बड़ा जरूरी काम था, इसीसे आना पड़ा। और को
नहीं ?"

फिर चारों ओर सभीके चेहरों पर नजर घुमाकर बोला, "बड़ी मुसीबत में पड़कर आपके पास आना पड़ा है साहाजी, मालिक ने आप ही के पास आने को लिखा है। कुछ रुपयों की जरूरत थी। करीब सौ एक से काम चल जाएगा। मालिक काफी परेशानी मे पड़ गए हैं।"

"क्या हुआ ? हरि-हरि···"

"जी, हरतन बहुत बीमार है। बीमारी की हालत मे ही उसे ला रहे हैं। साथ मे एक डॉक्टर भी लाना पड़ रहा है। इसके अलावा रोगी को लेकर थर्ड क्लास में तो आना मुश्किल है। काफी खरच है। हाथ में जो कुछ था, इतने दिन कलकत्ते रहे, सो सब खर्च हो गया—इसीसे थोड़ा कर्ज लेने को लिखा है आपसे—सूद जो होगा देंगे।"

दुलाल साहा गुस्से से आग हो उठा।

"मुझे क्या इतना बेहया समझ रखा है ? तब क्या बेकार यह हरि सेवा कर रहा हू ? तुम सोचते क्या हो, निवारण ? मुसीबत मे लोगो को उधार रुपया देता हू इसीसे क्या सूदखोरी मेरा धंधा हो गया? मैं सूदखोर हूं ?"

निवारण एक तो वैसे ही बीमार था, उसपर अचानक दुलाल साहा के इस व्यवहार से थरथर कांपने लगा।

दुलाल साहा ने पुकारा, "कांत···"

कांत ने कहा, "जी···"

"निवारण को दो सौ रुपये दो···"

कांत कैश-बाक्स से नोट निकालकर गिनने लगा।

दुलाल साहा बोला, "तब तुम्हारी बीमारी मे मैंने जो कुछ खरच किया है, उसका हिसाब करके अभी मेरे सामने फेंक दो ! लाओ ! सूद की बात तुम किस मुंह मे कह पाए निवारण ? तुम तो समझदार हो ! तुम्हारे मुंह पर यह बात कैसे आई ? और कोई होता तो यही काट-कर फेंक देता। जाओ रुपये लेकर सीधे चले जाओ, लिखा-पढी कुछ भी करने की जरूरत नही है। और अपने मालिक को लिख देना कि दुलाल साहा अगर ऐसा ही अर्थपिशाच होता तो गुरु महाराज से दीक्षा नहीं लेता। हरिसभा भी नहीं चलाता। रोज सुबह झाड़ू लेकर घाट की सीढी न

धोता लिखना कि दुलाल साहा मुसीबत में लोगों को उधार जरूर देता है लेकिन सूद का धंधा नहीं करता। अब जाओ, खड़े क्यों हो, जाओ···"

दुलाल साहा का रौद्र रूप देख निवारण की और रुकने की हिम्मत नहीं हुई। ऐसा कुछ होगा, उसने नहीं सोचा था। दुलाल साहा को ऐसी दया दिखलाते भी कभी नहीं देखा था, साथ ही यह रौद्ररूप भी पहले कभी देखने को नहीं मिला था। दुलाल साहा बगैर सूद के या बगैर गिरवी रखे रुपये देने वाला नहीं है। बुरी तरह सकपका गया निवारण। फिर दो सौ रुपए लेकर उठ खड़ा हुआ, और धीरे-धीरे दरवाजे से निकलकर बाहर सड़क पर आ गया।

माला जपते-जपते दुलाल साहा ने निगाह ऊपर करके देखा। फिर कहा, "देखा तुम लोगों ने ? मुझे सूदखोर कह गया···"

तभी निताई की ओर नजर फिरते ही कह उठा, "क्या हुआ, तीन पैसे और निकाल, तीन पैसे मारकर तू क्या हरि के सामने पातकी बनना चाहता है ? नहीं-नहीं, सो होने नहीं दूंगा मैं— चल, निकाल पैसे, परलोक में भला होगा···"

परलोक हो या न हो, परलोक की बात करने का सुभीता है। उससे लोगों में ब्राह्मण और देवता के प्रति भक्ति बढ़ जाती है। किशनगंज के लोग, जिन्होंने दुलाल साहा को देखा है, जिन्होंने दुलाल साहा को धीरे-धीरे पनपते देखा है, और मालिक की पड़ती को देखा है, वे परलोक में विश्वास करते हैं। और परलोक में विश्वास करते हैं इसीलिए दुलाल साहा के पास आते हैं, दुलाल साहा की बातें सुनते हैं, कर्ज लेते हैं और फिर उसका सूद देते हैं। इस लोक में जिन्हें कुछ नहीं मिला, उनकी सारी आशा दूसरे लोक पर ही है। दुलाल साहा का यह ऐश्वर्य, मकान, सुख-सुविधा, यह जूट का धंधा, यह शुगर मिल, सब जैसे पिछले जन्म का फल है। पिछले जन्म में दुलाल हासा ने पुण्य किए थे, उसीका फल इस जन्म में भोग रहा है। इस जन्म के पुण्यों का हिसाब भी चित्रगुप्त के खाते में साफ-साफ दर्ज है। उसका फल अगले जन्म में भोगेगा।

एकदम हाथोंहाथ प्रमाण मिल गया।

और मालिक ?

मानिक ने इस जन्म में कुछ भी नहीं किया। अचानक लगता घोनी की खबर किसनगंज में फैलते ही जैसे सारा हिसाब उलट-पलट हो गया है। तब ? तब क्या वाकई भट्टाचार्य-भवन की लक्ष्मी वापस लौट आएगी ? भट्टाचार्य फिर से धन-दौलत से भर उठेगा ? यह बात लोगों को जटिल गुत्थी की तरह लग रही थी, तब क्या होगा ?

दुलाल साहा कहता "अरे, गुरु महाराज की बात कोई झूठ थोड़े ही हो सकती है —यह तो होना ही था···"

सुकांत ने भी खबर सुनी। तब तो साधु ने उससे जो कुछ कहा, वह भी सच होना चाहिए। जीप लेकर कई चक्कर लगा गया। लेकिन निताई बसाक नहीं है। असल में उसका मस्तक निताई बसाक है—दुलाल साहा नहीं। रोज शाम गाड़ी लेकर निकलता है। इधर-उधर घूमकर यहां आता है। रोज ही वही दबाव. निताई बसाक अभी वापस नहीं लौटा—नई रागिनी का है। साधु-सन्यासियों की बातों पर आसानी से विश्वास नहीं करता। वैसे किसी चीज पर ही विश्वास नहीं है, दुनिया ही उसके लिए एकमात्र सत्य है। और सब झूठ है, ढकोसला है। हालांकि साधु ने उससे कहा था—शीघ्र ही उसकी उन्नति होगी। यही कोई तीन साल के अन्दर। सुनकर उसे अच्छा लगा था लेकिन यकीन नहीं हुआ। लेकिन लोगों से मानिक की खबर सुनकर आशा बढ़ने लगी। रास्ते में जो मिलता, उसीसे पूछता, "जो खबर सुनी है, क्या सच है ?"

लोग कहते, "सुनते तो यही हैं कि सच है।"

जिससे भी पूछता, वह यही बात कहता। उस दिन ड्राइवर से उसने मानिक के घर की ओर ही जीप घुमा लेने को कहा। उसी भुतहा घर की ओर। इस ओर लोग कम ही आते हैं। कैसा खाली-खाली-सा लगता है ! शाम के बाद लोग इस ओर नहीं आना चाहते. फिर भी उस रोज सुकांत आया। सब बात एक निवारण को छोड़ और किसीसे पता लगाना मुश्किल है।

गाड़ी रखकर जंगल के बीच से होकर सदर दरवाजे के सामने जाकर खड़ा हो गया। अन्दर कोई है या नहीं, यह भी मालूम नहीं। दरवाजे से ही धीमी आवाज में पुकारा, "सरकार बाबू···"

निवारण ने सुकांत को ज्यादा-से-ज्यादा दो-एक बार ही देखा होगा। लेकिन पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर को लेकर जो झमेला हुआ, उसके बाद निवारण का नाम कई बार कान में पड़ा है। किसीने कहा कि निवारण लठैत लेकर झगड़ा करने आया था तो कोई कहता, सदानंद ने बेबात निवारण को पीटा है। लेकिन एक रोज इस बात का भी फैसला हो गया। मिनिस्टर के आने के बाद से सभीको पता चल गया कि दोष निवारण का ही था।

"सरकार बाबू हैं ?"

अन्दर से कोई जवाब नहीं आया।

सुकांत इसपर खटखट दरवाज़े की कुंडी खटखटाने लगा।

"कौन ?"

अन्दर से जनानी आवाज सुनकर सुकांत जरा पीछे हट आया। उसके साथ ही अन्दर से दरवाजा खुला।

"आप कौन हैं ?"

हाथ में लालटेन लिए कोई खड़ा था। सीधे रोशनी लगने से आंखें चौंधा गईं। फिर पहचान लिया।

"किससे काम है ?"

सुकांत ने ऐसा कुछ नहीं सोचा था, नहीं तो ऐसे बेमौके पर यहां नहीं आता। उसे क्या मालूम कि नई बहू इस वक्त यहां होगी ?

"किसे ढूंढ़ रहे हैं ?"

सुकांत बोला, "निवारण बाबू से काम था।"

"लेकिन आप हैं कौन ?"

सुकांत बोला, "मेरा नाम सुकांत राय है। यहां बी० डी० ओ० हूं। अपने घर पर देखा होगा मुझे···"

नई बहू ने कहा, "वह सब तो ठीक है, लेकिन यहां क्या काम है ?"

नई बहू की इस जिरह से सुकांत जैसे सकपका गया। बोला, "निवारण बाबू से जरा काम था, और कुछ नहीं।"

"क्या काम है ?"

इसका क्या जवाब देता सुकांत। बोला, "ऐसी कोई खास बात नहीं

थी। बस, यों ही चला आया।"

"पता लगाने आए हैं कि जो कुछ सुना है, वह सही है या नहीं ? यही न ?"

मुकांत की समझ में नहीं आ रहा था कि इस बात का क्या जवाब दे।

नई बहू मुकांत के जवाब की राह देखे बगैर ही कहने लगी, "आखिर आप लोगों को इतनी उत्सुकता किस बात की है ? आप लोग क्या एक परिवार की बरबादी से फायदा उठाकर तमाशा देखना चाहते हैं ? आप लोगों को और कोई काम नहीं है ? दूसरे की गरीबी क्या आपके लिए मजाक की खुराक है ? आप लोगों ने समझ क्या रखा है ?"

मुकांत चुपचाप खड़ा रहा। जरा-सी उत्सुकता को न दबा पाने का यह नतीजा होगा, वह सोच भी नहीं पाया था।

"एक के बाद एक आता है और बार-बार यही बात पूछता है। एक दिन आप ही लोग मेरी ससुराल में जाकर जमा हुआ करते थे, और अब आप लोग यहां मौजूद हैं। आप लोगों को क्या और कोई काम है ही नहीं ? जब जिधर हवा देखी, उधर ही लगे तालियां बजाने, छिः···"

नई बहू का यह 'छिः' शब्द जैसे पूरे किशनगंज के लिए ही था। लेकिन मुकांत को लगा, जैसे नई बहू अकेले उसीको धिक्कार रही है।

मुकांत जैसे अपनी गलती के लिए सफाई देते हुए विनीत स्वर में बोला, "देखिए···मैं ठीक इसीलिए···"

लेकिन उसकी बात पूरी होने से पहले ही नई बहू ने उसे टोकते हुए कहा, "अनपढ़ किसान-मजदूर आते हैं, उनकी बात समझ में आती है, लेकिन आप लोग तो शिक्षित होने की डींग हांकते हैं ? आप लोग तो कोट-पैंट पहनकर गाड़ी में घूमते हैं।"

मुकांत और कोई उपाय न देख बोला, "मुझे माफ करें।"

"माफ करने की बात नहीं ! बार-बार लोगों की एक बात का जवाब देते-देते मैं भी ऊब उठी हूं। लेकिन मैं सोचती हूं, इन दिनों क्या गांव के लोगों के पास करने को और कुछ भी नहीं है ? खड़े-खड़े देख क्या रहे हैं, जाइए।"

थी बेचारे को। काम करते-करते जब घायल हुआ है तो उसकी तनख्वाह देते रहना मेरा फर्ज है, है न···"

मुकात बोला, "जी, आपने बिलकुल ठीक किया। आपने एक सच्चे हितैषी जैसा काम किया।"

दुलाल साहा बोला, "मैं हर एक के लिए हितैषी ही हूं। मेरे लिए छोटा-बड़ा, ऊंच-नीच का कोई भेदभाव नहीं है।"

नई बहू बोली, "लेकिन बाबा, वह भागा क्यों ?"

दुलाल साहा बोला, "अब यह तो तुम्हीं लोग सोचकर देखो ! किसी बात की तकलीफ नहीं थी। यानी मैंने किसी तरह की कोई तकलीफ नहीं रहने दी थी। अस्पताल भी मैंने ही बनवा दिया था, मां से तुमने तो सुना ही होगा, इस अस्पताल के लिए मैंने कितना चंदा दिया है। रोज उसे देखने के लिए खुद ही जाता था, इसपर भी भाग गया। कोई उससे पूछे, तुझे ऐसी कौन-सी तकलीफ थी, जिसके लिए तुझे भागना पड़ा ?"

मुकात बोला, "जी, वह पुलिस-केस चल रहा था न, शायद इसी-लिए भागा होगा डरकर।"

"अरे, उसके लिए तो मैं बैठा हूं। उसके लिए पूरा खर्च भी जुटा रहा हूं। अस्पताल भी रोज जाता रहा हूं फल-वल लेकर। नई बहू भी रोज नियम से दोनों वक्त खाना भिजवाती रही। बाहर के लोगों को तो ये बातें नहीं मालूम हैं। मैंने कभी बतलाना भी नहीं चाहा।"

मुकात बोला, "चला गया है तो जाए, आप क्यों परेशान होते हैं ?"

नई बहू ने भी कहा, "ठीक ही तो कह रहे हैं मुकात बाबू, हमारा क्या नुकसान होना है उसके जाने से ?"

"तुम लोग तो बोलकर खलास हो गए ! लेकिन लोगों का मुंह तो ऐसा कहकर बन्द नहीं किया जा सकता। वे लोग यही कहेंगे कि मैंने ही रुपया देकर उसे हटा दिया है, जिससे पुलिस के हाथ में न पड़ जाऊं। इसीलिए तो खबर सुनकर मैंने कांत से कहा था, इस दुनिया में किसी का कुछ भला भी करना हो तो काफी समझ-बूझकर करना चाहिए। पुलिस का क्या है ! पुलिस का तो काम ही है संदेह करना।"

मुकांत फिर भी नहीं समझ पाया। उसने कहा, "लेकिन मुजरिम तो

सदानंद नहीं है, मुजरिम तो निवारण सरकार है।"

दुलाल साहा ने कहा, "इसीसे समझ लो, मुजरिम मजे से घूम रहा है और फरियादी डर से भागता फिर रहा है। ऐसी अजीब बात सुनी है तुम लोगों ने ?"

सुकांत बोला, "जाने भी दीजिए, आप जो कुछ कर सकते थे, आपने किया। उसके लिए बेकार परेशान न हों···"

दुलाल साहा ने कहा, "अब देख लो, इतने दिन हरि को छोड़ और किसी ओर नहीं देखा। सब छोड़कर मनप्राण से हरि को ही पुकारता रहा, अब लगता है मैंने भूल की। इस दुनिया के लोगों के मन में इतना पाप भरा पड़ा है, सोच भी नहीं पाया कभी। अब देखो न, सब खबर सुनने के बाद से चित्त बड़ा चंचल हो उठा, सोचता हूं, सब मिथ्या है। मैं किसके लिए यह सब कर रहा हूं ? दुनिया में कौन किसका है ? आंख मुंदते ही तो सब कुछ अंधेरा हो जाता है। तब इतनी चिन्ता किस बात की ? तभी बड़ी बहूजी का खयाल हो आया, बेचारी बीमार हैं घर में, कोई नहीं है। निवारण भी कलकत्ते गया है मालिक के पास। हालांकि नई बहू बड़ी बहूजी की देखभाल करने आई है लेकिन मेरा भी तो आखिर कोई फर्ज है। माथे में यह बात आते ही नहीं रुक पाया—चला आया। हां, तो नई बहू, अब कैसी हैं बड़ी बहूजी ?"

नई बहू ने कहा, "ठीक हैं, लेकिन आपने क्यों बेकार तकलीफ की ?"

"मैं नहीं आऊंगा तो और कौन आएगा ? मालिक का और है ही कौन ? मालिक मुझे नही देख पाते सो जानता हूं, बुढ़ापे में मान-सम्मान की ऐसी पीड़ा होती ही है। लेकिन यही सोचकर मैं भी अगर विपत्ति के समय न आऊं तो हरि के सामने क्या मुंह दिखाऊंगा ? मालिक का तो खयाल है कि पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर मैंने ही लोग लगाकर दखल कर ली है, मैंने ही निवारण को लाठियों से पिटवाया है। खैर, इन बातों का जवाब मैं हरि के सामने ही दूंगा, लेकिन किसीको मुसीबत में देख मुझसे बैठा नहीं जाता। यह मेरी आदत हो गई है। अब इस उम्र में क्या यह आदत बदल सकती है ?"

इतनी देर बाद जैसे सुकांत को मौका मिला।

उसने कहा, "इसके माने हुए कि जो बात सुनने में आ रही है, वह सच है साहाजी ?"

"कौन-सी बात ?"

"यही कि मालिक की खोयी पोती मिल गई है—पन्द्रह साल बाद !"

दुलाल साहा ने कहा, "मिली है या नहीं, सो तो दो दिन बाद सभी-को मालूम हो जाएगा। मालिक पोती लेकर किसनगंज आ रहे हैं, निवा-रण तो इसीलिए बीमारी की हालत में गया है। उसे इसके लिए मैंने ही दो सौ रुपये दिए। मैंने उससे कह दिया कि लिखा-पढ़ी की कोई जरूरत नहीं है, मैं कोई सूदखोर तो हूं नहीं।"

"यानी कलियुग में भी ऐसी घटना घट सकती है ?"

दुलाल साहा ने कहा, "कलियुग तो तुम्हीं लोग कहते हो, मैं तो दूसरी ही बात कहता हूं।"

"आपका कहना क्या है ?"

"मेरा कहना है कि कलियुग-सतयुग सब फालतू बात है। जो सत्य-वादी हैं, उसके लिए हर युग सतयुग है। नहीं तो सतयुग में भी चोर, डाकू थे, अब भी हैं। अब मुझीको लो, मैं जो हमेशा सच बोलता हूं, कभी किसीका बुरा नहीं सोचता, उससे क्या मेरा कोई नुकसान हुआ है ? कुछ बिगड़ा है मेरा ?"

नई बहू ने तभी कहा, "मैं अन्दर जाऊंगी, ताईजी अकेली हैं।"

"अरे हां-हां, तुम जाओ न, मैं तो बस ऐसे ही जरा खबर लेने चला आया, अभी चला जाऊंगा।"

सुकांत अपना प्रसंग ले आया, बोला, "इसके माने गुरुदेव ने मेरे बारे में जो-जो कहा, वह सब भी मिल जाएगा ?"

दुलाल साहा बोला, "यह भक्ति के ऊपर निर्भर है। तुममें अगर भक्ति है तो जरूर मिलेगी। मुझमें भक्ति है इसीलिए मिली। मालिक के अन्दर-ही-अन्दर भक्ति थी इसीलिए बात मिल गई। मिलकर रहेगी। दो और दो जैसे चार होते हैं, इसका भी वही है।"

"एक बार फिर गुरुदेव के दर्शन नहीं हो सकते साहाजी ?"

दुलाल साहा ने कहा, "मुझे दर्शन होते हैं, रोज ही।"

सुकांत उछल पड़ा, "मुझे एक बार दर्शन करा दीजिए न साहाजी, न हुआ मैं भी उनका शिष्य हो जाऊंगा, भाग्य में जो लिखा है सो होगा, नौकरी में उन्नति होगी न ?"

"लेकिन तुम्हें दर्शन होंगे भाई ?"

सुकान्त ने कहा, "क्यों, आपको कैसे रोज दर्शन होते हैं ?"

"मुझे तो ध्यान में दर्शन होते हैं।"

बात पूरी होने से पहले ही खटखट जूतों की आवाज करता निताई बसाक आ पहुंचा। अंदर आते ही बोला, "तो तुम यहां हो दुलाल ?"

निताई बसाक के लिए ही इतने दिन से सुकान्त चक्कर लगा रहा था।

उसने कहा, "अरे, आप कहां गायब हो गए थे निताई बाबू ? आपको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते..."

निताई बसाक बोला, "आप ही के काम से कलकत्ते गया था, वहीं से आ रहा हूं।"

उसके बाद दुलाल साहा की ओर देखकर बोला, "तुमसे एक बात कहनी थी दुलाल, ज़रा इधर आओ।"

दुलाल साहा उठकर बाहर आया। फुसफुसाकर बोला, "काम कहां तक बना ?"

निताई बसाक ने भी उसी तरह धीमी आवाज में कहा, "एकदम पक्का काम कर आया हूं।"

"अब और कोई गड़बड़ न होगी ना ?"

"गड़बड़ को जड़ से खत्म जो कर आया हूं। थाने से खुद दरोगा ने कहा था कि रोगी अगर अस्पताल से गायब हो जाए तो किसीके बाप की ताकत नहीं कि कुछ कर पाए—पुलिस भी अपनी जिम्मेदारी से छूटेगी। मामला हाईकोर्ट में पहुंचकर भी रह जाएगा। इजलास में नहीं आ[illegible]। उससे पहले ही खारिज हो जाएगा..."

"लेकिन उसे गायब कैसे किया ?"

"उस सबके लिए तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं है !

चला।"

कहकर निताई बसाक अंदर आया। दुलाल साहा भी माला फेरते-फेरते अपनी कुर्सी पर आ बैठा। एक लम्बी उदासी लेते हुए उसने पुकारा, "हरि-हरि..."

चितपुर के सकरे रास्ते पर दिन हो या रात, भीड़ में कमी नहीं होती। सारे दिन आवाज़ों से कान फाड़ देने वाले सारे उपकरण यहां मौजूद हैं। बस है, ट्रामें हैं, रिक्शे, ठेलागाड़ी, और हैं असंख्य लोग। इसी वजह से 'कल्याणमयी होटल' की दूसरी मंजिल में जो लोग सड़क की ओर वाले कमरों में रहते हैं, उनके कमरों का किराया कम है। अंदर की ओर वाले कमरों में रोशनी नहीं है, हवा नहीं है, लेकिन फिर भी किराया ज्यादा है। 'श्रीमानी ऑपेरा' का ऑफिस इसीके पास है। बड़ी बाबू ने ही सब कुछ ठीक कर दिया था। मालिक को कुछ भी करना नहीं पड़ा। और कुछ करने लायक बूता भी नहीं था उनमें।

बड़ी बाबू ने कहा था, "यह आपकी पोती है, यह बात मुझे मालूम ही नहीं थी भट्टाचार्य बाबू! मालूम होती भी कैसे! लोग तो इसे मेरी लड़की कहकर जानते हैं। अहा, बड़ी भाग्यवती है आपकी पोती!"

मालिक ने कहा, "आपका यह ऋण मैं एक-न-एक दिन अवश्य शोध करूंगा—आपने मेरा जो उपकार किया है, जीवन-भर नहीं भूलूंगा।"

"लेकिन जानते हैं, आपकी इस पोती की वजह से कितना कमाया है मैंने? एक तरह से 'श्रीमानी ऑपेरा' आपकी पोती के बूते पर ही चल रहा है। इसीलिए तो कह रहा था कि बड़ी ही भाग्यवती लड़की है। अजी, जिस दिन से मेरे यहां आई है, मेरा भाग्य ही खुल गया। अब आपके यहां जा रही है तो आपका भाग्य भी फिरेगा।"

मालिक ने कहा, "यही तो मेरी भाग्यलक्ष्मी है बड़ी बाबू, इसके चले आने के बाद से ही तो मेरी भाग्यलक्ष्मी भी घर से चली गई, जमीन-जायदाद सब कुछ एक के बाद एक चला गया।"

"वह सब तो सुना है मैंने।"

"आपने सुना ही कितना है? दो दिन में कितना सुनाया जा सकता

है ? सब भाग्य की ही बात है । उस दिन न जाने क्या मन में आया कि साधु महाराज को जन्म-पत्री दिखलाने चला गया—यह सब उसीका फल है ।"

चंडी बाबू बोले, "जी हां, सब मिलता है । जब मिलता है तो अक्षर-अक्षर मिलता है, मैंने खुद कई बार देखा है । खैर, वह सब जाने दीजिए । लड़की को घर ले जाइए । भगवान की कृपा हुई तो हरतन जल्दी ही बिलकुल ठीक हो जाएगी । उसके बाद भगवान से जो मानत की है, उसके मुताबिक पूजा कीजिएगा । बाद में हम लोग भी एक बार जाकर नाटक कर आएंगे ।"

"जरूर-जरूर, जरूर आइएगा ।"

जरा रुककर फिर बोले, "लेकिन हरतन के चले जाने से तो आपको नुकसान होगा !"

चंडी बाबू ने कहा, "वाह, मेरा नुकसान ही क्या सब कुछ है ? अजी, मेरा तो धंधा है, और किसीका जुगाड़ कर लूंगा । दाना डालने पर चिड़ियों की कमी होती है ? और जब तक इंतज़ाम नहीं होता, बंकू है, दाढ़ी-मूंछ सफा करके काम चला ही रहा है…"

चंडी बाबू ने ही सच में सारा इंतज़ाम कर दिया । सिर्फ होटल का इंतज़ाम ही नहीं, नकद रुपये भी दिए । मालिक तो साथ में ज़्यादा कुछ लाए नहीं थे । बड़ी बहूजी का एक ज़ेवर और गाड़ी-भाड़ा लेकर निकल पड़े थे । "यह भी होनी की बात है । मां की कृपा ! तुम्हीं सत्य हो मां ! तुम्हीं सत्य हो ! जो लोग विश्वास नहीं करते, वे तुम्हारे प्रति अन्याय करते हैं । मैंने भी कम अन्याय नहीं किया । मैंने भी तो विश्वास खो दिया था ।"

चंडी बाबू बोले, "अच्छा, अखबार में खबर छपवा दूं ?"

"कौन-सी खबर ?"

"यही आपकी पोती की खबर । ठीक से लिखने पर बहुत-से नास्तिकों के मन में चैतन्य उपजेगा ।"

मालिक बोले, "नहीं-नहीं चंडी बाबू, यह ठीक नहीं होगा—और उससे आपको क्या फायदा होने वाला है ?"

"मेरा तो फायदा ही फायदा है, मेरी पार्टी की पब्लिसिटी होगी ।"

"पब्लिसिटी ! माने ?"

"माने यही कि बगैर पैसा खर्च किए, 'श्रीमानी ऑपेरा' का प्रचार हो जाएगा।"

मानिक ने बड़ी बाबू के दोनों हाथ पकड़ लिए।

"नहीं-नहीं, हरतन की उम्र हो गई है। दो दिन बाद स्वस्थ होने पर उसके विवाह की व्यवस्था करनी पड़ेगी। आप दया करके इस सब चक्कर में न पड़ें, भीड़-भाड़ होगी, उससे बीमारी बढ़ भी सकती है।"

हां, तो फिर वही व्यवस्था हुई। मानिक हरतन को लेकर 'कल्याण-मयी' होटल में चले आए। एक अंधेरे और गंदे-से कमरे में खटमलों से भरे एक टूटे तख्त को साफ करके उसी पर हरतन को लिटा दिया। नीचे जमीन पर अपना बिस्तर लगाया। दो दिन की ही तो बात है। फिर किशनगंज में रुपया आते ही रवाना हो जाएंगे। रुपये के लिए निवारण को लिख चुके हैं। दुलाल साहा से भी रुपये ले सकता हूं। बेहया सूदखोर ! रुपये पर चार-पांच आना सूद बटोरता है और मुंह से हरि-हरि करके भक्ति झाड़ता है। इस बार पेंपुड़बेड़ के पास वाली आहर उससे लेकर छोड़ेंगे। घर की मरम्मत भी करानी है। सामने वाले खुले चौक में ऐरे-गैरे लोग जब-तब घुस आते हैं। चारदीवारी से घेरनी होगी वह जगह। मछुआटोली की जमीन का भी कुछ बंदोबस्त करना पड़ेगा। इतनी जमीन दुलाल साहा के पास रेहन रखी हुई है। अब मुकदमा लड़कर उसका रिहाइशी मकान तक लेकर, तब छोड़ेंगे इस ढोंगी को। उसके बाद पांव पकड़कर जितना भी गिड़गिड़ाए। इस बार किसी तरह की कोई दया-माया नहीं दिखलाएंगे। इतने दिन दया-माया दिखलाकर अपना काफी नुकसान कर चुके हैं। बहुत हो चुका, अब और नहीं।

तख्त पर कुछ हरकत-सी हुई। हरतन जैसे कुछ कहना चाह रही थी।

मानिक फटाक से उठकर उसके पास जाकर पूछने लगे, "क्या बात है बेटी, तकलीफ हो रही है ? ओह, मच्छर काट रहे हैं। समझ रहा हूं।"

एक ताड़ का पंखा लेकर हवा करने लगे। फिर बोले, "घर पहुंचते ही देखना, दो दिन में चंगी हो उठोगी, यह बीमारी जाने कहां भाग जाएगी। तुम मजे में घूमोगी, तुम्हारी दादी तुम्हें देखकर कितनी खुश

होंगी, देखना—तुम्हारे लिए गाय खरीदूंगा, ताज़ा दूध पीना। बगीचा ठीक करवा दूंगा, फूलों के पौधे लगवाऊंगा, वहां मज़े से घूमा करना।"

हरतन चुपचाप सब सुनती। और सुने या न सुने, मालिक उस अंधेरे कमरे में उसके पास बैठकर अपनी बात कहते रहते।

चंडी बाबू आते। खबर ले जाते। काफी व्यस्त आदमी हैं। आते ही पूछते, "मच्छरदानी मिली?"

"जी हां, मिल गई। आपको मेरी वजह से काफी तकलीफ उठानी पड़ रही है।"

"बंकू आया था? डॉक्टर के कहे मुताबिक दवा खिलाते जाइए—बंकू ही सब करेगा, आपको तकलीफ करने की जरूरत नहीं है।"

हां, तो बंकू आता भी था नियम से। सुबह, दोपहर और शाम के वक्त। लड़का ही था। अपने हाथ से दवा खिला जाता। 'रानी रूपकुमारी' का पार्ट इतने दिन से वही चला रहा था। अंजना की बीमारी के बाद से इस पार्ट का जिम्मा उसीपर है। दाढ़ी-मूंछ साफ कराकर पार्ट करता है, लेकिन जमा नहीं पाता।

बंकू कहता, "लड़का क्या लड़की का पार्ट कर सकता है? आप ही कहिए..."

मालिक कहते, "सो तो है ही, तुम कैसे कर सकते हो? जिसका जो काम है..."

बंकू कहता, "फिर भी किसी तरह चला रहा हूं; इसकी बीमारी के बाद से चला ही रहा हूं। लेकिन एक नई लड़की लाए बगैर हमारे दल का टिकना मुश्किल है। वैसे एक तरह से दल टूट ही गया है।"

मालिक कहते, "अरे नहीं, टूटेगा क्यों! तुम लोग किशनगंज में हमारे घर आना। वहां हरतन का घर देखना, कितना बड़ा मकान है। इस हरतन के पुरखे एक दिन गौड़ेश्वर के राजपुरोहित थे। उनके पास हाथी था। उस हाथी पर चढ़कर वे रोज़ राजमहल जाया करते थे। वहां रोज पूजा करते थे। पूजा में रोज एक सौ आठ कमल के फूल लगते थे। तुम लोग वहां आकर नाटक करना। भरपेट पुलाव-कलिया खिलाऊंगा।"

मालिक बंकू को भी वही सब किस्से सुनाते। सभीको सुनाते।

हरतन को देखने जो भी आता, उसीको अपने पुरखों की कहानी सुनाते। कोई नहीं मिलता तो घुमा-फिराकर बेचारी हरतन को ही सुनाते रहते।

निवारण ढूंढते-ढूंढते एक दिन वहीं आ पहुंचा—'कल्याणमयी होटल'। मालिक की भेजी चिट्ठी हाथ में ही थी। उससे ठिकाना मिल गया। रुपयों को बड़ी सावधानी से टेंट में बांधकर लाया था। यह कलकत्ता शहर है। यहां ठग और उठाईगीरों की कमी नहीं है। ट्राम से उतरकर चारों ओर का हाल-चाल देखकर आश्चर्य में पड़ गया था।

उसके बाद होटल के नीचे से पूछताछ करके सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आया। फिर इस कमरे से उस कमरे में घूमता सीधे इस कमरे में आ पहुंचा। दरवाजा ठेलते ही मानिक सामने पड़े।

"अरे निवारण, आ गए तुम? मेरा यहां चिन्ता के मारे बुरा हाल है। दुलाल साहा क्या बोला? रुपये मिले?"

निवारण का ख्याल उस ओर नहीं था। वह तख्त के पास पहुंचकर उसपर लेटी हरतन को टकटकी लगाए देख रहा था। हरतन चादर ओढ़े चुपचाप लेटी थी। सिर्फ चेहरा खुला था। बड़ी-बड़ी दो आंखें। सिर पर बाल लहरा रहे थे। हरतन भी टकटकी लगाए निवारण की ओर ही देख रही थी।

मानिक हंसते हुए पास जाकर हरतन से बोले, "इनको पहचाना बेटी? तुम्हें गोद में उठाकर बाहर ले जाकर खिलाया करता था। सरकार बाबू?"

फिर निवारण की ओर देखकर बोले, "क्यों? पहचान रहे हो? आंखों के ऊपर भौंह देखी? अब? अब क्या कहेगा दुलाल साहा? तब तो किस कदर घमंड से चूर हो रहा था। लड़के को विलायत भेजा पढ़ने के लिए। मकान बनवाया, घुमाए फिर बैठा रहा है! अब क्या कहेगा? अब मैं भी दिखलाऊंगा। अब मैं भी देखूंगा कि उसके पास रेहन के कितने कागजात हैं! तुम्हारा क्या ख्याल है? अब तो यकीन हुआ तुम्हें?"

निवारण बोला, "बिलकुल हरतन है मानिक और कोई नहीं है—ठीक, अपनी वही हरतन है।"

सदानन्द इस उपन्यास का एक साधारण पात्र है, लेकिन मेरी कहानी में उसका भी एक विशेष स्थान है। अब उसी घटना के बारे में कहता हूं।

सदानन्द दुलाल साहा का मैनेजर ही नहीं था, मैनेजर से भी ज्यादा था। एक जमाने में यानी कांत के आने से पहले वह कांत की जगह काम करता था। शुरू-शुरू में वह सिर्फ खाना-खुराकी पर था। उन दिनों सदानन्द उसीमें खुश था। भरपेट खाना ही तब बड़ी बात थी। उससे ज़्यादा कुछ नहीं चाहता था वह।

लेकिन धीरे-धीरे दुलाल साहा की माली हालत अच्छी हुई। उसके देखते-देखते दुलाल साहा का नया मकान बना। दिनों-दिन दुलाल साहा की हालत को उसने सुधरते देखा। दुलाल साहा और निताई बसाक के पास कहां से कितना पैसा आया, यह सदानन्द ने अपनी आंखों देखा है। सारा हिसाब वही रखता था। वही दुलाल साहा की रोकड़ सम्हलवाता था, जबकि खुद उसकी हालत वैसी-की-वैसी थी। उसमें कोई सुधार नहीं हुआ था।

सदानन्द ने दुलाल साहा को इशारा भी किया था, "साहाजी, इतने में मेरा गुज़ारा नहीं होता।"

"गुज़ारा नहीं होता माने ? साफ-साफ कहो न, क्या कहना चाहते हो ?"

सदानन्द ने कहा था, "जी, माने यही कि खरचा नहीं चलता।"

"तुम्हारा मतलब तनख्वाह बढ़ाने से है ?"

"जी, इसके अलावा और क्या मांग सकता हूं ? सत्रह रुपये में घर नहीं चलता आजकल।"

उसकी बात सुनकर दुलाल साहा मुसकराने लगा। फिर बोला, "सत्रह रुपयों में घर नहीं चलता ? तुम्हारी बात सुनकर मुझे हंसी आती है सदानन्द ! अच्छा कहो, खाने के लिए आदमी को कितने रुपये चाहिए ? एक आदमी के खाने में महीने में कितने रुपये लगते हैं ?"

"आप ही कहें ?"

दुलाल साहा बोला, "एक पैसा भी नहीं लगता। मुझसे सुनो, मैं

जब पहली बार किशनगंज आया तो मेरे पास एक पैसा भी नहीं था। समझे ! एक फूटी कौड़ी नहीं थी। तब भी क्या मैं बगैर खाए रहा ? मैं क्या भूखों मरा ? तुम्हीं कहो, मैं क्या खाए बगैर रहता था ? दो, जवाब दो ?"

शुरू-शुरू में बगैर पैसे की नौकरी की। सिर्फ खुराकी पर। उसके बाद तीन रुपये, पांच रुपये और बाद में सत्रह रुपये। इतने पर भी सदानन्द का जी नहीं भरा। इतने लोभी आदमी को कैश पर रखना ठीक नहीं है। नजरों के सामने रुपयों का ढेर देखकर लोभ भी बढ़ेगा। दुलाल साहा के पास इतने रुपये हैं और उसके पास कुछ नहीं ! यह ठीक नहीं है। निताई बसाक ने भी कहा, यह ठीक नहीं है। दुलाल साहा का भी यही मत था।

दुलाल साहा के दिन फिर गए थे। जूट, धान और सन की आढ़त। ऊपर से लेन-देन का धंधा। इतना ही नहीं, पता नहीं किस अदृश्य सुरंग के रास्ते ढेरों रुपया आता, उसका कोई हिसाब नहीं था। निताई बसाक जितना दिल्ली या कलकत्ते जाता, उतना ही रुपया ले आता। सात सौ टन जूट सिंगापुर जाती है तो अमेरिका से तीन सौ टन का आर्डर है। सीधे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार। दुलाल साहा की आढ़त के सामने नावों की लाइन लग जाती, लारियों की भीड़ तीन-तीन दिन तक खत्म नहीं होती।

यह सदानन्द की नजरों के आगे ही होता। यह सब देखता और महीना पूरा होने पर सत्रह रुपये टेंट में खोंसता।

सिर्फ सदानन्द ही क्यों, दुलाल साहा के यहां जो भी काम करता था, कोई भी भौतिक सुख के लिए परेशान नहीं होता था। उन सबका एकमात्र आसरा था हरि। दुलाल साहा ने उन्हें समझा दिया था—पैसे में सुख नहीं है।

अगर कोई पूछ बैठता कि आखिर सुख किस चीज में है तो दुलाल साहा का पेटेंट जवाब होता—हरि की शरण में—यानी हरि का नाम लेने से सिर्फ पेट ही नहीं भरेगा, इहलोक, परलोक और उसके बाद भी अगर कोई लोक है तो वहां भी बेड़ा पार होगा। हरिनाम का गुण ही ऐसा है।

इसी तरह चल रहा था। लेकिन इधर कुछ दिनों से निताई वसाक को सदानन्द का तौर-तरीका ठीक नहीं जंच रहा था।

निताई वसाक ने कहा, "इसकी नौकरी खत्म कर दो दुलाल !"

दुलाल साहा ने कहा था, "अरे नहीं-नहीं, वेचारा भगवान का जीव है, ऐसा करो, उसे कहीं और हटा दो।"

उसे हटा भी दिया। दुनिया में कुछ लोग होते ही हैं कि जहां भी रहें, कुछ-न-कुछ गड़वड़ करते ही रहते हैं। घर की वहू होकर आने पर घर में फूट डालती हैं। घर में नौकर होकर आने पर संदूक तोड़ते हैं। ऑफिस में क्लर्क होकर आएंगे तो वहां की शृंखला तोड़ेंगे। सदानन्द उसी श्रेणी का आदमी था। कैश से हटाकर उसे दुलाल साहा की जूट की आढ़त पर वैठाया गया। जूट की आढ़त में काम कोई खास नहीं था। रुपये-पैसे की जिम्मेदारी नहीं थी। लारी पर माल लदवाते वक्त सिर्फ गिनना पड़ता—राम दो, राम तीन—हिसाव रखने भर का काम था।

तो उसी समय की वात है।

विजय के विवाह की वात चल रही थी। दुलाल साहा के पास इस वारे में लोग आ-जा रहे थे। सदानन्द को यह वात मालूम थी।

सदानन्द एक रोज इसी तरह काम कर रहा था। तभी भनक पड़ी उसके कानों में। आदमी नाव से ही आया था। गहना से चढ़कर किसी तरह किशनगंज आ पहुंचा था। आकर जो सामने पड़ता, उसीको पकड़ लेता था।

"किससे काम है आपको ?"

"जी, मैं दुलाल साहाजी से मिलना चाहता हूं।"

"आप कहां से आ रहे हैं ?"

उस आदमी ने कहा, "मैं वड़ी दूर से आ रहा हूं। वड़ा चातरा का नाम सुना है ?"

"यह नाम तो नहीं सुना, लेकिन आप करते क्या हैं ?"

"जी, मैं घटक हूं। विवाह-योग्य पात्र और पात्रियों की खवर लेता-देता हूं। मैंने सुना है, साहाजी के यहां एक विवाह-योग्य पुत्र है। वह डाक्टरी पढ़ रहा है, उसीके लिए पात्री का संवाद लाया हूं।"

सदानन्द को यह सब मालूम था। उसने कहा, "आइए, यहां बैठिए आराम से !"

सदानन्द ने काफी खातिर के साथ उसे बैठाया। फिर कहा, "मैं दुलाल बाबू की गद्दी का आदमी हूं।"

उस आदमी ने भी अपना परिचय दिया। नाम—दीनगोविन्द प्रामाणिक। पेशा—घटकी, बड़े-बड़े घरों में विवाह कराना ही काम है। अब इस महाराजा की लड़की का संबंध और हो जाए तो निश्चिंत हुआ जाए।

महाराजा नाम सुनकर सदानन्द को कौतूहल हुआ।

"कौन-से महाराजा ? कहां के महाराजा ?"

दीनगोविन्द ने कहा, "हमारे 'बड़ा चातरा' के महाराजा।"

"यह बड़ा चातरा कहां है ?"

"वर्द्धमान जिले के ही एक गांव का नाम बड़ा चातरा है। नाम के ही महाराजा हैं। हम लोग महाराजा कहते हैं। किसी जमाने में इस वंश का कोई महाराजा रहा होगा। महल भी है। लेकिन टूटी-फूटी हालत में। अब कोई रौनक नहीं है, लेकिन घराना बड़ा है। आज भी घराने की इज्जत है। घर में एक बूढ़ी बुआ भर हैं। इस लड़की के हाथ पीले कर दें तो छुट्टी पाएं।"

"लेन-देन कैसा करेंगे ?"

दीनगोविन्द प्रामाणिक अपनी पोटली को खिसकाते हुए अब जरा बेतकल्लुफी से बैठा। उस समय लेकर बोला, "अजी, जब बड़े घर में लड़की देंगे तो उनकी आबरू के हिसाब से दान-दहेज भी करेंगे ही! और फिर महाराजा की पहले जैसी हालत न हो लेकिन ऐसे गए गुजरे भी नहीं हैं, आज भी संदूक झाड़ें तो हीरे-माणिक निकलेंगे।"

सदानन्द ने सब बड़े ध्यान से सुना।

तभी जैसे उसे खयाल आया। उसने पूछा, "खाने-पीने का क्या इंतजाम है घटकजी ?"

"खाने-पीने की फिक्र नहीं है। चने-मुरमुरे जो भी मिला, चबाकर पानी पी लूंगा, मुझे आदत है। पहले काम होना चाहिए।"

सदानन्द की छुट्टी होने का समय हो चला था।

उसने कहा, "मेरे साथ आइए, आपसे काम है।"

कहकर दोलगोविन्द प्रामाणिक को सदानन्द अपने घर लिवा लाया।

उसने कहा, "आप किशनगंज के मेहमान ठहरे, आपको ऐसे ही कैसे छोड़ सकता हूं ?"

घर लाकर सदानन्द ने ही दोलगोविन्द को पट्टी पढ़ाई। लड़की की जिम्मेवारी बड़ी जिम्मेवारी है, सैकड़ों तरह की बातों के बाद कहीं जाकर लड़की के हाथ पीले हो पाते हैं। खैर, यह सब तो आप जानते ही हैं अच्छी तरह से। हां, तो यह बताइए, लड़की देखने में कैसी है ?"

"वह तो साहाजी खुद जाकर देख-सुन लेंगे। घटक की बात पर कहीं ब्याह-शादी होते हैं ?"

सदानन्द ने कहा था, "लेकिन आपको कह रखना ठीक होगा, बहुत-से संबंध आ रहे हैं, कलकत्ते के बड़े-बड़े घरानों से। लम्बी-चौड़ी रकमों का लालच दिखला रहे हैं, मुझे सब मालूम है।"

"सो तो आपको मालूम होगा ही ! साहाजी के यहां आप इतने दिनों से काम जो कर रहे हैं।"

"सिर्फ काम कर रहा हूं इसलिए नहीं; मैं चाहूं तो साहाजी को फंसा सकता हूं !"

"सो कैसे ?"

"अजी, यहां गद्दी पर तो कुछ ही दिनों से काम कर रहा हूं। पहले कैश पर था। बैंक में रुपया जमा करने भी मैं ही जाता था। साहाजी ने टैक्स का कितना रुपया हजम किया है, मैं यह भी बतला सकता हूं। हरि-सभा के नाम पर कितना रुपया खुद डकार गए हैं, यह भी मुझे मालूम है। मैं चाहूं तो साहाजी को पुलिस के हवाले कर सकता हूं।"

"ऐसी बात है !"

"लेकिन आप कहीं ये बातें किसीसे कह न बैठिएगा।"

"अरे नहीं-नहीं, कैसी बात कर रहे हैं आप ! आपके घर में खा-पीकर आपका ही बुरा सोचूंगा ! इतना नमकहराम नहीं हूं।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है, आप भले आदमी हैं, इसीलिए तो ये बातें

कह गया आपके सामने, नहीं तो ये बातें क्या किसीसे कहने की हैं। जानते हैं, मुझे तनख्वाह कितनी मिलती है?"

दोलगोविन्द चुप रहा जरा देर, फिर बोला, "कितनी?"

"मालूम है, पांच साल तक सिर्फ खुराकी पर काम किया है। फिर एक रुपया, दो रुपया करके बढ़ते-बढ़ते अब जाकर सत्रह रुपये मिलते हैं। मेरे कोई नहीं है, इसीसे किसी तरह सत्रह रुपये में काम चला रहा हूं—नहीं तो आजकल कहीं सत्रह रुपयों में गुजारा होता है? आप ही कहें?"

"सो तो है ही, लेकिन अब आप करना क्या चाहते हैं सो कहिए?"

हां, तो उसी रोज दोनों के बीच पहली बार परामर्श हुआ। सदानन्द ने बहुत अत्याचार सहे हैं, उसने जिन्दगी में कभी किसीका बुरा नहीं किया। किसीका बुरा सोचा तक नहीं। चार और भले मानसों की तरह उसने भी सिर्फ अपनी आर्थिक उन्नति चाही। चाहा था, एक रोज उसकी भी हालत सुधरेगी। दुलाल साहा या निताई बसाक की तरह नहीं तो दूसरे चार आदमियों जैसी ही सही। लेकिन वैसा कुछ नहीं हुआ। इसी-लिए मुंह बन्द किए पड़ा है। और यहां बैठकर जूट की गांठें गिन रहा है।

दोलगोविन्द घटक आया था विवाह पक्का करने के फेर में, लेकिन आकर इस अजीब आदमी से पाला पड़ गया।

उसने कहा, "लेकिन मैं क्या कर सकता हूं? मेरे कुछ करने का हो तो कहें।"

सदानन्द ने कहा, "आप सब कुछ कर सकते हैं। आप ही मुझे इस विपदा से उबार सकते हैं।"

"किस तरह?"

"यही कहने के लिए तो आपको अपने घर ले आया हूं। घर की हालत तो देख रहे हैं न?"

दोपहर के वक्त सदानन्द की गद्दी बन्द रहती है। सब लोग उस वक्त खाना खाने जाते हैं। दोपहर बाद तीन बजे गद्दी फिर खुलती है। सदानन्द ने इसी बीच दोलगोविन्द को अपने सामने बिठाकर सब समझा दिया।

"बात सीधी है। मैं दुलाल साहा का सर्वनाश करना चाहता हूं। उसने जिस तरह मेरा सर्वनाश किया है, मैं भी उसका सर्वनाश चाहता हूं।

दुलाल साहा के कैश पर काम कर चुका हूं। उसका सारा हाल मुझे मालूम है। कहां कितना रुपया लगा है, तिजोरी में कितना है और टैक्स का कितना मारा है, सब मुझे मालूम है!"

दोलगोविन्द ने सुझाया, "पुलिस को खबर कर दीजिए।"

"अभी नहीं, मैं गरीब आदमी हूं। ये पुलिस-उलिस सब बड़े आदमियों के साथ होते हैं। मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा तो कौन देखेगा मुझे? इसीलिए तो चुप हूं इतने दिनों से, कुछ भी नहीं कहता, इसीलिए आपको सब कुछ बतलाया।"

"लेकिन आप ही कहें, मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूं?"

"आप सब कुछ कर सकते हैं।"

कहकर सदानन्द ने झुककर जाने क्या कहा उसके कान में कि सुनते ही दोलगोविन्द चौंक उठा।

"कहते क्या हैं आप? मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता, मैं घर-गृहस्थी वाला मामूली आदमी हूं, मैं इस तीन-पांच में नहीं पड़ना चाहता। अजी, खुद मेरे ही घर में लड़कियां बैठी हैं ब्याहने को, यह सब करूंगा तो मेरा धर्म छोड़ेगा मुझे?"

सदानन्द हाथ पकड़कर गिड़गिड़ाने लगा, "मेरा यह उपकार आपको करना ही पड़ेगा।"

दोलगोविन्द बेचारा किसी तरह जान बचाकर भागना चाहता था। उसे जरा भी मालूम होता तो इतने लोगों के रहते इस आदमी के पास फटकता? घटकी करते-करते उसे तीस साल हो गए लेकिन पहले कभी इस तरह मुसीबत में नहीं पड़ा।

"वैसे मेरे पास अपना कुछ भी नहीं है, लेकिन नहीं-नहीं करके भी एक बारगी कुछ भी न हो, ऐसी बात नहीं है। नगद रुपया जरूर नहीं है लेकिन और जो भी मेरे पास है, मैं आपको दे दूंगा। बस, आप मेरा यह उपकार कर दें।"

दोलगोविन्द घटक असल में धर्मभीरु आदमी ठहरा, बुरी तरह आतंकित होकर बोला, "नहीं जी, मैं गरीब आदमी हूं, मुझे कहीं लालच हो गया तो फिर अपने को रोक नहीं पाऊंगा।"

कहकर सचमुच ही वह उठ खड़ा हुआ, अपनी पोटली भी उठा ली। सदानन्द का भी यहां जाने का समय हो रहा था।

सदानन्द भी पीछे-पीछे आया।

चलते-चलते उसने कहा, "दोलगोविन्द बाबू, आप जा रहे हैं, जाइए, लेकिन मेरी बात एक बार सोचकर देखते तो अच्छा होता, सारी जिन्दगी में आपको जो नहीं मिला, वही मिल जाता आपको।"

सदानन्द की यह बात दोलगोविन्द को पहेली-सी लगी।

"इसके माने ?"

"माने यही कि नगद रुपया तो मेरे पास नहीं है। मैं आपको थोड़ा सोना देता। असली गिनी सोना।"

दोलगोविन्द के पांव रुक गए, उसे भी लड़कियां ब्याहनी हैं। तीन-तीन लड़कियां बैठी हैं घर में। घटकी के काम में मिलता ही कितना है? कुछ कपड़े, बहुत हुआ तो कभी एक शॉल मिल जाता, और कुछ नगद रुपये, सो भी चालीस-पचास से ज्यादा नहीं।

"यह सोना मेरी मां का है, पुराने ज़माने का एकदम खालिस सोना। आजकल का टांकेवाला सोना नहीं है। मुझे अब करना क्या है उस सोने का ? मेरे बहू भी नहीं है, लड़की भी नहीं है, मां मरने के बाद योंही पड़ा है, उसे भोगने वाला ही नहीं है कोई।"

दोलगोविन्द ने जैसे बड़े सकोच के साथ पूछा, "सोना कितना होगा ?"

"यही कोई पन्द्रह भरी समझ लीजिए। मेरे नाना ने सुनार को सामने बिठाकर बनवाए थे गहने मेरी मां के लिए। मेरे नाना को तब क्या मालूम था कि उनकी लड़की कम उम्र में ही विधवा हो जाएगी, और ससुराल से उसके देवर उसे खाली हाथ भगा देंगे। उन बेचारों ने सोचा होगा कि उनका एकलौता नाती यहां दुलाल साहा की आढ़त [illegible] मारेगा !"

"लेकिन ये गहने हैं कहां ?"

"ठीक जगह पर ही हैं। अकेला हूं तो क्या हुआ, [illegible] कितनी ही बार हुआ कि जो सामने आए, उसीको दे [illegible]

इसीका नाम दुनिया ! ..

वार तो गुस्से में इच्छामती के पानी में ही फेंकने जा पहुंचा, सोचा था—जाए, मगरों के पेट में ही जाए यह सब। फिर पता नहीं क्या सोचकर वापस आकर रख लिए, अब किसी भले काम में ये गहने लग जाएं तो उससे अच्छा और क्या हो सकता है ?"

"भला काम ? कौन-सा भला काम ?"

सदानन्द ने कहा, "यही कि अगर यह सोना आपकी तीन लड़कियों के विवाह में काम आए।"

"लेकिन उससे आपको क्या फायदा होगा ?"

सदानन्द ने कहा, "फायदा क्यों नहीं है ? बगैर फायदे के ऐसे ही यह काम कर रहा हूं ? इतना सोना बगैर किसी बात के ही आपको दिए दे रहा हूं ? दुलाल साहा से बदला लेने में ही मेरा फायदा है। लड़का तो वही एक है, उस इकलौते वंशधर के सर्वनाश में ही दुलाल साहा का सर्वनाश है। मैं इस आदमी का सर्वनाश करके ही मरना चाहता हूं, उससे पहले नहीं। देखता हूं, इस बार कैसे इसका हरि इसे बचाता है !"

"लेकिन आपके पास जब इतना गहना है तो आप यहां क्यों पड़े हैं ? मैं तो ऐसी नौकरी को लात मारकर चल देता।"

सदानंद ने हाथ माथे से लगाकर कहा, "अजी सब भाग्य की बात है। कहते हैं न कि मैं जाऊं डार-डार तो भाग्य चले पात-पात। मेरे साथ भी ऐसा ही है। नहीं तो पास में इतना सोना होते हुए मैं ही क्यों यहां नौकरी करने आता ? और फिर इतने लोगों के रहते साहाजी मुझीपर क्यों खार खाए रहते ? आप ही कहिए ! खैर, जो होना था सो हुआ। आपसे अगर मुलाकात नहीं होती तो यह सोना किसीको देकर वैरागी ही हो जाता। मुझे जो कहना था कहा, अब आप जैसा उचित समझें, करें।"

इतने पर भी एक रोज में दोलगोविंद जैसे जरूरतमंद धर्मभीरु आदमी को काबू में नहीं किया जा सका। उस रोज वह किशनगंज में ही रुका। अगले रोज भी और उसके अगले रोज भी।

यही बात पहले कह चुका हूं। सदानंद इस उपन्यास का एक बहुत

ही मामूली पात्र है। पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर को लेकर हुई लाठी-बाजी के समय यही सदानंद मजदूरों के काम की निगरानी कर रहा था। सत्रह रुपये तनख्वाह के मिलते थे उसे। उसके बाद दुलाल साहा ने उसे अस्पताल भिजवाया। दुलाल साहा खुद हर रोज उसे देखने अस्पताल आता। उसके लिए खाना लाता। बाद में यह सदानंद ही एक दिन अस्पताल से गायब हो गया।

पात्र मामूली जरूर है, लेकिन इस उपन्यास में उसकी भी एक विशिष्ट भूमिका है। असल में सदानंद नहीं होता तो यह कहानी भी न लिखी गई होती।

दीनगोविंद प्रामाणिक कर्मठ आदमी था, इसका सबूत कुछ ही रोज के अंदर मिल गया। दुलाल साहा लड़की देख आया। आशीर्वाद की रस्म भी कर आया। लड़की वाले भी आकर लड़के को आशीर्वाद कर गए।

यह सब काफी पहले की बातें हैं। तब तक दुलाल साहा का यह नया मकान नहीं बना था। लेकिन हालत अच्छी हो गई थी। विजय उन दिनों कॉलिज में पढ़ता था। कलकत्ते में पढ़ता और छुट्टियों में घर आता। खासा सुंदर लड़का था। लड़के को देखकर हर किसीकी आंखें ठंडी होतीं। जैसा मिठबोला बाप था वैसा ही मिठबोला लड़का भी था। उसी लड़के का विवाह था, किशनगंज के हर घर में निमंत्रण गया। मां तो थी नहीं, सो पुत्रवधू के आने से घर की श्री लौट आई। दुलाल साहा ने असल में कुछ नहीं देखा। कोई मांग भी नहीं की। दहेज की ओर नजर रखने में असली माल में गड़बड़ हो जाती है। सिर्फ लड़की देखी थी। उसे ऐसी लड़की की तलाश थी, जो आकर पूरी घर-गृहस्थी का भार अपने कंधों पर उठा ले। लड़की का बाप भी नहीं है। मां भी नहीं है। अभिभावक के नाम पर एक बूढ़ी बुआ थी। बुआ की उम्र भी हो चली थी। भतीजी के हाथ पीले करके बुआ भी निश्चिन्त होना चाहती थी। अच्छा ही है। मायके में ज्यादा लोग न होना ही अच्छा है। जब देखो, बहू मायके चल देती है। मां-बाप में जी पड़ा रहता है। ऐसा न होना ही ठीक है। ऐसी लड़कियों का जी आसानी से ससुराल में नहीं लगता। दुलाल साहा और निताई बसाक इसीलिए काफी देख-

सुनकर नई वहू को इस घर में लाए थे। दूल्हा जिस दिन वहू को लेकर आया, सारा गांव साहाजी के घर उमड़ पड़ा था। आहा, कैसी फूल-सी वहू है! जो भी हो, साहाजी वहू बड़ी अच्छी लाए हैं। जैसा लड़का वैसी ही वहू। बड़ी अच्छी जोड़ी मिली है। सब लोग एक ही बात कर रहे थे। साहाजी ने लड़के के विवाह में एक पैसा भी नहीं लिया, इस बात का भी खासा प्रचार हो गया।

दुलाल साहा ने कहा था, "मेरा लड़का क्या जूट या सन है कि उसे वेचकर पैसा लूंगा ?"

कोई-कोई वोला, "मालिक ने किन्तु लड़के के विवाह में नगद दो हज़ार रुपये लिए थे।"

दुलाल साहा, "तुम लोगों को परनिंदा करने की आदत पड़ गई है। मालूम है, परनिंदा महापाप है !"

लेकिन उस रोज किसीको इतना सब सुनने की फुरसत नहीं थी। कतार-की-कतार लोग पंगत लगाकर जम गए थे। छत, आंगन, कहीं भी रत्ती भर जगह खाली नहीं वची थी। पूड़ियां परोसते-परोसते तरकारी खत्म होती तो तरकारी परोसते-परोसते पूड़ियां खत्म। उधर मजिस्ट्रेट साहब आ पहुंचे थे, पुलिस के सुपर साहब आ पहुंचे। इन लोगों की खातिरदारी करने का जिम्मा खुद निताई वसाक ने लिया था। घर के आगे ऊपर मचान लगाकर नौहबत वज रही थी। वाहर कूड़े में केले के पत्ते और कुल्हड़-सकोरों का ढेर लग गया था। दुलाल साहा के घर एक तरह से वही पहला और आखिरी विवाह था। दुलाल साहा ने किसी वात की कसर नहीं छोड़ी। दोलगोविंद प्रामाणिक भी एक कोने में वैठा भरपेट खा रहा था। असल में आज का उत्सव उसीका तो था।

"खाना खाया ? अच्छी तरह खाया ?"

दोलगोविंद ने कहा, "जी, खूब पेट भर के खाया है।"

"देखो भाई, मन में कोई कसर मत रखना, पेट न भरा हो तो अगली पंगत में फिर वैठ जाओ, वाद में फिर सुनने को न मिले कि···"

दुलाल साहा हर किसीसे यही कह रहा था।

हर कोई दुलाल साहा के पास आकर वड़ी तृप्ति के साथ हाथ जोड़-

कर कह रहा था, "क्या बात है साहाजी ! बड़ा अच्छा इंतजाम किया है !"

"अरे बहू देखी ?"

"जी हाँ, एकदम साक्षात् लक्ष्मी लाए हैं घर में।"

धीरे-धीरे रात गहरी होने लगी। जितनी देर हो रही थी, दौल-गोविंद की छटपटाहट उतनी ही बढ़ रही थी। भिन्न-भिन्न के चेहरे की ओर ताक रहा था। किसीसे कुछ पूछ भी नहीं पा रहा था बेचारा। रात और भी गहरी हुई। अब तो जैसे उसका सीना भी जोर-जोर से धड़क रहा था। दौलगोविंद बार-बार अंदर-बाहर आ-जा रहा था। अंधेरे में इधर-उधर कभी भी दो-चार लोग घूम-फिर रहे थे। जानेवाले ज्यादातर जा चुके थे। रात को रुकनेवाले लोग ही बाकी थे। दौलगोविंद हर किसीका चेहरा देखकर जैसे कुछ ढूंढ़ रहा था।

"ऐसे क्या देख रहे हो घटकजी ?"

बगैर कोई जवाब दिए दौलगोविंद दूसरी ओर चला जाता। कभी इस कमरे में तो कभी उस कमरे में। कमरे से बरांडे में, फिर आंगन में; घर के बाहर, फिर अंदर। दौलगोविंद जैसे बावला हो गया था। नौह-बत वाला दरबारी कानड़ा के कोमल गंधार की मींड़ में भटक रहा था। थोड़ी ही देर में पूरा घर सो जाएगा।

"क्या बात है घटकजी, किसे ढूंढ रहे हो ?"

अब और वक्त नहीं था। दौलगोविंद के लिए सिर्फ पागल होना बाकी था। रुआंसा हो गया था बेचारा।

अचानक सामने सदानंद दिखाई पड़ गया। दौलगोविंद ने लपक-कर उसका हाथ पकड़ लिया। "अब ? अब कहां भागोगे ?"

वह आदमी भी बुरी तरह सकपका गया।

"क्योंजी ? मेरा सोना क्या हुआ ?"

"सोना ! कैसा सोना ?"

"सोना देने का वायदा नहीं किया था ? भूल गए ? पंद्रह भरी सोना ?"

"किसने कहा था सोना देने के लिए ? कब कहा था ? वायदा क्या

देमाग खराब हो गया है घटकजी ?"

पूरे घर में हल्ला मच गया। जो जहां पर था, भागा-भागा आया। क्या बात है घटकजी ? किसने कहा था सोना देने के लिए ? किसे ?"

"देखिए न, मुझसे कह रहे हैं कि मैंने पंद्रह भरी सोना देने का वायदा किया था। इतना सोना तो अपनी जिंदगी में देखा भी नहीं है मैंने। सोना ही होता तो इस तरह किसीके यहां नौकरी करता ?

"छोड़िए, हाथ छोड़िए।"

बड़ी मुश्किल से घटकजी को अलग किया। दोलगोविंद का बुरा हाल था। कंधे पर की चादर फर्श पर लोट रही थी।

और उधर कमरे में फूलों से सजे पलंग पर घूंघट में चेहरा ढके नववधू बैठी थी। यही नई बहू उस वक्त नववधू के वेश में घूंघट के अंदर थरथर कांप रही थी।

बाहर नौहबतवाले ने तभी मचान के ऊपर से मुलतानी तान का आलाप शुरू किया।

ये बातें आज की नहीं हैं। आज जबकि मालिक कलकत्ते से हरतन को ढूंढ़-खोजकर किशनगंज वापस ला रहे हैं, ऐसे वक्त किसीको ये बातें याद रहना मुश्किल ही है। याद हो भी तो अकेले सदानंद को याद रह सकती है। लेकिन सदानंद भी तो आज लापता है।

सदानंद की जो इतनी देखभाल हो रही थी, मरीज बनाकर अस्पताल में उसकी इतनी खिलाई-पिलाई हो रही थी, उसके मूल में भी यही घटना थी।

दोलगोविंद शादी के बाद उस दिन वाली घटना के बाद से ही न जाने कैसा हो गया था। सदानंद ने उससे कहा था कि विवाह होते ही वह अपना वायदा पूरा कर देगा।

लेकिन वैसा नहीं हुआ।

सात समुद्र और तेरह नदी पार करने के बाद कहीं जाकर विवाह हुआ। दुलाल साहा धूमधाम के साथ बरात लेकर पहुंचा। निताबसाक भी गया था। बरात जब पहुंची तो वहां का इंतजाम देखकर स

 ६

भौचक रह गए। इतने लोग गए थे लेकिन खातिरदारी करने वाले ज्यादा नहीं थे।

निताई बसाक ने पूछा, "और वह घटकजी कहां गए? दीनगोविंद प्रामाणिक कहां हैं?"

दीनगोविंद भागता-भागता आया, "मुझे बुलाया था क्या बसाक-जी?"

निताई बसाक ने कहा था, "और नहीं तो क्या? अरे पान-तम्बाकू सब कहां हैं? बरात की खातिरदारी करने वाले लोग कहां गए?"

"बड़ी मुश्किल हो गई बसाकजी, इंतजाम सब ठीक ही था, खाली जरा-सी गड़बड़ हो गई।" कहकर जैसे किसीको पुकारने चला गया—अरे सुदामा, ए सुदामा···

दीनगोविंद उस वक्त जो गया सुदामा को पुकारने, तो फिर और दिखाई नहीं दिया। लेकिन इस वजह से विजय का विवाह तो नहीं रुक सकता था। लड़की की बूढ़ी बुआ बिस्तरे में पड़ी बुखार में तप रही थी। बूढ़ी बुआ उस बुखार में ही उठकर बैठने लगीं।

निताई बसाक ने कहा, "अरे-अरे, आप उठ क्यों रही हैं? आप लेटिए।"

बुआ बूढ़ी थी तो क्या हुआ, रुपया था उसके पास। उन रुपये के बूते पर ही गांव के लोग आ जुटे, उन लोगों ने ही सारा काम सम्हाल लिया। थोड़ी देर जरूर हो गई, लेकिन आदर-सत्कार में कोई कमी नहीं हुई। अच्छी तरह पूड़ी, बैंगन-भाजी, कासीफल और आलू की तरकारी; मछली, चटनी, दही और मिठाई खाने के बाद सब लोग पान चबाने लगे। रात को सोने के इन्तजाम में भी कोई कमी नहीं थी। कहां-कहां से बिस्तरे, तकिये और दरियों का इन्तजाम हो गया। किसीको किसी तरह की कोई तकलीफ नहीं हुई।

आखिर में दुलाल साहा को तसल्ली हुई। निताई बसाक भी खुश था।

सबसे ज्यादा खुशी हुई बहू देखने के बाद। जैसे साक्षात् देवी की प्रतिमा हो।

उम्र कम देखकर ही लड़की पसंद की थी दुलाल साहा ने। कच्ची उम्र से ही दुलाल साहा के घर का भार कंधों पर सम्हाल लेगी। बाप नहीं है। मां भी कुछ रोज हुए, गुजर चुकी है। सिर्फ इस लड़की के हाथ पीले करने के लिए ही बूढ़ी बुआ जैसे जीवित बैठी थी।

दोलगोविंद ने कहा था, "बहू के साथ संपत्ति भी आएगी। बुढ़िया के मरने पर सारी संपत्ति आपके लड़के को ही मिलेगी।"

विजय भी तब छोटा ही था। नई बहू के साथ उसकी जोड़ी देखते ही बनती थी।

दूसरे दिन जब जाने के लिए नाव तैयार हो रही थी, पता नहीं कहां से दोलगोविंद आ पहुंचा।

निताई बसाक उसे देखते ही आगबबूला हो उठा, "अब तक थे कहां दोलगोविंद ? हम लोगों को इस तरह छोड़कर कहां भाग गए थे ?"

दोलगोविंद जैसे आसमान से गिरा। आश्चर्य से उसने कहा, "भागूंगा क्यों बसाकजी ? अपना नेग-दस्तूर लिए बगैर ही चला जाऊंगा? आप कह क्या रहे हैं ?"

"तब कल रात भर तुम्हारी सूरत क्यों दिखलाई नहीं दी ?"

दोलगोविंद बोला, "तब इतना सब हुआ कैसे ? इतने सारे लोगों के खाने-पीने का इंतजाम किसने किया ?"

"तुमने किया यह सब ?"

"जी हां, सम्बन्ध करा के भाग खड़ा होऊं, मैं उनमें का नहीं हूं। बुढ़िया ठीक आज ही बीमार हो गई। नहीं तो मुझे किस बात की फिक्र थी ?"

हां, तो दोलगोविंद भी वर-वधू के साथ किशनगंज आया था। आने के बाद से ही उसकी बेचैनी जैसे बढ़ गई थी। जो मिलता, उसीसे पूछता, "हां भाई, यह सदानंद कहां गया ? आढ़त में बैठता था न, वही ?"

कोई-कोई जवाब में कहता, "जाएगा कहां ? होगा यहीं कहीं···"

सदानंद इस घर का ऐसा कोई नहीं है कि जिसके न होने पर घर के सारे लोग बगैर खाए-पीए बैठे रहेंगे। इसीलिए उसकी खोज-खबर

रखने की किसे पड़ी थी ! हर कोई अपने-अपने काम मे लगा था। दोलगोविंद को कोई काम नहीं था। बहू-भात होते ही निताई बसाक उसे जो देना-लेना है, चुका देगा। दिन भर इधर से उधर घूमना और तम्बाकू खाना छोड़ उसके पास करने के लिए कुछ भी नही था। लड़की की ससुराल में आकर वह और करता भी क्या ?

लेकिन बहू-भात हो जाने के बाद भी उसकी बेचैनी कम नही हो पा रही थी। सदानंद को ढूंढ़ता इधर से उधर घूम रहा था। बाद मे काफी रात गए जब सब लोग खा-पीकर पान चबाते चले गए, बहू और लड़का भी अन्दर कमरे मे चले गए, तब भी दोलगोविंद पागल की तरह भटक रहा था, "क्यों भाई, सदानंद को देखा है किसीने ? सदानंद कहा है ?"

किसीने जाकर निताई बसाक से कहा, "घटकजी को पता नहीं, क्या हो गया है, आंय-बांय बक रहे हैं !"

घर के बाहर कोई नही था। एक ओर जूठे केले के पत्तों का ढेर पड़ा था। दिन भर की मेहनत के बाद जिसे जहा जगह मिली, पड़ गया था। नौबतवाला भी मचान पर ही सो गया था। नीचे कुत्तों मे जूठे पत्तों के लिए छीना-झपटी हो रही थी। उसीके बीच दोलगोविंद मन-ही-मन बड़बड़ा रहा था, "सदानंद कहां गया ? सदानद ?"

उस सुनसान अंधेरे मे दोलगोविंद के ये शब्द जैसे काफी नुकीले और तेज होकर नम हवा को बींध रहे थे।

"आपने सदानद को देखा है ? सदानद को ?"

निताई बसाक ने आकर उसे जोर से डाटा, "क्या हुआ दोलगोविंद ? क्या बक रहे हो ?"

'हैं ?"

"यह क्या बक रहे हो, मन-ही-मन ?"

दोलगोविंद की आंखें जैसे नशे में झुकी जा रही थी।

निताई बसाक की ओर उसने जरा देर ताकने के बाद कहा, "सदा-नंद को देखा है ? सदानद को ?"

निताई बसाक को तभी खटका लगा। उसने फिर पूछा, "कुछ चढ़ा

ू क्या तुमने दोलगोविंद ? मुझे नहीं पहचान रहे ? मैं निताई बसाक
,'

क्षण भर के लिए जैसे दोलगोविंद को होश आया, लेकिन फिर सब
ल गया। निताई बसाक ने फिर पूछा, ''क्या चढ़ाया है ?''

''सदानंद को देखा है ? सदानंद को ?''

इस अनंत प्रश्न ने जैसे सदानंद को आच्छन्न कर लिया था। विश्व-भर में जैसे कहीं कोई नहीं था। कुछ नहीं था। सिर्फ था एक सदानंद और सदानंद। सदानंद ही विश्व ब्रह्माण्ड में जैसे एकमात्र और आदि-सत्य था। दोलगोविंद के लिए और सब मिथ्या और निरर्थक हो गया था। इसके बाद निताई बसाक भी वहां नहीं रुका।

पागल के साथ फालतू बकबक करने में कोई फायदा नहीं है। एक ही दिन में इस आदमी का दिमाग खराब हो गया। अच्छा-खासा था। अपने नेग-दस्तूर के लिए अच्छा खासा वाक्यालाप भी किया; लेकिन बहू-भात के बाद से ही न जाने एकदम क्या हो गया है इसे।

निताई बसाक भी अन्दर जाकर अपने सोने का इन्तजाम करने लगा।

अगले रोज सुबह से ही किशनगंज के लोगों ने देखा, दोलगोविंद
सारी रात सोया नहीं था। आंखें लाल हो रही थीं। पहले रोज पैरों में
जूता था, बदन पर कपड़ा भी था। दिन-भर इधर-उधर घूमता रहा
अगले रोज उसे घाट के पास देखा गया। वही एक रट लगाए थ
'सदानंद कहां है ? सदानंद कहां है ?'

बाद में उसका चेहरा और भी सूखने लगा। चेहरे पर दाढ़ी
आई। कपड़े भी फटने लगे थे। दिन-रात एक ही रट। सदानं
नाम का जैसे जप कर रहा हो। अब लोग भी उसे देखकर ध्यान
देते थे। वह भी किसीकी ओर नहीं देखता था। मन-ही-मन बड़
सड़क पर घूमता रहता।

सदानंद जिस रोज छुट्टियों के बाद अपने काम पर लौटा, उ
कई लोगों ने उससे पूछा, ''क्या बात है सदानंद, दोलगोविंद द

ढूंढ रहा था ?"

सदानंद हैरान था। उसने पूछा, "कौन दोलगोविंद ?"

"दोलगोविंद प्रामाणिक।"

इसपर भी सदानंद पहचान नहीं पाया। उसने कहा, "कौन दोलगोविंद प्रामाणिक ? कहां रहता है ?"

दोलगोविंद प्रामाणिक कहां रहता है, किसीको क्या मालूम ? घटक आखिर घटक ही है। घटक का पता-ठिकाना कौन बता सकता है ?

"पहचाना नहीं ?"

सदानंद कहता, "अरे पहचानूंगा कैसे, सात जनम में भी उसका नाम नहीं सुना कभी !"

"तब इतने लोगों के रहते वह तुम्हारे ही नाम की रट क्यों लगाए है ?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूं ?"

"खैर, एक बार चलकर उससे बात करने में क्या हर्ज है ?"

सदानंद चिढ़ गया। बोला, "मुझे कोई काम-काज नहीं है क्या, जो ऐरे-गैरे से सिर मारता फिरूं ? मेरा काम कौन करेगा यहां पर ?"

सिर्फ दो-एक ही नहीं, और भी बहुत-से लोग आए सदानंद के पास। उसके छुट्टियों से वापस लौटते ही खबर सुनने पर काफी लोग आए। सभी एक ही बात कह रहे थे। हर किसीके मुंह पर वही एक सवाल था। और किसीका नाम नहीं लेता, सिर्फ सदानंद के नाम की रट लगाए है। दोलगोविंद को देखकर पहचानना मुश्किल है। नंगे बदन, नंगे पांव। तेल न पड़ने से सिर के बालों में जट पड़ गई है। दाढ़ी में जूओं ने डेरा बांध लिया है। इधर-उधर कहीं भी पड़ा रहता है। कुछ भी खा लेता है। कमर की धोती तक ठीक नहीं रहती।

सब लोगों के बार-बार पीछे पड़ने से सदानंद आखिर बड़ी मुश्किल से राजी हुआ।

"ठीक है, चलो तब, देखा जाए। कौन है यह आदमी ?"

फिर बोला, "तुम लोगों को अच्छी तरह मालूम है कि मेरा ही नाम ले रहा है ?"

रे और क्या ? तुम्हारा नाम छोड़ जैसे यह आदमी कुछ जानता
है, एक ही रट लगाए है—सदानंद को देखा है ? सदानंद कहां

"लेकिन इस दुनिया में क्या मुझको छोड़ और कोई सदानंद नहीं हो
ा ?" ज़रा रुककर फिर बोला, "खैर, जो भी हो। चलो, तमाशा
ही लिया जाए।"

सदानंद सामने आकर खड़ा हुआ।

सड़क के किनारे एक बेल का पेड़ था। उसीके नीचे धूल-मिट्टी में
क फटी दोहर वदन पर डाले दोलगोविंद आंय-वांय बक रहा था। इतने
लोगों के आने का भी उसपर कोई असर नहीं था। अपने में डूबा बड़-
बड़ाता था, "सदानंद को देखा है, सदानंद ?"

सदानंद अब आगे बढ़ आया।

उसने कहा, "मैं पूछता हूं, तुम किसे ढूंढ़ रहे हो ? किसे ? मैं ही तो
हूं सदानंद, तुम्हारे सामने ही खड़ा हूं।"

दोलगोविंद ने सदानंद की ओर देखा तक नहीं। उसे जैसे मालूम भी
न था कि कोई उसके सामने भी आकर खड़ा हुआ है।

सदानंद ने हिम्मत करके और भी पास आकर झुककर कहा, "अच्छी
तरह से देख लो मुझे, मैं ही हूं सदानंद, मुझे किसलिए ढूंढ़ रहे हो ?"

इतनी देर बाद दोलगोविंद ने नज़र उठाकर उसकी ओर देखा।
फिर बोला, "सदानंद, सदानंद को देखा है, सदानंद को ?"

सदानंद ने कहा, "क्या अजीब बात कर रहे हो ! अरे, मैं ही तो
सदानंद हूं—मुझे जानते हो तुम ?"

दोलगोविंद अपनी ही रौ में कहे जा रहा था, "सदानंद को देख
है ? सदानंद..."

"अजीब पागल से पाला पड़ गया। यह आ कहां से गया है किस
गंज में ?"

निरंजन पास ही खड़ा था। वह बोला, "अजी, इसी पागल ने
साहाजी के लड़के का सम्बन्ध कराया है।"

सदानंद ने मुंह से च्च्-च्च् की आवाज़ की।

"अरे, यह तो एकदम पागल है ! पागल की बात पर साहाजी ने लड़के का सम्बन्ध कर लिया ? और कोई घटक नहीं मिला उन्हें ?"

बाद में सब लोगों की ओर देखकर कहने लगा, "विवाह देख-सुनकर किया है न ? राम-राम, आखिर लड़के की ज़िंदगी का सवाल है ! ऐरे-गैरे की बात पर कहीं विवाह-शादी किए जाते हैं ! समधी कैसे है ?"

समधी कैसे होंगे ? लेन-देन तो अच्छा ही किया है। वैसे साहाजी की तो कोई मांग ही नहीं थी। लडकी पसंद की है। इसके अलावा लडकी देखते वक्त करीब दस हजार का आर्डर आ गया था। सगुन अच्छा ही हो गया।

फिर विवाह के बाद ही पता नहीं कहां से आसमान फोड़कर पैसा बरसने लगा। भाग्यवान बहू हुए बगैर कहीं ऐसा हो सकता है ?

सदानंद बोला, "भगवान करें, सब अच्छा ही रहे। लेकिन कहते हैं न कि बहुत ज्यादा अच्छे की गर्दन में कभी-कभी फंदा भी पड जाता है।"

लेकिन इन बातों पर किसीने कान नहीं दिए। साहाजी ने खूब अच्छा खिलाया है। बहू भी अच्छी है और क्या चाहिए ? इसके बाद जो होना है, वही होगा। होनी को कौन टाल पाया है ? तुमने अच्छा-खासा घरबार देखकर लडके का विवाह किया बाद में देखा कि लड़की का पूरा कुनबा ही तुम्हारे सिर पर आ सवार हो गया है तब ?

"लड़की के मा-बाप हैं ?"

"मा-बाप नहीं हैं, एक बुआ है लेकिन उनकी हालत भी 'आज है तो कल नहीं' वाली है।"

सदानंद जैसे अपने-आपसे ही कहने लगा, "कौन जाने साहाजी ने एक बार ठीक से देखा है या नहीं, मुझे तो डर लग रहा है।"

"अरे लडके का विवाह किया है तो क्या साहाजी ने [illegible] देखा होगा ?"

"क्या मालूम भाई, मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। कहीं [illegible] नीच न हो।"

कहकर सदानंद वहां नहीं रुका। उसने कान [illegible] दोलगोविंद बैठा-बैठा उसी तरह बड़बड़ा रहा था.

सदानंद को ?"

दोलगोविंद जब तक किशनगंज में था, उसकी जबान पर ये ही शब्द रहे। बात जाने कैसे निताई बसाक के कानों में पहुंची। दुनिया में यहां की बात वहां पहुंचानेवाले लोगों का अभाव तो कभी रहता नहीं है। सदानंद की बातों में नमक-मिर्च लगाकर उनका रूप ही कुछ और हो गया।

निताई बसाक ने एक रोज सदानंद को बुला भेजा।

सदानंद के आते ही निताई बसाक ने पूछा, "मैं कहता हूं, तुम्हारा क्या नौकरी-वौकरी करने का इरादा नहीं है सदानंद ?"

सदानंद बोला, "जी, नौकरी नहीं करूंगा तो खाऊंगा क्या ?"

"लेकिन यह बात शायद हर समय याद नहीं रहती ?"

"जी, याद बिना रहे नौकरी कैसे कर रहा हूं ?"

निताई बसाक ने सदानंद को ऊपर से नीचे तक देखा। फिर कहा, "खूब बेअदबी सीख गए हो आजकल !"

"इसमें बेअदबी कहां देख ली आपने ?"

निताई बसाक ने डपटकर कहा, "चुप रहो, खाल उधेड़ ली जाएगी, समझे ?"

सदानंद कहना तो बहुत कुछ चाहता था लेकिन उसने अपने-आपको सम्हाल लिया।

निताई बसाक कहने लगा, "नई बहू के नाम क्या-सब बकते फिर रहे हो। तुम सोचते हो, मेरे कान में कोई बात नहीं आती ?"

सदानंद ने सिर झुकाकर कहा, "जी, मैंने तो कुछ भी नहीं कहा।"

"कुछ कहा नहीं तो मेरे कान तक बात पहुंची कैसे ? नई बहू के नाम पर तुम जो सब कहते फिर रहे हो, वह सब अगर दुलाल के कान में जाए तो तुम्हारी नौकरी कहां रहेगी ? नौकरी रहेगी, बोलो ?"

जवाब में उस रोज सदानंद ने कुछ भी नहीं कहा। निताई बसाक ने ही कहा, "जाओ, जाकर दुलाल साहा के पांव छूकर मांफी मांगो, जाओ !"

दुलाल साहा के पांव छूकर माथे से लगाते ही दुलाल साहा ने कहा था, "अरे सो ही तो कहूं मैं, तुम्हारे मन में पश्चात्ताप हुआ है, मैं इतने में ही खुश हूं। मैं तो सभीसे कहता हूं कि खुद मैं अगर अपना बुरा न चाहूं तो सदानंद की क्या मजाल कि वह मेरा बुरा चाहे!"

इसके बाद सदानद के सिर पर हाथ रखकर कहा था, "इतने लोगों के रहते तुम मेरा बुरा क्यों चाहोगे सदानद? मैंने क्या तुम्हारा कोई नुकसान किया है जो तुम मेरा बुरा सोचोगे?"

और फिर कात की ओर देखकर कहा, "देख कांत, देख, सदानंद की आंखों की ओर ताककर देख, दोनों आंखें कैसी छलछला उठी हैं, देख..."

सदानंद की आंखें पहले जरा भी नही छलछला रही थीं। लेकिन दुलाल साहा की बातों से सचमुच छलछला उठीं। धोती के छोर से उसने आंखें पोंछ लीं।

दुलाल साहा यह देखता रहा। फिर बोला, "ऐ बाबा, रो ले। थोड़ी देर रो ले, एक बार खुलकर रो लेगा तो उसमें भी तेरा ही मगल है। रोकर भी तेरा भला ही होगा। रो, अहा, तुझे रोते देखकर भी अच्छा लग रहा है। तेरे मन की सब ग्लानि धुल गई, अरे, तू बच गया!"

इसके बाद सदानद क्या कहने आया था और क्या सब हो गया, दुलाल साहा के आगे आकर वह जैसे सब कुछ भूल गया। दुलाल साहा को दो-चार खरी-खोटी सुनाना चाहता था लेकिन वैसा कुछ भी न हो पाया। सदानद यह देखकर हैरान था कि नई बहू आने के बाद दुलाल साहा का कोई नुकसान नही हुआ, बल्कि दिनों-दिन बढोतरी ही हो रही है। कारबार और भी बढ़ने लगा। जूट की लदान बढने लगी। दुलाल-साहा की तिजोरी में हर ओर से पैसा आता गया। उसके लडके विजय ने डॉक्टरी का इम्तिहान पास कर लिया। दुलाल साहा और निताई बसाक दिनों-दिन फलते-फूलते रहे।

दुलाल साहा ने निताई बसाक से चुपचाप कहा, "सदानद की तनख्वाह बढा दो।"

निताई बसाक ने कहा, "क्यों? इस पाजी की तनख्वाह बढाने को कह रहे हो तुम?"

रे वढ़ा भी दो न।"
तुम क्या डर गए हो उससे ?"
डर की वात नहीं है, लेकिन किसीको वेकार परेशान नहीं करना
है। खीझने पर घर की विल्ली भी जंगली हो जाती है!"
हां, तो इस तरह सदानंद की तनख्वाह सत्रह से वढ़कर तीस हुई,
फिर तीस से वढ़कर चालीस।

लेकिन सदानंद इतने पर भी खुश नहीं था। एक तरह से सदानंद
किसी भी हालत में खुश होनेवाला आदमी ही नहीं है। और खुश हो भी
तो कैसे! दुलाल की इस तरह दिनों-दिन उन्नति देखकर भला कोई खुश
रह भी कैसे सकता है? घर में वहू आई तो वह भी जैसे लक्ष्मी वनकर
आई। उसके आने के वाद से तो जैसे सोना ही वरसने लगा। लड़का
विलायत गया, वहां से भी खवर अच्छी ही आती है।

ऐसा कैसे हो गया? ऐसा कुछ होने की तो वात नहीं थी।

सदानंद अव दुलाल साहा का मैनेजर हो गया था। पेंपुलवेड़ के पास
वाली आहर पर मजदूरों के काम की निगरानी का काम उसे मिला।
रातों-रात जमीन को मेंड़ से घिरवाना था। लेकिन उसके मन में जरा
भी शांति नहीं थी। मन में एक कचोट जैसे उसे रह-रहकर सता रही
थी। यह दीनगोविंद का वच्चा क्या वाकई उसे गच्चा दे गया?

दीनगोविंद प्रामाणिक जैसे उसके जीवन में धूमकेतु की तरह उदय
हुआ था।

नहीं तो एक भला-चंगा आदमी इस तरह अचानक पागल कैसे हो
गया?

और वह भी पागल-सा पागल! वाद में तो उसकी ओर देखा भी
नहीं जाता था। वही एक रट—'सदानंद है? सदानंद को देखा है?'

वाद में शायद दुलाल साहा ने काफी खोज-वीन करने के वाद उसके
गांव वड़े चातरा खवर कराई थी। वहां से दूर के रिश्ते का साला
और कोई आया भी था।

दुलाल साहा ने पूछा, "इनको जानते हो? अच्छी तरह से देख
पहचान पाते हो या नहीं?"

उस आदमी ने अच्छी तरह देखा, फिर कहा, "जी हां, ये मेरे बहनोई ही हैं—दोलगोविंद प्रामाणिक—घटकी का काम करते थे।"

"इनके वंश में कोई पागल हुआ है?"

"जी नहीं।"

"तो फिर ये पागल कैसे हो गए?"

"यह कैसे कहा जा सकता है!"

खैर, दुलाल साहा ने ही खर्चा दिया। दान-दस्तूर का जो कुछ था, साले के हाथ में थमा दिया। ऊपर से खुश होकर भी कुछ दिया। फिर कहा, "तुम्हारे बहनोई ने ही मेरे लड़के का सम्बन्ध कराया था, नई बहू पूरी तरह हम लोगों के मन माफिक आई है। जो कुछ हो सका, तुम्हें दे दिया है, इलाज कराकर देखो, अगर कुछ फायदा हो।"

अपने साले के साथ दोलगोविंद जो गया तो उसके बाद से उनकी कोई खबर नहीं मिली। किसीने खबर लेने या रखने की कोई जरूरत भी महसूस नहीं की।

लेकिन सदानंद उसे नहीं भुला पाया।

बाद में सदानंद के अचानक अस्पताल से गायब होने के बाद तो जैसे यह घटना हमेशा के लिए स्मृति के गर्त में दब गई। कम-से-कम निताई बसाक की यही धारणा थी। दुलाल साहा ने भी जैसे चैन की सांस ली।

इसके अलावा इन दिनों उधर मालिक की खबर इतने जोर से फैल रही थी कि सदानंद के बारे में कुछ भी सोचने की फुरसत किसीको नहीं थी। पूरा किशनगंज जैसे हरतन को लेकर मशगूल था। बी० डी० ओ० सुकांत राय से लेकर हलधर तक सभीकी जबान पर एक ही बात थी, देखा, साधु महाराज की बात एकदम ठीक निकली। खोई हुई पोती इतने दिन बाद किशनगंज लौट रही है।

उस रोज पूरा गांव किशनगंज स्टेशन जा पहुंचा था। सुबह दस बजे ट्रेन आनेवाली थी, लेकिन छः बजे से ही प्लेटफार्म पर भीड़ समा नहीं पा रही थी। लोग जैसे उमड़े पड़ रहे थे। निवारण सरकार आ रहा है, मालिक आ रहे हैं और साथ आ रही है हरतन।

छः बजे, साढ़े छः बजे, दस भी बज गए।

ट्रेन शायद लेट थी। आखिर साढ़े दस बजे ट्रेन आ गई। सब लोग एकसाथ पुकारने लगे—आ गई, आ गई! जंगले से निवारण का चेहरा दिखलाई दिया। पूरी भीड़ उधर ही उमड़ पड़ी। ट्रेन रुकने से पहले ही सब चिल्लाने लगे—हटो-हटो, रास्ता छोड़ो—देखने दो···

स्टेशनमास्टर बाबू जैसे अपना कौतूहल नहीं दबा पा रहे थे। लाल झंडी ऊंची किए एक बार झुककर देखा। ड्राइवर कहीं ट्रेन छोड़ न दे। होशियार, पहले ही खबर करा दी गई थी, अस्पताल से स्ट्रेचर का इंतजाम भी हो गया था। बीमार पोती को स्ट्रेचर पर ही घर ले जाने की व्यवस्था थी। हल्ला-गुल्ला नहीं होना चाहिए। बीमारी से उसका दिल कमजोर हो गया है। किसी तरह ठीक-ठीक घर पहुंचना है। तब सब लोग जी भरकर देखें। अभी रास्ता छोड़ो, रास्ता छोड़ो, ट्रेन छूटने वाली है। सावधान!

लेकिन कौन किसीकी सुनता है। ट्रेन रुकने के साथ-ही-साथ, बस टूट पड़े—हरतन आई है, हरतन आई है! हरतन को देखने के लिए गांव का कोई आदमी बाकी न रहा। सब अपना काम-काज छोड़कर दौड़े चले आए हैं।

किशनगंज एक ऐसी जगह है जहां साधारणतः कभी कोई रोमांचकारी घटना नहीं घटती। इच्छामती नदी की तरह यहां की जीवनधारा भी एक ही तरह बहती रहती है। यहां जीवन जितना मंथर है, मृत्यु भी उतनी ही मृदुमय है। अचानक किसी रोज अगर इच्छामती के जल में मगर आ पहुंचता है तो यहां के लोग उसीकी चर्चा करते बड़े मज़े में एक महीना बिता डालते हैं। किसी साल अगर ज्यादा बारिश होकर रास्ते और खेतों में पानी भर जाता है तो लोगों को पूरी बरसात के लिए खूराक मिल जाती है।

लेकिन रोज-रोज तो ऐसी घटनाएं नहीं हुआ करतीं।

नदी में मगर पचास साल पहले आया था। उस बार मगर नंद हाजरा की बहू को खींच ले गया था। नंद हाजरा की बहू नहीं बची,

लेकिन पीतल की कलसी बच गई। नंद हाजरा की बहू कमर में कलसी थामे नदी में नहाने उतरी थी। नहाने के बाद पीतल की कलसी में पानी भरकर कलसी को कमर में थामे किनारे आ रही थी कि मगर ने पीछे से सीधे कलसी पर दांत मारे। कलसी के साथ-साथ बहू भी गिर गई। मगर बहू को तो लेकर चला गया लेकिन दांत के निशान लगी कलसी पड़ी छोड़ गया। नंद हाजरा के लड़कों ने उस मगर के दांतों के निशान पड़ी कलसी को बड़े यत्न के साथ रख छोड़ा है। बड़े गर्व से लोगों को दिखलाते हैं —यह देखो, मगर ने यहा दांत मारे थे।

इसके बाद जिस बार प्रचंड वर्षा हुई, उस घटना को बीते भी सालों गुजर गए। पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर में कितने हाथ पानी भरा था; रेल का पुल कितना डूबा था मछुआटोली के मछुओं ने किस तरह घर-बार छोड़ इच्छामती के बांध पर जाकर रात काटी थी—किशनगंज के लोग नमक-मिर्च लगाकर सालों तक इन किस्सों का रस लेते रहे।

लेकिन ऐसा कभी-कभार ही होता है!

यहां जैसे दुलाल साहा के घर साधु महाराज आए। आकर उन्होंने लोगों के भूत-भविष्य के बारे में बतलाया। यह बात भी अब किशनगंज के लोगों के लिए बासी हो चुकी थी। इधर काफी दिनों से किशनगंज में ऐसा कुछ नहीं घटा था कि उसकी चर्चा करके लोग अपना जी बहलाते, जिसकी चर्चा करके उनका खाना हजम होता।

लेकिन इस बार वैसा ही हुआ। किशनगंज के लोगों को काफी दिनों बाद जी बहलाने के लिए एक चटपटी खबर मिली।

लेकिन सिर्फ खबर सुनकर तसल्ली नहीं होती। खुद देखे बगैर थोड़े ही पूरा मजा आता है! और लोग भी कोई एक-दो नहीं। झुंड-के-झुंड गिरते-पड़ते झांकने की कोशिश कर रहे थे। एक बार जरा-सा देखकर जी नहीं भरता। बाप देखकर जाता है तो लड़का आता है। लड़के के बाद बहन आती है। इस गांव, उस गांव से उनके जान-पहचान वाले और नाते-रिश्तेदार आते हैं। गांठ का पैसा खर्च कर बैलगाड़ी से आ पहुंचे हैं। भट्टाचार्य-भवन के सामने जैसे दर्शनार्थियों का मेला बैठ गया था।

कीर्तिश्वर भट्टाचार्य के घर के सामने सालों पहले इस तरह भीड़

रती थी। आज इतने दिन बाद उनके घर के आगे लोग जमा हुए

दूसरी मंजिल के बड़े कमरे में हरतन के रहने का इंतजाम हुआ था।
के लिए मालिक ने खुद अपना कमरा छोड़ दिया है। नया बिस्तर।
दर, गिलाफ सब नये। पलग के पास दवा और फल वगैरह रखने के
ए टेबल रखवा दी है।

लोग सीढ़ी से ऊपर आकर कमरे के बाहर ही खड़े-खड़े निहारते और
कहते—'अहा बेचारी...'

लोगों के मुंह से ज्यादातर यही एक शब्द निकलता। इतने दिनों से
जिसे हिसाब से बाहर ही रख छोड़ा था, उसके पुनर्मिलन पर कोई आनंद-
उत्सव जैसे जंच नहीं रहा था। इतने दिन बाद उसे वापस पाने पर, पा
जाने के आनंद से खोजने की वेदना ही जैसे अधिक मुखर हो रही थी।
मालिक भी और सभीकी वेदना के साथ अपनी वेदना मिला-जुलाकर
पोती को वापस पाने का आनंद दुगना-दुगना महसूस कर रहे थे।

कोई-कोई कहता, "आहा, बिटिया को जरा ठीक से देख लूं..."

निवारण सरकार भी आज किसीको बाधा नहीं दे रहा था। अहा,
देखें न! जी भरकर देख लें! जी भरकर सब हरतन को आशीर्वाद करें।
मालिक के आनंद को सभी थोड़ा-थोड़ा करके बांट लें। उसीसे भट्टाचार्य-
वंश का मंगल होगा। किशनगंज में फिर से उनका रौब और दबदबा
बढ़ेगा। इन पन्द्रह सालों में उन्हें काफी लांछित होना पड़ा है। दुला
साहा और निताई बसाक ने बड़ी बेइज्जती की है उनकी। मालिक क
इस बीच बड़े-बड़े आघात सहने पड़े हैं। उन्हें दिखा-दिखाकर दोनों
मोटर में घूमते फिरे हैं। वजह-बेवजह जब-तब गांव भर के लोगों
खालिस घी की पूड़ियां खिलाई हैं जिससे कि घी की गंध मालिक की
में जाकर लगे और वे चिढ़ें। लड़के के विलायत जाते वक्त कल
जाकर अखबारवालों को पैसा देकर खबर छपवा दी। इसका कोई
कार नहीं था। प्रतिकार करने की क्षमता ही नहीं थी मालिक में।
कानों से सब कुछ सुनते रहे और आंखें फाड़े अंदर-ही-अंदर सब सहते

लेकिन अब? इस बार?

मालिक ने जिन्दगी मे कभी अपने हाथो पंखे से हवा नही की। हमेशा दूसरों के हाथ की हवा खाते रहे। लेकिन आज जैसे उन्हें कोई तकलीफ नही हो रही है। कलकत्ते से लौटने के बाद इतने दिन निकल गए, उन्होंने जरा भी विश्राम नही किया है, वक्त ही कहा मिला ? तब भी चेहरे पर थकान का जैसे कोई निशान तक नही है। जिस रोज से कलकत्ते मे हरतन मिली है, थकान किसे कहते हैं, उन्हे नही मालूम। आराम किस चिड़िया का नाम है, यह भी वे भूल चुके हैं।

निवारण कहता, "मालिक, आप हटें, मैं हवा करता हूं बिटिया को !"

"तुम हटो।"

कहकर निवारण सरकार को हटा दिया। बोले, "तुम हटो यहां से, पखा क्या हर कोई झल सकता है ? देखते नही, अभी भी बुखार है लड़की को।"

हरतन कहती, "आप क्यो तकलीफ कर रहे हैं दादा !"

"पगली !" मालिक हस पड़े, "अपनी बिटिया को हवा करने मे कही तकलीफ हो सकती है दादा को ? नही होती, जब तेरे पोती होगी तब पता चलेगा," कहकर जैसे हवा कर रहे थे, फिर से वैसे ही हवा करने लगे।

इसके बाद निवारण से बोले, "तुम यहां बुद्धू की तरह खड़े-खड़े क्या कर रहे हो, तुम जाओ न, तुम्हें काम नही है ? तुमसे इलेक्ट्रिक का इत-जाम करने को कहा था, उसका क्या हुआ ?"

सिर्फ इलेक्ट्रिक ही नही, और भी बहुत कुछ करना है। हरतन के आने के बाद तो इस टूटे-फूटे मकान मे रहा नही जा सकता। सारे घर मे रग-रोगन करवाना है। जहा-तहां प्लास्टर खिसक गया है। घर भी तो कोई छोटा नही है। आज न हुआ घर मे लोग-बाग नही हैं, लेकिन एक दिन लोग-बाग, नौकर-चाकर, हाथी-घोड़ा सभी कुछ था। उन दिनों जैसी अवस्था थी, उसी तरह व्यवस्था भी थी। बड़े-बड़े खम्भे, दीवानखाना, सब कुछ वैसा ही है सिर्फ मरम्मत के अभाव मे टूट-फूट गया है। ठीक है, फिर सब कुछ होगा। हर दालान मे फिर से झाड़ झूलेंगे। लेकिन इस बार तेल-बत्ती वाले झाड़ नहीं, बिजली के झाड जगमगाएंगे। बिजली के पंखे लगेंगे।

ल साहा के घर जैसे सब कुछ है, यहां भी वैसा ही होगा। स्विच
ते ही बत्ती जलेगी, स्विच दबाते ही पंखा भनभनाने लगेगा।

मालिक ने यह प्लान कलकत्ते में ही बना लिया था। आते ही निवा-
ग को बिजली मिस्तरी के पास भेजा। किशनगंज के रेल बाजार में एक
ई बिजली की दुकान खुली थी। निवारण उन्हीं लोगों को बुला लाया।

उन लोगों ने घर-भर में घूम-घूमकर माप-जोख की। मालिक ने बतला
दिया कि कहां झाड़ लगना है, कहा पंखा। सब कुछ अच्छी तरह समझा
दिया।

फिर बोले, "कर पाओगे तुम लोग ? नहीं तो साफ-साफ अभी कह
दो। कलकत्ते से ही मिस्तरी बुलवा लूं ?"

"जी, कर क्यों नहीं पाएंगे मालिक! खर्चा करने पर हम भी कलकत्ते
के मिस्तरियों जैसा ही काम कर दें। इसके अलावा यहां साहाजी के घर
भी तो हमीं लोगों ने काम किया है, साहाजी और निताई बसाकजी दोनों
ही हमारे काम से बड़े खुश हैं।"

दुलाल साहा का नाम सुनते ही मालिक चिढ़ गए।

बोले, "तब तो हो चुका, तुम लोगों के किए यह काम नहीं होने
का।"

"जी, ऐसा क्यों कह रहे है ? ठीक है, पसंद न आए तो पैसा न दीजि-
एगा। बात पक्की रही।"

मालिक बोले, "नहीं-नहीं, पैसे की बात नहीं है। अरे दुलाल साह
के घर का काम और मेरे घर का काम एक बात हुई ? अभी उसी वि
तक तुम्हारा दुलाल साहा कंधे पर गठरी लादे फेरी लगाता फिरता
हरिसभा करने के लिए मैंने ही उसे ज़मीन दी जिसपर उसने मव
बनवाया है। उस तरह का काम यहां नहीं चलेगा। यह खानदानी
है। यह घर खुद केदार भट्टाचार्य ने बनाया था, जो हाथी पर चढ़कर
करने के लिए राजमहल जाया करते थे —इस घर के साथ तुम
साहा के घर की बराबरी कर रहे हो ?"

"जी, बराबरी तो नहीं की !"

"बराबरी करके कहते हो कि बराबरी नहीं की ? बड़े

आदमी लगते हो। रहने वाले कहां के हो ? जात क्या है तुम्हारी ?"

कहकर बेचारे को दसियों बात सुना डाली। खासे भले घर का लड़का था। नई दुकान खोली थी। बड़ा काम मिल रहा है, सोचकर खुश था कि जरा-सी भूल के मारे सब चौपट हो गया।

उसके सामने ही निवारण की ओर घूमकर बोले, "कहां से ऐसे फालतू आदमी पकड़ लाए हो तुम ? लोहा पीटने वाला कहीं सोने का काम कर सकता है ? कलकत्ते नहीं जाया गया तुमसे ? कलकत्ते से मेकर-मिस्तरी नहीं ला सकते थे ? मेकर-मिस्तरी के बगैर कहीं मेरा काम हो सकता है ? यह क्या दुलाल साहा का घर है कि दो-एक चमकीली फिटिंग कर दी और गवार लोग वाह-वाह करने लगे ? जानते हो, यह खानदानी घर है ?"

इसके बाद किसी भी भले आदमी के लिए खड़े रहना मुश्किल था। वहां से फौरन खिसककर बेचारे ने जो कुछ आबरू बाकी थी, उसे बचाया।

निवारण सरकार ने कहा, "कलकत्ते के मिस्तरी तो बहुत मांगेंगे ?"

"तो क्या हुआ ! मांगेंगे तो दिया जाएगा ! पैसे के लिए कभी कीर्तिश्वर भट्टाचार्य ने मुट्ठी बन्द की है ? कितना मांगेंगे, सुनू जरा ? हजार, दो हजार, तीन हजार, पांच हजार या इससे भी ज्यादा ?"

"ठीक-ठीक तो नहीं कह सकता अभी ?"

"मैं कहता हूं, तुम क्या पैसे के लिए काम खराब करोगे ? मेरे यहां यह नहीं होगा, समझे निवारण ! जाओ और कलकत्ते से अच्छे-से-अच्छा मिस्तरी लेकर आओ।"

"जी, बहुत अच्छा—लेकिन पैसा ?"

मालिक ने डपटकर कहा, "पैसा क्या ?"

"कलकत्ते जाते वक्त दुलाल साहा ने जो रुपये दिए थे, उनमें थोड़े-से ही बचे हैं…"

मालिक ने कहा, "जो हैं, अभी ले जाओ, पैसों के लिए काम खराब नहीं होना चाहिए। मिस्तरी को ले आओ, आकर वह काम समझ ले। उस मुताबिक काम करेगा तो उसे पैसे भी दिए जाएंगे। तुम समझते हो कैसे

पास कुछ भी नहीं है, एक दुलाल साहा के पास ही पैसा है ? कितने रुपये चाहिए तुम्हें ?"

शायद और कुछ देर मालिक की डांट-डपट सुननी पड़ती, लेकिन उससे पहले ही ऊपर से उनका बुलावा आ गया। हरतन दादा को बुला रही हैं, बंकू से सुनते ही मालिक रुक गए।

फिर और नहीं रुके। आजकल 'हरतन-हरतन' करके जैसे पागल हो गए हैं। हरतन का नाम सुनते ही दिमाग ठीक नहीं रहता, सीधे ऊपर चले गए।

तो वही हुआ। राजमिस्तरी पहले ही लगा था। बीस-पच्चीस हजार रुपयों का काम था। दिन-रात काम करना था।

मालिक ने कह दिया था, "पन्द्रह दिन के अंदर काम पूरा होना चाहिए, समझे ?"

"जी, पूरा नहीं तो अन्दर का काम पन्द्रह दिन में हो जाएगा।"

"और बाहर का ?"

"बाहर के लिए यही कोई एक महीना और समझ लीजिए।"

"एक महीना लगाने से तो नहीं चलेगा भाई, हरतन बिटिया इतने दिन बाद आई है, उसपर बीमार भी है। उसकी बीमारी अब ठीक होने को है, घर की मरम्मत इस बीच पूरी नहीं हुई तो बिटिया रहेगी कहां ? इस बीमारी के बाद इस धूल-धक्कड़ में वह कैसे रह सकती है भला ? तुम्हीं कहो, रह सकती है ?"

तो यही तय हुआ। देरी करने से मालिक का काम नहीं चलेगा। मालिक का भले ही चल जाए, हरतन का काम किसी तरह नहीं चलेगा। हरतन तो करीब-करीब ठीक हो ही चली है। दस एक दिन में बिलकुल ठीक हो जाएगी। वैसे बुखार अभी है। लेकिन बुखार तो कुछ दिन रहेगा ही! इतने दिन क्या कोई दवा-दारू पड़ी है पेट में ? चंडी बाबू क्या फल-दूध खिला पाया है ? वह बेचारा इतनी महंगी दवाएं खिलाता भी कहां से ? इसके अलावा उसे पड़ी भी क्या है इतना पैसा खर्च करने की ? वह यात्रा-थियेटर का आदमी ठहरा। उसका यह पेशा है। देखो न,

बेचारी लड़की को बिना खिलाए-पिलाए कहां-कहां घुमाया है ! कहां जोरहाट, डिब्रूगढ़, कूचबिहार, बांकुड़ा, मेदनीपुर तो फिर वर्द्धमान। एक जगह टिककर बैठने को नहीं मिला। कभी दो दिन आराम करने को नहीं मिला। समय से कभी खाने तक को नहीं मिला बिटिया को। रात-रात भर जागकर गाया है और शरीर के बारह बजाए हैं।

"फिर भी इसे भगवान की दया ही कहनी होगी बिटिया, नहीं तो पूरे पन्द्रह साल बाद तुम्हें कैसे खोज पाया, वह साधु ही कहां से आ गया तुम्हारी जन्म-पत्री देखने के लिए ? भगवान बड़े दयालु हैं···"

बड़ी बहूजी ने उसी रोज पहले-पहल देखा था, जिस रोज हरतन किशनगंज आई थी। स्टेशन पर गाड़ी तैयार थी। हजारों की भीड़ थी।

"देखो, अच्छी तरह से देख लो, पहचान पड़ रही है ?"

घर आने के बाद तो मालिक किसीको अन्दर आने ही नहीं दे रहे थे। बीमार लड़की, ऊपर से इतनी भीड़। गाड़ी से उतारने के बाद गोद में उठाकर ऊपर दो-मंजिले पर लाना पड़ा। हरतन बुरी तरह कमजोर हो गई थी। निवारण सरकार ने एक ओर से पकड़ा था और दूसरी ओर से बकू ने पकड़ा।

कलकत्ते से बकू भी साथ आया था। अच्छा ही हुआ, साथ में एक जवान लड़का रहने से काफी सुविधा रहती है। देखने-सुनने के लिए भी तो आदमी की जरूरत रहती है।

"यह कौन है ?"

बड़ी बहूजी नया चेहरा देखकर पहचान न पाईं।

मालिक ने कहा, "इससे संकोच करने की जरूरत नहीं है तुम्हें, यह इन लोगों की नाटक-पार्टी में ही एक्टिंग करता था।"

बकू ने भी मौका देख फटाक से बड़ी बहूजी के पांव छूकर माथे से हाथ छुआ लिए।

"जी, हरतन के बीमार होने के बाद से हरतन की जगह 'रूपकुमारी' का पार्ट मैं ही करता हूं, मुझे आप अपना पोता ही समझें।"

लेकिन तभी मालिक बोल उठे, "अच्छा, चलो-चलो, ये सब बातें बाद में करना, पहले चलकर पोती को देखो। बाहर भी भीड़ जमा हो

गई है, अभी सब लोग देखने आएंगे।"

हरतन को बिस्तरे पर लिटा दिया गया था। शरीर में दम ही नहीं रहा है। लड़की के अच्छी दवा जैसी कोई चीज़ पेट में नहीं पड़ी। चित-पुर की एक अंधेरी कोठरी से उठा लाए हैं। चंडी अधिकारी ने और तो और, कभी एक ढंग की साड़ी तक नहीं दी पहनने के लिए। सिर में लगाने के लिए तेल या बदन के लिए एक साबुन तक नहीं दिया। हरतन के घने बालों में जटा पड़ गई थी। जटाओं के बीच से ही एक मासूम-सा गोरा चेहरा और उसमें गहरी काली-काली दो आंखें।

"तुम कहा करती थीं, लड़की के कैसे लम्बे-लम्बे बाल हैं, उन बालों का क्या हाल हो गया है, देख लो। ज़रा-सा तेल भी अगर पड़ा होता कभी तो बात थी।"

"देखो, क्या हाल कर दिया है लड़की का, एक-एक हाड़ निकल आया है, दिन-रात मेहनत करा-कराकर शरीर के बारह बजा दिए हैं।"

बंकू पास ही खड़ा था।

उसने कहा, "अजी, चंडी बाबू तो खाना तक नहीं देते थे ठीक से। खाली खेसारी की दाल और भात खाकर दिन काटे हैं हम लोगों ने, कभी कभी आलू-भात मिल जाता था, बस···"

"खेसारी दाल! खेसारी की दाल खिलाई है मेरी बिटिया को? यह बात पहले क्यों नहीं बतलाई?' "

"खेसारी दाल ही होती तो भी कोई बात थी। अरे भात का मांड़ मिलाकर दाल बढ़ाई जाती थी। चंडी बाबू क्या कम कंजूस हैं? इसपर हम लोग अगर कुछ कहने जाएं तो कहते, 'बड़े ज़मींदार के नाती हो न कि खेसारी की दाल गले नहीं उतरती?"

मालिक का पारा चढ़ गया। फिर बोले, "तो यह बात है! खेसारी की दाल खिला-खिलाकर लड़की का यह हाल कर दिया है! अरे, मूंग की दाल ऐसी क्या महंगी है, मूंग की दाल नहीं खिला सकता था?"

"मूंग की दाल खिलाएंगे चंडी बाबू! मूंग की दाल का भाव मालूम है आपको?"

मालिक कहते, "अरे, भाव पहले है या शरीर पहले है ? अब दवा के लिए इतना पैसा बहाना पड़ रहा है या नहीं ? अब खाओ खेसारी दाल, कितनी खाओगे ! मैं भी तुम लोगों को खेसारी दाल ही खिलाऊंगा, खाओगे ?"

बंकू ने कहा, "न बाबा, खेसारी दाल को हाथ नहीं लगाऊंगा इस जिन्दगी में। बहुत सीख हो गई है।"

मानिक बोले, "मालूम है, छुटपन में हरतन ने रोज एक सेर दूध पिया है ! घर में कितनी गायें थी।"

"दूध की बात सुनकर याद आया, करीब उन्नीस-बीस साल पहले जिस बार क्वार के महीने में बड़े जोर का अंधड़ आया था, जोरहाट के जमींदार के घर दूध पिया था, फिर और दूध की शक्ल नहीं देखी।"

मालिक बोले, "जो चीज शरीर के लिए अच्छी है, तुम लोग वह तो खाओगे नहीं; कहां-कहां से सब खेसारी दाल, तेल के पकौड़े वगैरह ऊंट-पटांग खाते फिरोगे।"

"जी हां, हम लोगों ने पकौड़े बहुत खाए हैं। हरतन को भी आलू चॉप और पकौड़े बहुत भाते थे।"

"सो ही तो कहूं ! तो वही सब खाकर शरीर का यह हाल किया है ?"

इसके बाद निवारण की ओर देखकर बोले, "सुनो निवारण, आज से इस घर की चौहद्दी के अंदर पकौड़े-वकौड़े नहीं घुसेंगे, समझे ? इस घर में पकौड़े देखे तो वह दिन तुम्हारा ही होगा या मेरा ही होगा।"

निवारण ने सिर खुजलाते हुए कहा, "जी, मेरा क्या माथा खराब हुआ है जो रोगी को लाकर पकौड़े खिलाऊंगा ?"

मानिक ने कहा, "अरे मैं अभी की बात थोड़े ही कर रहा हूं। रोग तो दो-चार दिन में ठीक हो ही जाएगा। लेकिन ठीक होने के बाद हरतन चुपके-चुपके तुमसे पकौड़े-चॉप मंगाकर खाएगी। वह सब नहीं चलने का, समझे ?"

"जी नहीं, ऐसा कैसे कर सकता हूं मैं ?"

"नहीं, मैं कहे देता हूं, वह सब नहीं चलने का। यह मेरा हुकुम है। मैं जो-जो लाने को कहूंगा, सिर्फ वही लाओगे तुम।"

"जी, वही लाऊंगा।"

...मी नहीं ... -महंगे से महंगे खरीदेगा, पहनेगा, खूबा, ...
है। यहीं कैसे अंगूर, अनार, [illegible] बादाम, सेब, ... आदि ...
...कैसे..."
... "अरे तो बहुत महंगे हैं।"
...यह होगा, ... इसीलिए ... खरीदते हो, इतना
... खाना हो जाए। महंगे हैं ... लेकर ... ? खूब भी
... ? सेब खाए, ... की खून-बढ़ता है। खूब भी सेब, अनार
... खाओ, ... ? ... शरीर की ... खाओगे, समझे ?"
... बड़ी बहू जी ... की ओर ... गई। बड़ी बहू जी
... की ओर ... उनकी ...
... फिर ... रही थी और ...
... के पास ... पर ... ? ... रही हो ? ... इतने
... आंसू ... रहे थे।
... ? ... रही हो ... बहू ? ... रही हो ? ... और ... से
... ? ... चाहिए और ... आंसू ...
फिर ... आई थी, ... हो ... नहीं होगा ? आंसू ...
रही थी। ... के ... का ...
... हो।"
... बहू जी और ... पाई ... को। ... के ... से ... अपना
... और ... की ... से ... नहीं। ... के ... आगे ... का ... चुपका
... लिया। ... उसकी ... जाती नहीं। ... की ... पर ...
... गया। ... की ... भी ... नहीं ... हैं। आज ... कि ... ने ...
... आंसू नहीं ... हैं ... से बहे थे।
आंसू ... और ... , ... पहचान पा रही हो या नहीं ?"
... से ... की, ... को ... के सिर पर फिर से ...
बड़ी बहू जी ... के आंचल ... देखने लगी ... को।
... लगी। फिर ... की ... को ... पहचानोगी। ...
... थी, ... को ... हो। ...
... है, ... हो। ... की ... पूरी ...
... खाओ। ... की ... खाना खिलाओ। ... की ... नहीं है।
... । ... पैसे की फिक्र करने की जरूरत नहीं है।
पैसा तो ... , ... हूं ... हो गई है, पैसा भी आप ही ...
... एक बार ... ही ...

वह चमार का बच्चा दुलाल साहा बहुत फूलने लगा था, सोचता था कि हमेशा यही हाल रहेगा मेरा। अरे, बच्चू, तुझे मालूम नहीं है कि मुर्गी के पेट में चर्बी होने पर उसका रास्ता मुल्लाजी के दरवाजे होकर ही निकलता है। तुझे भी एक दिन इस मुल्ला के दरवाजे ही आना पड़ेगा, कहे देता हूं।"

तभी अचानक सीढ़ी की ओर नजर जाते ही बोले, "कौन? अरे वहां कौन लोग हैं?"

निवारण सरकार ने जवाब दिया, "जी, मछुआटोली के लोग आए हैं, हरतन बिटिया को देखना चाहते हैं।"

"ठीक है, देखना है देखें, लेकिन एक-एक करके आने को कहो। ज्यादा भीड़ न हो। अच्छा, बड़ी बहूजी, अब तुम यहां से हटो। अरे, पूरा गांव तुम्हारी पोती के लौटने पर खुशी मनाने आया है और तुम हो कि बैठी-बैठी रो रही हो! अरे अब तो तुम्हारे हंसने के दिन आए—तुम्हें तो हंसना चाहिए जी भरकर।"

हां, तो ठीक कलकत्ते से ही बिजली का मिस्तरी आया। मरम्मत का काम करीब-करीब पूरा हो चुका था। भट्टाचार्य-भवन अब जैसे पहचान में ही नहीं आ रहा था। सिर्फ कुछ लोग, जिनकी उम्र अस्सी-नब्बे साल हो आई थी, ठीक से पहचान पा रहे थे। मालिक के पिताजी के जमाने में भट्टाचार्य-भवन बिलकुल इसी तरह का था।

मालिक ने पूछा, "तुम लोग मेकर-मिस्तरी हो न?"

"जी हां, हमारी फर्म चौंतीस साल पुरानी है।"

निवारण सरकार साथ था।

उसने कहा, "लाटसाहब के यहां यही लोग काम करते हैं।"

"बड़ी अच्छी बात है।" मालिक ने कहा, "यह घर भी एक जमाने में लाटसाहब के भवन से बड़ा था। अब सत्तह हजार रुपये खर्च कर फिर से इसकी मरम्मत करवाई है। मेरी इच्छा है कि लाटसाहब के यहां जैसा बिजली का काम है, ठीक वैसा ही काम इस घर में भी हो।"

"आप जैसा चाहेंगे, सब हो जाएगा, एक बार सारी जगह दिखला दीजिए, कहां-कहां क्या होना है?"

"सरकार बाबू आपको सब दिखला देंगे। यह निवारण सरकार ही [मे]रा मैनेजर है। लाटसाहब के यहां जैसे मैनेजर होते हैं, वैसा ही। यही [स]ब समझा देंगे। खर्च वगैरह की बात भी यही ठीक करेंगे।"

"जी, बहुत अच्छा।"

"लेकिन देखो, पैसे के लिए काम खराब नहीं होना चाहिए। खर्च जो भी हो, काम पसन्द-माफिक होना चाहिए।"

"काम के लिए आप निश्चित रहें। हमारी फर्म का काम कभी खराब नहीं होता।"

निवारण उन लोगों को अन्दर दिखाने ले जा रहा था, अचानक बाहर गाड़ी की आवाज़ हुई। गाड़ी की आवाज सुनकर ही पता चल जाता है। गाड़ी किशनगंज में हैं ही कितनों के पास। एक दुलाल साहा की है, दूसरी सुकांत राय के ऑफिस की जीप गाड़ी है, इसके अलावा मजिस्ट्रेट साहब की, अगर वे कभी इस ओर आएं तो।

"कौन है? जिस-तिसको अंदर मत घुसा लेना। कहना, मैं व्यस्त हूं, समझे?"

लेकिन नहीं। दुलाल साहा ही आया है। सो भी अकेले नहीं, साथ में निताई बसाक है और है नई बहू।

दुलाल साहा का नाम सुनते ही मालिक जैसे सोच में पड़ गए।

बोले, "यह हरामी क्या करने आया है यहां?"

"क्या कहूं इन लोगों से?"

मालिक ने सोचकर कहा, "ठीक है, अन्दर बुला लो।"

कहकर मालिक आरामकुर्सी पर पांव लम्बे करके बैठ गए। बैठकर पांव पर पांव चढ़ा लिए। फिर प्रतीक्षा करने लगे।

सच में तीन जने ही अंदर आए। सबसे पहले दुलाल साहा, फिर निताई बसाक और पीछे-पीछे नई बहू।

मालिक पांव-पर-पांव चढ़ाए ही बैठे रहे। दुलाल साहा आकर सविनय खड़ा हो गया। निताई बसाक पीछे था। वह भी दुलाल के पास आकर खड़ा हो गया। नई बहू ने जल्दी सिर पर पल्लू ठीक कर मालिक के

पांव छूए।

"मैं आ नहीं पाई ताऊजी ! सुना है, हरतन आई है, कहां है ?"

मालिक बोले, "ऊपर है, जाकर देख लो।"

दुलाल साहा सामने पड़ी एक कुर्सी पर बैठा। निताई बसाक भी तख्त पर बैठ गया।

दुलाल साहा ने बात शुरू की, "हरतन अब कैसी है ?"

"ठीक है।"

कहकर मालिक चुप हो गए। बिजली-मिस्तरी भी एक ओर खड़े थे। उनकी ओर देखकर बोले, "देख क्या रहे हो आंखें फाड़े ? जाओ, मैनेजर बाबू के साथ जाकर काम समझ लो।"

इसके बाद दुलाल साहा की ओर घूमकर बोले, "हां तो, तुम लोगों के क्या समाचार हैं ?"

दुलाल साहा ने सिर झुकाए सविनय कहा, "आपके लौटने के बाद मैं एक बार भी नहीं आ पाया। हम लोग बड़ी मुसीबत में फंस गए हैं।"

"मुसीबत में ! और तुम ? तुम किस मुसीबत में फंस गए ?"

"जी मालिक, अब आपसे क्या कहूं, वह सदानंद था न, सदानंद को तो जानते ही होंगे, तो वही सदानंद अस्पताल से भाग गया है। इतने दिन उसे खिला-पिलाकर ठीक किया और आखिर में मुझे ही फंसा गया !"

मालिक ने बहुत दिनों से ठीक कर रखा था कि दुलाल के आने पर उसे क्या-क्या सुनाएंगे। कौन-सी बात किस तरह कहेंगे। इतने दिनों तक हुए अपने अपमान के बदले के लिए जैसे भरे बैठे थे। लेकिन दुलाल साहा भी शायद तैयार होकर ही आया था। वह भी जानता था कि उसे क्या-क्या सुनना पड़ेगा, मालिक उससे क्या-क्या कहेंगे।

"हालांकि मालिक, देखिए, इस किशनगंज में मुझे आपकी दया से ही सिर छुपाने के लिए ठिकाना मिला है। आपने जमीन दी तभी मुझ जैसा नगण्य आदमी आज किसी तरह अपने पैरों पर खड़ा है, नहीं तो मुझ जैसे आदमी की बिसात क्या थी !"

मालिक ने दुलाल साहा की ओर जरा गौर से देखा।

"तुम क्या मुझसे मज़ाक करने आए हो दुलाल ?"

दुलाल साहा ने जीभ काटते हुए कहा, "आपसे मज़ाक करने की त सोचते ही मेरी जीभ गिर जाए, मैं जाकर रौरव नरक में पड़ूं। हरि साक्षी रखकर कह रहा हूं, मालिक कि आज मैं आपसे छमा मांगने ाया हूं। यह निताई बैठा है, मैंने इससे कहा था, रुपया-पैसा सब हाथ ा मैल है। आपके आशीर्वाद से इन हाथों में बहुत कुछ आया-गया; लेकिन सच मानिए, उससे मन को शांति नहीं मिली। पत्नी कब की चली गई, एक लड़का है, उसका विवाह कर दिया। रोज सुबह नदी जाकर अपने हाथों झाड़ू से सीढ़ियां धोता हूं, लेकिन किसी भी तरह मन शांत नहीं होता। आप पुण्यवान हैं, पिछले जन्म में आपने अनेक पुण्य किए थे, जिसके फलस्वरूप आपको अपनी पोती वापस मिल गई, लेकिन मुझे क्या मिला ?"

"कहते क्या हो ! तुम्हें कुछ भी नहीं मिला ? तुम क्या थे और क्या हो गए हो ? मुझे ही लो, मैं भी क्या था और क्या रह गया हूं आज ?"

दुलाल साहा ने हठात् नीचे झुककर मालिक के पांव छूकर हाथ माथे से लगाया और फिर हाथ की उंगली जिह्वा से चाट ली, इसके बाद फिर इत्मीनान से बैठा।

फिर बोला, "आप ब्राह्मण हैं, कलयुग होने पर भी फनियर नाग फनियर नाग ही कहलाता है, अब आपसे किस बात की लज्जा मालिक मैंने निश्चय किया है कि संन्यास लेकर संसार-त्याग करूंगा।"

"कहते क्या हो ?"

दुलाल साहा ने कहा, "जी हां मालिक ! मैंने अनेक प्रकार से सं विचारकर देख लिया है, संसार में रहकर मन को ठीक प्रकार से में नहीं लगाया जा सकता। इसलिए संसार-त्याग करना ही उचित

"तुम्हारा लड़का ? तुम्हारी पुत्रवधू ? ये लोग ? इन लोगों क होगा ?"

"उनकी बात वे जानें मालिक, मैं कौन होता हूं ? मैं तो हूं। घर-परिवार के लिए बहुत किया है, लेकिन घर-परिवार व परलोक तो नहीं देखेंगे। अपने परलोक की बात तो मुझे ही सं

और तो कोई सोचेगा नही मेरी ओर से।"

मालिक इतने दिनों से दुलाल साहा को देख रहे हैं, फिर भी जैसे उलझन में पड़ गए। इतनी शान-शौकत, जमीन-जायदाद, घर, गाड़ी, व्यापार-धन्धा और अब यह शुगर मिल, सब कुछ छोड़कर दुलाल साह संन्यासी हो जाएगा? मालिक टकटकी बांधे दुलाल साहा की ओर देखते रहे। हमेशा की तरह वह नंगे बदन, नंगे पांव, हाथ में माला-झोली, माथे पर चंदन, यह सब क्या सत्य है? दुलाल साहा के बारे में उनकी अब तक की धारणा क्या गलत थी? झूठ थी? पेंपुलबेड़ के पास वाली आहर को लेकर इतनी मारपीट वह सब क्या स्वप्न था? असल में क्या दुलाल साहा भला आदमी है?

"आप आशीर्वाद करें मालिक, आपका आशीर्वाद फलेगा, आशीर्वाद करें कि अंत में हरिचरणो के दर्शन पाऊं।"

निताई बसाक अब तक चुप बैठा था।

अब उसने कहा, "आप जरा समझाइए मालिक, आपके कहने से शायद संसार में इनका मन टिक सकता है। आप समझाइए इन्हें।"

दुलाल साहा ने कहा, "नही मालिक, आपसे एक ही बिनती है, फिर से संसारी होने को न कहें। आशीर्वाद करें कि हंसते-हंसते संसार त्याग सकूं। इस आढ़त, शुगर मिल, किसीमे कोई रुचि नही है अब मुझे।"

मालिक ने कहा, "लेकिन तुम्हें अचानक यह सूझी क्या?"

"जी, अचानक तो नही हुआ। काफी दिन से गुरुदेव मुझे बुला रहे हैं कि दुलाल! मेरे पास चला आ—यहा आकर तुझे शांति मिलेगी।"

"लेकिन तुम्हें यह शांति आखिर क्यो नही मिल रही है?"

दुलाल साहा ने कहा, "रुपया-पैसा छूते ही जैसे मेरे हाथ जलने लगते हैं मालिक, क्या करूं, कुछ समझ मे नही आता।"

"तब तो डॉक्टर को दिखलाना चाहिए दुलाल, रुपये-पैसे से विराग तो अच्छी बात नही है! इस तरह तो तुम्हारी सम्पत्ति-कारोबार सब चौपट हो जाएगा।"

दुलाल साहा ने अजीब-सी मुसकान के साथ कहा, "मालिक, जिस तरह यह संसार मेरे लिए विष हो रहा है, यह सम्पत्ति भी उसी प्रकार

रही है।"

...लिक ने निताई बसाक की ओर घूमकर कहा, "तुम लोग डॉक्टर ... नहीं दिखलाते निताई ? रुपये विप लगना तो डर की बात है ... बाद में कहीं दुलाल सचमुच संन्यासी होकर चल दिया तो तुम ...मुश्किल में पड़ जाओगे।"

निताई बसाक ने कहा, "जी, डॉक्टर को दिखलाया है।"

"डॉक्टर ने क्या कहा ?"

"कहा कि बीमारी-ईमारी कुछ नहीं है, वहम है, अपने-आप ठीक हो ...एगा।"

"कौन-सा डॉक्टर ? कहां का ?"

"जी, यहां के रमेश डॉक्टर की बात नहीं कर रहा। कलकत्ते के डॉक्टर की बात कर रहा हूं, दुलाल को वहीं ले गया था। इसीलिए तो इस बीच आपसे मिलने भी नहीं आ पाए। आप पोती को लेकर किशनगंज लौटे, यह खबर सुनने के बाद भी आपके दर्शन नहीं कर पाए हम लोग— बड़ी उलझन में पड़ गए हैं हम लोग।"

मालिक भी इतने दिनों से यही बात सोच रहे थे। इतने लोग हर-तन को देखने आ रहे हैं, लेकिन दुलाल साहा तो एक बार भी नहीं आया, निताई बसाक भी नहीं आया, और तो और, नई बहू भी नहीं आई, जब कि उनकी गैरहाजिरी में नई बहू रोज एक बार आकर बड़ी बहूजी की खबर पूछ जाती थी। निवारण से उन्होंने सब कुछ सुना है। इतने दिन किसीसे कहा तो नहीं, लेकिन मन-ही-मन सोचा करते थे। आज इसकी वजह समझ में आई। मालिक मन-ही-मन खुश हो उठे। इसीको कहते हैं भाग्यचक्र। दुलाल साहा का भाग्य अब पड़ती पर है और उनका उठती पर। दुलाल साहा की जूट की आढ़त जाएगी। शुगर मिल जाएगी। औ... इधर उनके घर में फिर से चहल-पहल होगी, रौनक होगी। किशनगंज ... लोग आज जिस तरह दुलाल साहा के घर जाते हैं, उसी तरह उनके ... आएंगे।

मालिक ने कहा, "तुम्हारा महाजनी का कारोबार ? वह क... हो या बंद कर दिया ?"

दुलाल साहा ने कहा, "पुराना जो है, वही चल रहा है, नया कुछ नहीं कर रहा—मन नहीं चाहता।"

"खाना-पीना ? मांस-मछली खाते हो ?"

"वह सब तो दीक्षा लेते वक्त ही छोड़ दिया था। फिर और नहीं छुआ।"

"तब तो काफी मुश्किल हो जाएगी। क्या करोगे, कुछ सोचा है ?"

निताई बसाक ने कहा, "इसीलिए तो दुलाल को साथ लेकर आपके पास आया हूं मालिक, अब आप ही कुछ सलाह दें, इस बारे में।"

मालिक बोले, "इस बारे में मैं क्या सलाह दे सकता हूं ? इन सबके बारे में मैं कुछ समझता भी नहीं हूं ! इसके अलावा मेरे पास वक्त भी कहां है ? देखो न, हरतन आई है, पूरे घर की मरम्मत करानी पड़ी है, हजारों रुपये खर्च हो गए हैं। कलकत्ते से बिजली-मिस्तरियों को बुलवाया है, पता नहीं अब ये लोग कितना मांगेंगे ?"

निताई बसाक ने कहा, "रुपयों की जरूरत हो तो कहिए न, दुलाल के रुपये किस काम आएंगे ?"

दुलाल साहा ने भी कहा, "रुपया तो मेरे लिए मिट्टी के माफिक हो गया है। और चार लोग लूटकर खाएं, उससे तो अच्छा है कि आप ही के काम आए।"

मालिक ने एक बार दुलाल साहा और फिर निताई बसाक की ओर देखा। फिर बोले, "रुपये तो ले लूं लेकिन बाद में चुकाने भी तो मुझे ही पड़ेंगे, तब कहां से चुकाऊंगा ?"

दुलाल साहा के लिए यह सुन पाना भी मुश्किल था। फौरन दोनों कानों पर हाथ रखते हुए कहा, "मालिक, यह बात सुनना भी पाप है। मैंने पहले ही बहुतेरे पाप किए हैं, अब और पाप न कराए मुझसे। पेंपुल-बेड के पास वाली आहर, जिसे लेकर इतना झंझट हुआ है, आप वापस ले लें। मेरे जो रुपये गए सो गए, इनके अलावा जो नई शुगर मिल बैठाई है, वह भी आपके नाम लिख देता हूं। आप बस एक बार हाथ बढ़ाकर स्वीकार भर कर लें…"

दुलाल साहा पागल की तरह अनर्गल क्या-क्या सब बके जा रहा

जैसे सचमुच ही उसे वैराग्य हो गया हो ! सच में ही उसे अब तक पापों का प्रायश्चित्त हो रहा हो, यह भी क्या संभव है ! इस दुनिया [य]ह भी घटित हो सकता है ?

दुलाल साहा की बातें सुनकर मालिक गद्गद हो उठे। जय मां [च]ण्डिके ! जय बाबा विश्वनाथ ! तुम्हारे चरणों में बहुत बार अपना दुखड़ा रोया है। चुपचाप कितना रोया हूं। मन के दुःख को कोई कभी बाहर से नहीं समझ पाया। किसीने कान नहीं दिया। आज तुमने ही मेरी सुन ली।

मालिक के दोनों पांव थर-थर कांप रहे थे। दोनों हाथों से पांवों को दाबने की कोशिश कर रहे थे वह। उस रोज हावड़ा जूट मिल में पहुंच-कर भी ठीक ऐसा ही हुआ था, जिस रोज पहली बार हरतन का पता चला था। आज इतने रोज़ बाद जब वे सोच रहे थे कि हरतन की चिकित्सा किस प्रकार होगी, किस प्रकार यह घर फिर से प्रासाद होगा, ठीक तभी भाग्य की यह कैसी लीला है ! वही दुलाल आज उन्हें रुपये देने को तैयार है ! पंपुलबेड़ के पास वाली आहर वापस करने को तैयार है ! यह सब कौन करा रहा है ? यह किसकी लीला है ? इस लीला को देखने के लिए ही क्या वे अभी तक जीवित हैं ? तब क्या उनका लड़का सिद्धेश्वर भी वापस आएगा ? केदारेश्वर भट्टाचार्य का वंश धन-दौलत और मान-मर्यादा से दोबारा दमक उठेगा ? फिर पील-खाने में हाथी झूमेगा ? घुड़साल में घोड़े हिनहिनाएंगे ? घर के साम-वाले मैदान में फिर से दुर्गापूजा होगी ? मैदान में शामियाना बंधे-नाटक होगा, किशनगंज के लोग झुंड बनाकर नाटक देखने आएंगे ? वे चिल्लाकर कहेंगे—ए, चुप—और साथ-ही-साथ उनके गले की आ-सुनते ही सारा गोलमाल बंद हो जाएगा और खामोशी छा जाएगी ? उन्हें देखते ही पहले जैसा सड़क ऊपर ही साष्टांग प्रणाम करते थे से उसी तरह करेंगे ? और वे बड़ी उदारता से पूछेंगे, 'क्यों रे कैसा है ?'

जगा कहेगा, 'बस मालिक, दया है।'

'तेरे जमाई का क्या हाल है ? बड़े जमाई का ?'

'जी, मलेरिया हुआ है, ठीक ही नहीं हो रहा, तिल्ली बढ़ गई है।'

'तिल्ली बढ़ गई है, तो डाक्टर को दिखला।'

'मालिक, डाक्टर की दवा में तो बहुत पैसे लगेंगे।'

'तो क्या हुआ, तेरे पास पैसे नहीं ?'

निवारण सरकार पास ही होगा। मालिक निवारण से कहेंगे, 'निवारण, जगा को कल ही पचास रुपये दे देना।'

सिर्फ जगा ही क्यों, किशनगंज के सारे लोग सुबह से ही आकर उनके दरवाजे पर धरना देंगे; जैसे पहले दिया करते थे। मालिक की नींद टूटेगी और कब मालिक नीचे उतरकर उन लोगों को दर्शन देंगे, यही सोच-सोचकर वे लोग व्यग्र होते रहेंगे। उसके बाद तब से लेकर शाम होने तक, घर लोग-बागों से भरा रहेगा। सदर से एस०डी०ओ० आएगा मालिक से मिलने। मालिक उससे नहीं मिल पाएंगे। मालिक के पास उससे मिलने के लिए वक्त ही नहीं होगा। एस०डी०ओ० हो या मिनिस्टर हो, मालिक क्या कम हैं किसीसे ? दुलाल साहा ने जिस तरह मिनिस्टर को बुलाकर घर के सामने मीटिंग की, जरूरत होने पर वे भी करेंगे। मिनिस्टर के साथ फोटो खिचवाएंगे। वह फोटो फिर कलकत्ते के अखबारों में छपेगा। वैसे आजकल रायसाहब और रायबहादुर की पदवी तो खत्म हो गई है, उसकी जगह अब पद्मश्री और भारत-रत्न की उपाधि मिलती है। जी चाहा तो उसीमें से कुछ ले लेंगे। किशनगंज में कोई नया आदमी आएगा तो इस भट्टाचार्य-भवन के सामने आकर पूछेगा, 'यह किसका मकान है भाई ?'

पासवाला आदमी जवाब देगा, 'कीर्तिश्वर भट्टाचार्यजी का।'

'कीर्तिश्वर भट्टाचार्य कौन ?'

'अरे, आपने कीर्तिश्वर भट्टाचार्यजी का नाम नहीं सुना ? इन्हींके पुरखे गौड़ेश्वर के राजपुरोहित थे। रोज हाथी की पीठ पर चढ़कर राजमहल जाते थे कुलदेवता की पूजा करने। हर रोज पूरे एक सौ आठ कमल के फूलों से पूजन होता था। भारत सरकार ने इन्हींको तो इस बार भारत-रत्न की उपाधि से विभूषित किया है।'

और हरतन ?

रतन दौड़ते हुए आकर कहेगी, 'दादा...'

मालिक कहेंगे, 'बिटिया, क्या कहती है ?'

'मेरे लिए एक गाड़ी खरीद दो दादा, मैं गाड़ी चलाऊंगी।'

अब हाथी वाला जमाना नहीं रहा। अब गाड़ी का जमाना है। एक ड़ी भी होनी चाहिए। हरतन के लिए बड़ी-सी गाड़ी खरीदनी ही ड़ेगी। किशनगंज की सड़क अब पक्की हो गई है। बस चलती है। स्टेशन मूड़ोगाछा तक बस चल गई है। हरतन के पास गाड़ी में मालिक बैठे हैं। दूर पंपुलबेड़ के पासवाली आहर पर शुगर मिल की चिमनी दिखलाई दे रही है। उसमें से धुआं निकल रहा है। एक बार वहां जाकर उतरेंगे। सब लोग जिस तरह दुलाल साहा को सलाम करते हैं, उन्हें भी करेंगे।

'क्या खबर है दरवान, सब ठीक तो है ?'

दरवान कहेगा, 'जी हजूर, सब ठीक है।'

मैनेजर सामने खड़ा होगा, उससे पूछेंगे, 'काम-काज ठीक तो हो रहा है मैनेजर ?'

'जी, सब बिलकुल ठीक चल रहा।'

इसी तरह दो-एक बातें। मिल तो एक बार रोज ही जाना पड़ेगा। बगैर खुद नजर रखे काम ठीक नहीं होता। वे खुद जाएंगे और साथ में हरतन जाएगी। इसके बाद सीधे दनदनाते मछुआटोली चले जाएंगे। किसी-किसी रोज एकदम मूड़ोगाछा तक। मूड़ोगाछा के बाद श्रीनाथपुर। श्रीनाथपुर के बाद फतेहाबाद। फिर नदी है। इच्छामती वहां पर दक्षिण की ओर घूम गई है। वहां खड़े होकर देखने पर चा ओर कांसे से भरा मैदान नजर आएगा। जमीन पर कांसे से भरा मैद और सिर पर आसमान। आसमान के बाद...

''मालिक !''

अचानक ध्यान टूटा। इधर-उधर देखा, कोई भी नहीं था। साहा और निताई पता नहीं कब चले गए। सामने सिर्फ निवारण था और साथ में बिजली-मिस्तरी।

मालिक ने पूछा, ''दुलाल साहा कब गया ?''

''जी, वे लोग तो कब के चले गए। नई बहू आई थी

बिटिया को देखने, वह भी चली गई।

"लेकिन बगैर कुछ कहे-सुने चले गए ?"

"जी, आपसे कहकर ही तो गए हैं। जाते वक्त आपके पांव भी छुए।"

"अच्छा ! मुझे मालूम तक न हुआ ?"

कहकर मन-ही-मन सोचने लगे। तब क्या दुलाल साहा ने जो कुछ कहा, वह स्वप्न था ?

"जी, मिस्तरी कह रहे हैं कि वे लोग एस्टीमेट भेज देंगे, काम देख लिया है। हम लोगों के 'हां' करने पर काम शुरू करेंगे। इन लोगों का खयाल है कि मोटे तौर पर करीब दस हजार खर्चा आएगा।"

मानिक ने कहा, "ठीक है, दस हजार खर्च हो या बीस हजार। काम अच्छा होना चाहिए। रुपयों के लिए काम खराब नहीं होना चाहिए।"

मिस्तरी और भी न जाने क्या-क्या कहते रहे। वह सब मानिक को अच्छा नहीं लग रहा था। प्रणाम करके उन लोगों के जाते ही मानिक ने निवारण से कहा, "निवारण, सुनो।"

निवारण पास आया।

मानिक ने कहा, "निवारण, दुलाल साहा जो कह रहा था, तुमने सुना कुछ ?"

"सुना, हम लोगों से भी कहा है..."

"तुमसे भी कहा है ? क्या कहा है ?"

"जी, कहा है कि वे सन्यासी होकर चले जा रहे हैं। वेपुलबेड़ के पासवाली आहर भी हम लोगों को वापस कर देंगे। और भी बहुत कुछ कह रहे थे।"

"तुम्हें यकीन होता है उनकी बातों पर ?"

"जी, आप ही की दया पर तो पनपे हैं। लगता है इन्होंने धर्मभय जागा है। नई बहू तो एक गहना देकर हरतन बिटिया को देख गई।"

"गहना ! किस चीज का गहना ? सोने का ?"

"जी हां, सोने का। एक जोड़ी सोने का कंगन। मैंने हाथ में लेकर देखा है, वजन में आठ तोले की होगी। काफी वजनी हैं।"

लो, ज़रा देखूं तो ।"
हकर मालिक उठे । फिर पूछा, "वंकू कहां है ?"
"हरतन के पास ही है ।"
मालिक ने चलते-चलते कहा, "हरतन की दवा आई ?"
"जी, दवा तो कल ही ले आया ।"
"दवा खिलाई ?"
"जी, दवा तो वंकू ही खिलाता है, मेरे हाथ से तो विटिया खाना ही
ही चाहती । वड़ी वहूजी के हाथ से भी नहीं खाती, सिर्फ वंकू के हाथ
ही खाती है ।"
"और फल ? अंगूर, अनार, सेव—सव लाए हो तो ? वह सव कौन
खिलाता है ?"
"सव वंकू ही खिलाता है, और किसीकी वात विटिया नहीं सुनती,
वंकू ही दिन-रात पास वना रहता है । वही सव करता है ।"
वात ठीक भी है । किशनगंज आने के वाद से ही वंकू ने हरतन की
सेवा का भार जो लिया है तो वह अभी भी वरकरार है । नाटक-कंपनी
का लड़का, नौकरी-चाकरी छोड़ यहां आकर टिका तो वापस जा ही न
पाया ।
मालिक ने कहा भी, "तुम्हारी नौकरी तो नहीं चली जाएगी
भाई ?"
वंकू ने कहा था, "हरतन के ठीक होते ही चला जाऊंगा । दो-चार
रोज़ की ही तो वात है । ज़रा चलने-फिरने लगे ।"
मालिक ने कहा, "भगवान से यही कामना करो, तुम्हें भी छुट्टी
मिले और हरतन भी छुटकारा पाए ।"
तो वंकू तव से यहीं रह गया । सुवह उठते ही जाकर हरतन के पा
वैठता है तो फिर उसे छुट्टी नहीं मिलती । हरतन का मुंह धुलाना, द
साफ कराना, उसे दवा देना, फलों के छिलके उतारकर खिना देना, अ
कुछ नहीं तो ताड़ का पंखा लिए वैठे-वैठे झलते रहना ।
चेहरा झुकाकर कभी-कभी पूछता है, "अव कैसा लग रहा है ?"
हरतन जागती होने पर उत्तर देती है, नहीं तो कुछ नहीं ।

कभी-कभी हरतन ही कहती है, "बंकू दा···"

बंकू फौरन चेहरा झुकाकर कहता, "कुछ कह रही थीं ?"

हरतन कहती, "हम लोग कहां थे और कहां आ पहुंचे ?"

बंकू कहता, "मैं तो हमेशा से ही कहता आया हूं, तुम राजरानी होओगी।"

हरतन के चेहरे पर फीकी मुसकान सिमट आती, "लेकिन मुझे तो मालूम ही न था कि मैं सचमुच राजकुमारी हूं।"

"अच्छा ही तो हुआ।"

बंकू और भी जोर-जोर से पंखा झलने लगता। कहता, "अच्छा ही है। तुम्हारा अच्छा हो, मुझे तो इसीमें सुख है।"

"मैं जब ठीक हो जाऊंगी तो तुम क्या करोगे ?"

बंकू कहता, "चला जाऊंगा चंडी बाबू के दल में। मूछें साफ कराकर फिर से 'रानी रूपकुमारी' बनकर महफिल में उतर पड़ूंगा—फिर गाऊंगा :

कहां जाऊं, कहां जाऊं, मैं अबला नारी
कौन यहां अपना,
कहां पाऊं शरण हे अन्तर्यामी···"

गाकर बंकू हंसता है, हरतन भी हंसने लगती है।

बंकू बोला, "लोग अगर आवाजें कसने लगे तो चंडी बाबू की गाली खानी पड़ेगी। पहले गाली खाने पर तुम्हें देखते ही सब हजम हो जाता था। अब तुम तो रहोगी नहीं, फकीरे के पास जाकर चिलम में दम लगाना पड़ेगा।"

हरतन कहती, "तुम यह चिलम फूंकना छोड़ दोगे, समझे ? तम्बाकू से सुना है, हृदय-रोग हो जाता है।"

बंकू बोला, "जो होना है, हो। मेरा हृदय-रोग होने से किसीका क्या बिगड़ता है ? चड़ी बाबू न होंगे नया लड़का ढूंढ़ लेंगे। और किसी-का तो नुकसान होना नहीं है।"

हरतन कहती, "लेकिन हृदय-रोग क्या अच्छी बात है ! तुम्हींको तो तकलीफ होगी। पड़े-पड़े फिर तुम्हीं भोगोगे।"

वंकू कहता, "इन फालतू की वातों को लेकर तुम्हें दिमाग खराव करने की जरूरत नहीं है, थोड़ी देर सो लो तुम।"

ज़रा रुककर हरतन फिर वोली, "अच्छा वंकू दा, मैं राजकुमारी हो गई, इसी तरह अगर तुम भी हठात् राजकुमार हो जाओ तो कैसा रहे ?"

वंकू हंसता, "हां, तव तो वाकई वड़ा मजा रहे ! लेकिन मेरी सूरत तो वंदर जैसी है, राजकुमार होकर भी वात जमेगी नहीं।"

हरतन कहती, "मेरी सूरत पर नजर है न। लेकिन देख लेना, मेरी वीमारी ठीक नहीं होगी—नहीं होगी…"

वंकू ने हाथ से उसका मुंह वंद करते हुए कहा, "देखता हूं, तुम्हारी जवान पर कुछ भी नहीं अटकता ?"

हरतन चिढ़ जाती, कहती, "फिर हाथ लगाया मुझे ?"

"हजार वार लगाऊंगा, तुम वार-वार ऊटपटांग वकोगी ?"

"लेकिन मुझे छूत की वीमारी है, मुझे वार-वार इस तरह छूना क्या ठीक है ? मेरी देख-रेख न हुआ, तुम कर रहे हो; लेकिन अगर तुम्हें कुछ हो गया, तव कौन देखेगा ? तुम्हारा है ही कौन ? तुम्हें कुछ हुआ तो चंडी वावू तुम्हें सीधे कूड़े में फेंक देंगे, समझे…"

वंकू चिढ़कर कहता, "मेरे लिए तुम्हें फिजूल परेशान होने की जरूरत नहीं है राजकुमारीजी, अभी फिलहाल अपनी चिंता करो।"

सुनकर हरतन के चेहरे पर फिर वही फीकी मुसकान सिमट आती। कहती, "मेरी देखभाल करनेवालों की कहां कमी है ? देखते नहीं, सुवह से शाम तक कितने लोग आते हैं मुझे देखने, किस तरह आशीर्वाद करते हैं ! कितने स्नेह के साथ वातें करते हैं ! पहले कभी मुझसे की है किसीने इस तरह स्नेहभरी वातें ?"

वंकू कहता, "की नहीं हैं ?"

"किसने की हैं, कहो न ?"

"क्यों, मैंने नहीं की ? मैंने…"

अचानक पैरों की आहट सुनकर दोनों चौंक उठे। नई वहू को लिए वड़ी वहूजी उसी कमरे में आ रही थीं। वंकू ने देखा, हरतन ने देखा, वड़ी वहूजी के साथ एक वहू कमरे में आई। कीमती कपड़े, सोने के भारी

गहने पहने नई बहू कमरे में बंकू को देखकर जरा सकुचा गई। माथे को पल्लू से ढंकते हुए उससे पूछा, "ये कौन हैं ताईजी ?"

बड़ी बहूजी ने कहा, "हरतन अभी तक इन्हीं लोगों के साथ तो थी। बीमारी की वजह से यहां है। हरतन के ठीक होते ही चला जाएगा।"

बंकू जरा हटकर खड़ा हो गया था। नई बहू हरतन के पास आई। इसके बाद कागज में बंधा एक पैकेट हरतन के हाथ में देकर बोली, "यह तुम्हारे लिए है, बाबा ने तुम्हारे लिए भिजवाया है।"

हरतन टकटकी बांधे कुछ देर देखती रही नई बहू की ओर।

असल में दुलाल साहा की बातों पर यकीन करना मानिक को अच्छा ही लग रहा था। जिस प्रकार मृत्यु से बड़ा कोई सत्य नहीं है, ठीक उसी प्रकार जीवन भी मिथ्या नहीं है, यह भी एक बड़ा भारी सत्य है। और इस सत्य की सम्पूर्ण अनुभूति हासिल करने के लिए अर्थ का प्रयोजन भी अनिवार्य है। जीवन अनित्य और क्षणभंगुर है, यह बात मानिक की तरह ही दुलाल साहा को भी मालूम थी, जिस प्रकार दुनिया के और भी हजारों लोगों को मालूम है। लेकिन अर्थाभाव में वह अनित्य वस्तु ही घोरतम अनित्य हो उठती है, इस बात को मानिक से अधिक मर्मान्तिक भाव से शायद और किसीने नहीं भोगा है। इसीलिए दुलाल साहा के इस हठात् परिवर्तन से वे जैसे विचलित हो उठे।

महीने के अंदर ही भट्टाचार्य-भवन का नव-कलेवर हो गया। दीवारों पर फिर से रंगाई हुई। हर कमरे में बिजली के झाड और पंखों की फिटिंग हुई। लोग-बाग हैरत-भरी नजर से देखते और कहते, "वाह !"

अंदर आकर मालिक के पैरों की धूल लेते। मानिक भी किसीको आते देखकर पांव आगे बढ़ाकर आशीर्वाद करने के लिए हाथ उठा देते।

लोग पूछते, "बिटिया अब कैसी है मानिक ?"

मानिक कहते, "करीब-करीब ठीक हो ही गई है, कुछ ही रोज में चलने-फिरने लगेगी।"

सुबह से ही आनेवालों का तांता लग जाता। लोग आते, मानिक को

प्रणाम करते और फिर उनके सामने बैठकर चुपचाप उनकी बातें सुनते; जैसे अब तक दुलाल साहा की बातें सुनते थे।

मालिक कहते, "धर्म नाम की चीज अभी है, समझे कालीपद, इस कलियुग में भी धर्म है, भगवान है, पाप है, पुण्य है—सब कुछ है। हम लोग देख नहीं पाते, यही मुश्किल है।"

जरा रुककर फिर कहते, "मनुष्य अंधा है, मनुष्य मायामोह में जकड़ा हुआ बैठा है, इसीलिए कुछ भी नहीं देख पाता। नहीं तो तुम लोग खुद ही देख रहे हो।"

लोग कहते, "जी हां, सो तो है ही।"

मालिक कहते, "आंख और कान खुले रखो, और भी बहुत देख पाओगे।"

"क्या देख पाएंगे मालिक ?"

"देखोगे, किस तरह पुण्य की जय और पाप की पराजय होती है। जीवन में मैंने कोई पाप नहीं किया। किसीको नुकसान नहीं पहुंचाया। स्वप्न में भी किसीका बुरा नहीं सोचा। तुम लोग तो जानते ही हो। दूसरों का हमेशा भला ही चाहा है मैंने—ठीक कह रहा हूं न ?"

"जी हां, आपने हमेशा दूसरों का भला चाहा है।"

"मेरा तो आज भी वही हाल है। हर किसीका भला हो, यही इच्छा है मेरी। इसीलिए तो आज इतने दिन बाद भी मेरी पोती आ गई है। नये सिरे से घर की मरम्मत हुई है। बिजली का यह झाड़ देख रहे हो ? ऐसा ही झाड़ कलकत्ते में लाटसाहब के यहां भी है। कलकत्ते के मिस्तरी ने ही पूरा काम किया है।"

"जी, खर्चा कितना आया ?"

मालिक मंद-मंद मुसकराते, कहते, "तुम लोग ही अंदाजा लगाकर कहो ?"

गांव के सीधे-सादे लोग थे बेचारे। जिंदगी में कभी यह सब देखा नहीं था। चारों ओर अच्छी तरह देखकर बोले, "जी, पांच-छः सौ तो लग ही गए होंगे।"

मालिक को उन लोगों के भोलेपन पर हंसी आ गई। उन्होंने कहा,

"इस निवारण से पूछो।"

निवारण पास ही खड़ा था।

"कितना खर्च पड़ा होगा सरकार बाबू ?"

"पचपन हज़ार रुपये।"

मानिक कहते, "तिसपर भी अभी कुछ नहीं हुआ। हरतन के लिए नई मोटर खरीदनी है। उसमें भी चौदह हज़ार लग जाएंगे। इसके अलावा पेंपुलचेड़ के पास वाली वह प्राइर भी खरीद रहा हूं।"

"वहां तो साहाजी ने चीनी मिल बैठाई है।"

"चीनी मिल भी खरीद लेने की सोच रहा हूं।"

सुनकर सब ताज्जुब में पड़ जाते। मुंह से कोई कुछ नहीं बोलता। थोड़ी देर बाद सिर्फ कहते, "सब भगवान की दया है मालिक, सब भगवान की दया है।"

मानिक और भी जोश में आ जाते। कहते, "यही तो कह रहा था इतने दिन से—अरे, धर्म भी है, भगवान भी है। कलियुग बोलकर सब कुछ मिथ्या थोड़े ही हो गया। कलियुग में भी भगवान है, इसका प्रमाण खुद मैंने पाया है।"

बात और आगे न बढ़ पाई। बकू कलकत्ता गया था डॉक्टर लाने, उसके आते ही महफिल पूरी हो गई। सामान्यतः कलकत्ते का कोई डॉक्टर किशनगंज जैसे देहात में नहीं आना चाहता। नामी-नामी सभी डॉक्टरों ने नर्सिंग होम और अस्पताल बना रखे हैं। आकर मरीज देखते है और जरूरत होने पर उन्हें अस्पताल भेज देते हैं। निवारण खुद दो बार जाकर खाली हाथ वापस लौट चुका है।

बकू ने कहा था, "मालिक, मैं जाऊंगा, जैसे भी हो, डॉक्टर को लेकर आऊंगा।"

ठीक है, बकू ही चला जाए। हर डॉक्टर यही कहता है कि हरतन को कलकत्ते के अस्पताल में भर्ती कराया जाए। इस बीमारी का इलाज घर में नहीं होता। खास कर ऐसे देहात में। दवा कलकत्ते से आ जाएगी, लेकिन इंजेक्शन देने के लिए तो कोई चाहिए था। वह इंतजाम भी हुआ। हरिसाधन सामन्त ने डॉक्टरी पास करके हाल ही में किशनगंज बाजार

दुकान खोली है। वही आकर कलकत्ते के डॉक्टर की हिदायत के
ाबित इंजेक्शन दे जाता था।

मालिक पूछते, "तुम्हें क्या लग रहा है हरिसाधन ?"

हरिसाधन कहता, "जी, आप फिक्र न करें, बिलकुल ठीक हो जाएंगी
आपकी बिटिया।"

मालिक नर्म हो जाते, कहते, "अरे, अच्छी तो हो जाएगी, वह क्या
नहीं जानता हूं मैं ? तुम क्या बताओगे इस बारे में, मैंने कभी कोई
पाप नहीं किया। किसीका बुरा नहीं चाहा, बिटिया अच्छी होगी क्यों
नहीं ?"

सबसे ज़्यादा मुश्किल में पड़ा था बंकू। दोपहर के वक्त चढ़ी धूप में
एक बार डॉक्टर के पास दौड़ता। फिर आकर हरतन के पास बैठता।
उसे पंखे से हवा करता। सिर के ऊपर वैसे बिजली का पंखा सनसना
रहा होता। लेकिन पंखा वगैर झले जैसे बंकू को चैन नहीं पड़ता था।
उसे नहाने-खाने का भी खयाल न रहता।

"अरे, तुम खाना नहीं खाओगे ?"

बड़ी बहूजी बेचारी की अच्छी मुसीबत थी। मालिक सारे दिन हुक्म
करते फिरते और सरकार बाबू उस हुक्म की तामील करने में दौड़-भाग
करते। और बंकू को तो हरतन छोड़ और कुछ सूझता ही नहीं था।

लेकिन इन सबके खाने-पीने का इंतज़ाम तो बड़ी बहूजी को
देखना पड़ता था। पूरी गृहस्थी का बोझ उन्हींपर था। हरतन के लि
हरे नारियल का पानी, दूध-फल और पथ्य बड़ी बहूजी को छोड़
कौन देखता !

बंकू को भी बुलाकर खिलाना पड़ता है, वैसे बंकू को संकोच-
नहीं था। कहता, "थोड़ा भात और दीजिए अम्मा, दाल बड़ी अच्छ
है।"

बड़ी बहूजी चाव से कहतीं, "थोड़ी दाल भी ले लो तब।"

"ठीक है, लाइए। कब से इस तरह खाना नहीं खाया
'श्रीमानी ऑपेरा' में तो एक-एक रोज पेट ही नहीं भरता था।
बेचारी ज़्यादातर भूखी ही रहती।"

"दाल-भात भी पेटभर नहीं मिलता था तुम लोगों को ?"

"जी, अब क्या-क्या कहूं आपसे, चंडी बाबू बस ज़बान भर के ही ठीक हैं, बात सुनकर लगेगा साक्षात् युधिष्ठिर, लेकिन असल में बिलकुल शकुनि हैं, शकुनि। शकुनि का नाम सुना है न ? पूरे कुरुवंश को खत्म करके रख दिया !"

खाते-खाते बंकू तरह-तरह की बातें करता।

कहता, "हम अंजना से कितनी बार कहा कि चलो, हम चंडी बाबू का दल छोड़कर हम लोग और कहीं चले जाएं। जहां भरपेट खाना भी न मिले, वहां पड़े रहने के माने होते हैं कोई, आप ही कहें ? लेकिन वह सुनती ही न थी। अरे मुट्ठी भर चने-मुरमुरे के भी लाले थे चंडी बाबू के यहां !"

"हैं ? सो कैसे ?"

"जी, सभी तो भूखे बैठे थे। उन लोगों को दिए बग़ैर कैसे खा सकते हैं भला ? कितने रोज़ से अंजना बेचारी आलू-भात खाने को कह रही थी। लेकिन चंडी बाबू से वह भी न हुआ।"

"क्यों ? आलू-भात देने में क्या लगता है ?"

बंकू कहता, "आप कुछ भी नहीं जानतीं ! अरे, चंडी बाबू आलू-भात जो खाने को देंगे, तो आलू क्या मुफ्त मिलता है ? चंडी बाबू कहते—आलू-भात खाने की कोई ज़रूरत नहीं, आलू का भाव मालूम है तुम लोगों को ?"

"कहते क्या हो ! आलू की भी कोई कीमत है ! मरे आलू के लिए इतनी आफत ?"

"अब आप ही समझ लीजिए ! हम लोगों को क्या कम भोगना पड़ा है अम्मा ! ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, अब अंजना सुखी है, मेरी तो इसीमें ख़ुशी है। जाकर सब कहूंगा, सुनाऊंगा, चंडी बाबू को।"

बड़ी बहूजी ने कहा, "न भैया, अभी कहीं नहीं जाओगे तुम। पहले हरतन ज़रा ठीक हो ले, तब तक तुम्हें नहीं छोड़ने वाली मैं।"

बंकू बोला, "अरे, आप क्या सोचती हैं, हरतन के ठीक होने के पहले मैं ही यहां से टलने वाला नहीं हूं—कहे रखता हूं।"

खाते-खाते ही उसे जैसे कुछ याद आया, बोला, "अब उठूं अम्मा, अकेली होगी।" कहकर जल्दी-जल्दी हाथ-मुंह धोकर हरतन के जा पहुंचा।

निताई बसाक हमेशा व्यस्त रहता है, सुकांत राय पिछले कई रोज उसे पकड़ने की कोशिश कर रहा था। काफी रोज से पीछे-पीछे घूम रहा था। निताई बसाक कलकत्ते जाता है, बड़े-बड़े लोगों से मिलना-जुलना है, ज़रा किसीसे कह दे तो सुकांत राय की बदली हो जाए।

निताई बसाक ने कहा था, "आप ज़रा भी फिक्र न करें सुकांत बाबू, सारे मिनिस्टर मेरी मुट्ठी में हैं।"

दुलाल साहा कचहरी के आगे बैठा माला जप रहा था।

नमस्कार करके सुकांत सामने बढ़कर बैठ गया।

उसने पूछा, "साहाजी, बसाक बाबू हैं क्या ?"

दुलाल साहा को तो कोई चाहिए बात करने के लिए। लेकिन आज-कल न जाने क्या हो गया है। बात-बात में कहता है, "मैं और कितने दिन हूं, तुम लोग गृहस्थ धर्म निबाहो, मैंने तो अपने परलोक की व्यवस्था कर ली है।"

जो लोग सुनते, पूछते, "लेकिन आपकी घर-गृहस्थी ? उसे कौन देखेगा ?"

"जो देखनेवाला है, वही देखेगा।"

"लेकिन आपका लड़का तो वापस आ जाए, उसके लौटने पर ज करना है, कीजिएगा।"

दुलाल साहा मुसकराकर कहता, "मैं अगर अचानक मर जाऊं क्या यम-दूतों से कहूंगा कि ज़रा ठहरो भाई, मेरे लड़के को विलाय लौटकर आने दो। मेरी बात क्या तब यमदूत सुनेंगे ? तुम्हीं लोग कह सुनेंगे ?"

निताई बसाक से भी सभी यही सवाल करते, "बसाक बाबू, स साहाजी संसार-त्याग करने वाले हैं ?"

निताई बसाक कहता, "हां, कहता तो यही है दुलाल।"

लेकिन इतनी बड़ी घटना घटने जा रही है फिर भी सब जने निर्विकार हैं। कोई जरा भी परेशान नहीं है। खबर मुकांत राय तक भी पहुंची थी।

उसने पूछा, "साहाजी, एक बात सुनी है, आप घरबार छोड़कर काशी जा रहे हैं? सच में?"

दुलाल साहा ने कहा, "जा रहा हूं, कहने भर से तो जाना नहीं होता है भाई, मन पीछे खींचता है। कहता है, यह तेरा घर है, तेरा लड़का है, लड़के की बहू है, सभी तो तेरा है···"

मुकांत राय ने कहा, "सो तो है ही···"

"असल में भाई, कोई किसीका नहीं है, तुम्हारे पापों का बोझा कोई नहीं उठाएगा···"

शायद कुछ देर और बात चलती। लेकिन बाधा पड़ गई। निवारण सरकार चुपचाप आकर खड़ा हो गया।

"क्या बात है निवारण? हरलन अब कैसी है?"

"जी, उसी तरह है साहाजी!"

"कलकत्ते से डाक्टर आनेवाला था, आया?"

"आया था।"

"क्या बोला?"

"कहते तो सभी हैं कि ठीक हो जाएगी। आगे भगवान की मर्जी।"

कहकर भगवान के नाम पर माथा झुका लिया।

दुलाल साहा माला जपते-जपते बोला "एक भगवान का ही तो भरोसा है। और सब माया है, माया। मुकांत बाबू को भी यही समझा रहा था···"

बात पूरी होने से पहले निवारण बोल उठा, "साहाजी, जरा जल्दी दो, यहां से सीधे कलकत्ते जाना है, दवा खरीदने के लिए। महंगी-महंगी दवाएं हैं, यहां नहीं मिलेंगी।"

दुलाल साहा ने कांत की ओर देखकर कहा, "अरे कांत, दो भाई दो, निवारण जल्दी में है, बेचारे को दवा खरीदने कलकत्ता जाना है।"

कांत तैयार ही था। कांत हमेशा तैयार ही रहता है। निवारण

हां आने के माने ही हैं रुपये उधार लेने आना। दो-तीन रोज़ में एक आता है और ज़रूरत के मुताबिक रुपया ले जाता है। साहाजी का हुक्म है। वे तो चले ही जा रहे हैं, इस दुनियादारी और माया-मोह ऊपर, इस रुपये पर अब उनको कोई आकर्षण नहीं है। इंतज़ाम पूरा ते ही वे इस घर-गृहस्थी से विदा लेंगे।

कांत एक-एक करके नोट गिन रहा था। नोटों को गिनकर निवारण के हाथ में देते ही निवारण ने भी एक कागज़ में स्टाम्प पर दस्तखत कर दिए, मालिक को जो लिखना था, पहले ही लिख दिया गया था। यही दस्तावेज़ था। कांत ने उस कागज़ को बड़ी सावधानी के साथ कैश-बॉक्स में रख लिया।

"लिए ?"

निवारण ने रुपये टेंट में बांधते हुए कहा, "जी, ले लिए साहाजी!"

"कितने लिए ?"

"दस हज़ार।"

"दस हज़ार में पूरा पड़ेगा तो ?"

"जी हां, अभी फिलहाल चल जाएगा।"

"पूरा न पड़े तो और पांच हज़ार ले लो। इस रुपये का मुझे करना भी क्या है ? मैं तो यह सब छोड़ ही रहा हूं।"

उसकी और ज़रूरत नहीं पड़ी। सत्तर हज़ार पहले ही लिए जा चुके हैं, यह दस हज़ार और कुल मिलाकर अस्सी हज़ार हो गए।

दुलाल साहा ने कहा, "किसी प्रकार का संकोच न करना निवा-रण! मालिक से जाकर कहना कि हरतन के इलाज और घर की मरम्मत के जितने भी रुपये लगें, दूंगा। संकोच की ज़रूरत नहीं है, समझे ?"

निवारण सरकार जा ही रहा था। दरवाज़े तक भी नहीं पहुंचा अचानक निताई बसाक आ पहुंचा।

निताई बसाक को देखते ही सुकांत राय उठ खड़ा हुआ।

"क्यों बसाक बाबू, कहां थे इतने रोज़ से ?"

लेकिन जवाब देने से पहले ही और भी दो जने अन्दर आए। गंज थाने का दरोगा और साथ में एक सिपाही।

निताई बसाक ने ही आगे बढ़कर दुलाल साहा से कहा, "अरे दुलाल, देखो, दरोगा साहब आए हैं, सदानंद की लाश मिली है।"

"सदानंद की लाश?"

सुकांत को ही जैसे ज्यादा अचम्भा हो रहा था। लेकिन दुलाल साहा के चेहरे पर जैसे शिकन तक नहीं थी।

उसने कहा, "आइए दरोगा साहब, पहले इत्मीनान से बैठिए, फिर सब कुछ सुनता हूं।"

दरोगा साहब एक कुर्सी पर बैठ गए। पुलिस की खाकी वर्दी, हाथ में छोटा-सा बेंत, साथ के सिपाही के हाथ में भी एक मोटा-सा डंडा था। वह खड़ा ही रहा।

"उसे क्या हुआ था दरोगाजी? किसने मारा उसे? अहा..."

दरोगा साहब दुलाल साहा के तावेदार हैं, कितने ही मौकों पर दावत खा गए हैं। वजह-बेवजह कुछ-न-कुछ नगदी भी हमेशा पाते रहे हैं। इसके अलावा खुद पुलिस मंत्री भी एक रोज दुलाल साहा के घर मेहमान हो चुके हैं।

"कोई आज थोड़े ही मरा है साहाजी, लाश देखकर लगा कि कोई सात-आठ रोज पहले मारकर डाला गया है। इस बीच गीदड़ और कुत्तों ने नहीं खाया, यही आश्चर्य की बात है।"

दुलाल साहा ने मुंह के अन्दर जबान से च्च-च्च की आवाज की।

"अहा, यह क्या हो गया? किसने ऐसी दुश्मनी की मेरे साथ?"

"वह तो इन्वेस्टिगेशन करने पर पता चलेगा। अभी फिलहाल मैं आपसे दो-एक सवाल करना चाहूंगा।"

"तो पूछो न। जैसे भी हो, कसूरवार को जेल पहुंचाना ही होगा। यह भी कोई बात हुई। दिन-दहाड़े मेरे आदमी को अस्पताल से गायब करके खून कर दिया, इस बारे में जरा भी हील-हुज्जत नहीं होनी चाहिए। उसे फांसी पर लटकाना ही होगा।"

निताई बसाक बोला, "लेकिन खून ही हुआ है, इस बात का सबूत मिला है आपको?"

दरोगा साहब बोले, "खून हो सकता है या खुदकुशी भी हो सकती

है। इन्वेस्टिगेशन करने पर सब पता चल जाएगा। लाश हुसैनपुर के जंगल में मिली है।"

दुलाल साहा ने कहा, "नहीं भाई, मेरा खयाल है, यह खून ही है। खून छोड़कर और कुछ हो हो नहीं सकता। कितने आराम से अस्पताल में रखा था! वहां से भागकर आत्महत्या क्यों करने लगा? किस दुःख में? नहीं भाई, यह खून ही है। और खूनी को तुम्हें पकड़ना ही होगा। और पकड़कर फांसी पर लटकाना ही होगा···"

सदानंद ऐसा कुछ कर बैठेगा, दुलाल साहा या निताई बसाक किसी-ने सोचा भी न था। सदानंद के लापता होने की घटना ने जैसे सब कुछ गड़बड़ा दिया था।

पुलिस के लोग सदानंद की लाश को घेरे खड़े थे। निताई बसाक और दुलाल साहा भी थे।

सदानंद की ओर देखकर दुलाल साहा ने जीभ से 'च्च-च्च' की आवाज़ की। याने—अहा, बेचारा!

इसी आदमी को देखने वह रोज बेनागा अस्पताल गया है। सदानंद जब तक अस्पताल में रहा, दुलाल साहा खुद उसके लिए खाना लेकर गया है।

दुलाल साहा ने कहा, "अहा, यह हाल किसने किया है इस बेचारे का?"

बात किसीको उद्देश्य करके नहीं कही गई थी, इसलिए किसीने कोई जवाब भी नहीं दिया।

दुलाल साहा फिर कहने लगा, "इसका फैसला आपको करना ही पड़ेगा दरोगा साहब, अपराधी को दंड मिलना ही चाहिए, नहीं तो लोग सरकार को बदनाम करेंगे, कहेंगे कि अंग्रेजों के जाते ही देश में अरा-जकता फैल गई है।"

निताई बसाक ने भी यही एक बात कही। पुलिस को जो करना है सो तो पुलिस करेगी ही। इन दोनों को तो सिर्फ शिनाख्त करने के लिए बुलाया गया था। इतने दिनों तक इन लोगों के यहां नौकरी की, इन्हीं-

की दया पर रहा है, इनकी शिनाख्त पर आसानी रहेगी, रिपोर्ट भी आसानी से तैयार हो जाएगी।

"साहाजी, आपको किसपर शक है ?"

दुलाल साहा बोला, "यह तो आपने बड़ी मुश्किल में फंसा दिया दरोगा साहब, मैं तो हर किसी पर एतबार कर लेता हूं, मैं किसपर शक कर सकता हूं ?"

"इसे तनख्वाह तो मिलती थी हर महीने ?"

"मैं किसीकी तनख्वाह बाकी नहीं रखता, कभी किसीको नौकरी से निकालता भी नहीं, मेरा स्वभाव ही ऐसा नहीं है।"

"किसीसे दुश्मनी थी, आपको मालूम है कुछ इस बारे में ?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूं, मैं किसीके मन के भीतर का हाल कैसे जान सकता हूं ?"

"किसीसे रुपया-पैसा कुछ उधार लिया था ?"

"कैसे कहा जा सकता है ! लेकिन वह उधार क्यों लेने लगा ? किसलिए ? सदानन्द को क्या मैं कम पैसा देता था जो वह किसीके आगे हाथ फैलाने जाता ? अकेला पेट, इतना पैसा कौन खाएगा ?"

"अपने रुपये वह किसके पास रखता था ?"

"सो तो वही जाने ! मुझे इस सबमें कोई रुचि नहीं है, वक्त भी नहीं है। इसलिए तो मालिक से कहा था मैंने कि अब तो इस माया से छुटकारा मिले तो मुक्ति पाऊं, और अच्छा नहीं लगता यह सब।"

निताई बसाक से भी वही एक सवाल पूछा गया। उत्तर भी वही एक ही मिला। वह भी किसीके सात-पांच में नहीं है, वह दुलाल साहा का मैनेजर है। दुलाल साहा का काम देखता है। बस, इससे ज्यादा कुछ नहीं मालूम उसे।

आखिर में दरोगा साहब बोले, "आप अन्यथा न लीजिएगा साहाजी, सरकारी नौकरी में बहुत-से ऐसे-वैसे काम करने पड़ते हैं, नहीं तो आपको यह तकलीफ नहीं उठानी पड़ती।"

दुलाल साहा बोला, "अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है, यह तो आपका फर्ज है। आसामी को ढूंढकर निकालना ही है, नहीं तो किशनगंज

ाम बदनाम होगा। सरकार की बदनामी होगी।"

घर आकर दुलाल साहा ज्यादा देर कचहरी में नहीं बैठा। काफी
ा आकर बैठे थे। सबको विदा कर निताई बसाक को लेकर अन्दर
मरे में आया।

बोला, "खिड़की-दरवाज़े ठीकसे बंद कर दो।"

निताई बसाक भी बात कहने के लिए बेताब हो रहा था। खिड़की-दरवाज़े ठीक से बंद किए।

दुलाल साहा ने पूछा, "क्या लगता है ?"

निताई बसाक समझ नहीं पाया। उसने पूछा, "किस बारे में ?"

"वही मालिक के बारे में ? कलकत्ते में पता लगाया कुछ ?"

"लगाया।"

"तो फिर ?"

निताई बसाक बोला, "मालिक जितना रुपया चाहें, तुम दिए जाओ।"

"खर्चा वगैरह लेकर प्रायः अस्सी हज़ार तो दिए जा चुके हैं।"

"और मांगने पर और दो, घबड़ाने की ज़रूरत नहीं है, सब वसूल हो जाएगा। अरे, अभी भी मालिक की तीन हज़ार बीघे ज़मीन बाकी है, इसके अलावा घर भी कोई कम नहीं है।"

ज़रा रुककर फिर बोला, "और सदानन्द के मामले को लेकर भ
तुम्हें फिक्र करने की ज़रूरत नहीं है।"

"इस मामले की कोई फिक्र नहीं है मुझे।"

"जिसे जो देना था, मैंने दे दिया है। पेट भर दिया है। इतना खि
दिया है कि किसीमें डकारने तक का बूता नहीं है।"

"हर ओर दुश्मन भरे हैं। किसीको भनक पड़ गई तो मुश्कि
जाएगी।"

"मुश्किल में ही पड़ना होता तो मिनिस्टर को क्यों लाया यहां
तीन हज़ार रुपये खर्च हो गए। लेकिन यह तीन हज़ार भी मैंने जेब
ही निकाले हैं! इतना कच्चा नहीं हूं! मंत्री के सेक्रेटरी से मैं
कह दिया कि उसके भतीजे के नाम पर शुगर मिल के जो शेय
अभी उसी में संतोष करे, इससे ज़्यादा कुछ नहीं होगा अभी।"

"लेकिन पैसा भी खिलाओ और काम भी न बने, यह तो ठीक नही है ! पांच लाख की मशीन लाने में अगर एक लाख घूस के ही निकल गए, तो नफा क्या रहेगा ?"

निताई बसाक बोला, "लेकिन नुकसान ही कहां है ? नुकसान कोई घर में तो जा नही रहा । दिल्ली में इस बार यही काम तो किया है। वे लोग चीनी के दाम बढ़ाने को राज़ी हो गए हैं। तुम्हारे एक लाख एक दिन में वसूल हो जाएगे । घबड़ाते क्यों हो ?"

सुनकर दुलाल साहा को थोड़ी तसल्ली हुई । इधर कुछ दिनों से दुलाल साहा परेशान था । निताई बसाक काफी जोखिम का काम कर बैठा है । पहले सौ-पांच सौ रुपये का कारबार था । बाद में बढ़कर हज़ार हुए, और फिर हज़ार से लाख । अब लिमिटेड कंपनी है । कुछ ही सालों में कारबार काफी फैल गया है । महाजन लोग किशनगंज आकर दुलाल साहा का कारबार देख दांतों तले उंगली दबा लेते हैं । लोगों को जितना ताज्जुब होता है, दुलाल साहा की कंपनी उतनी ही लाल होती है । कुछ ही सालों की बात है, इसी बीच शुगर मिल बनने से जैसे किशनगंज की शक्ल ही बदल गई है । पेंपुलबेड़ की ओर जाने पर जगह पहचान में ही नही आती है । झाड़-झंखाड़ से भरी ज़मीन में नया शहर बस गया है । नई-नई सड़कें, लाल बजरी बिछी हुई, एक पार्क भी हो गया है। नाम हुआ है दुलाल पार्क । मिल में काम करने वालों के लिए क्वार्टर बने हैं । निताई बसाक ने चेहरा ही बदल दिया । देशी-विदेशी साहब और गुजराती मारवाड़ी सेठ आते हैं, और कुछ रोज़ ठहरकर चले जाते हैं । उनके ठहरने के लिए गेस्ट हाउस हैं । पूरे साहबी कायदे का गेस्ट हाउस।

इतना सब कुछ हुआ है लेकिन उससे दुलाल साहा में कोई फर्क नही आया है। वह आज भी रोज़ मुंह-अंधेरे हाथ में झाड़ू लिए घाट की सीढ़ियां धोता है । और दिन निकलते-न-निकलते गाड़ी में बैठकर घर वापस आता है ।

जो लोग देखते हैं, यानी हठात् एक-आध रोज़ ही देखते हैं, कहते हैं, "साहाजी मनुष्य नही हैं, साक्षात् शिव हैं, शिव !"

दुलाल साहा कहता, "धत्, यह सब मन में भी नही लाना चाहिए,

कार होता है।"

हंकार नहीं है, इसीसे आपको शिव कहता हूं साहाजी !"

ाल साहा बोला, "नहीं भगवान को लेकर मखौल नहीं करनी

, इससे पाप होता है।"

शनल हाई-वे से होकर बड़ी-बड़ी गाड़ियां आतीं, बड़े-बड़े महाजन

इंस्पेक्टर आते। इतना ही नहीं, बी० डी० ओ० सुकान्त राय भी

कस की जीप को लेकर सिगरेट के कश लगाता हुआ आता। किन्तु

ल साहा अपनी लम्बी गाड़ी के अन्दर बैठकर भी भिखारी का

खारी था। उसी तरह नंगे बदन, बहुत हुआ तो एक चादर डाल ली।

रों में देसी चप्पल, सिर के बाल सूखे और बेतरतीब। किशनगंज में

हली बार आने पर उसका जो पहनावा था, आज भी ठीक वैसा ही था।

रास्ते में जिस-तिस को देख गाड़ी रुकवाता। कुशल-क्षेम पूछता; घर के

लोगों का हाल पूछता।

कोई अगर हठात् पूछ बैठता, "अच्छा साहाजी, चीनी का दाम इस

तरह अचानक क्यों बढ़ गया ?"

"हैं, चीनी का दाम बढ़ा है! कब से ?" दुलाल साहा को बड़ा

आश्चर्य होता।

"जी, खाली चीनी ही क्यों, नोन-तेल, दाल-चावल हर चीज का ही

तो दाम बढ़ रहा है।"

दुलाल साहा कहता, "कितना बढ़ा है ?"

"यही देखिए न, चौदह आने थी, अब एक रुपये दस आने हो गई

है।"

"हैं! कहते क्या हो ?" दुलाल साहा जैसे भय से सिहर उठता। जो

आदमी दिन-रात खाली भगवान के ध्यान में मगन रहता है, उसके लिए

इन छोटी-छोटी बातों का ध्यान कैसे संभव हो सकता है ?

दुलाल साहा कहता, "हजारों रुपये तनख्वाह देकर केमिस्ट और मैं

जर रखकर तो खूब लाभ हो रहा है मुझे। लोगों को अगर चीनी ही ख

को न मिले तो क्या फायदा इस चीनी मिल का! मैंने क्या रुपया क

के लिए खोली है यह मिल ?"

कुछ सोचने के बाद दुलाल साहा ने फिर कहा, "ठीक है, तू फिकर मत कर, सब सालों को ठीक कर दूंगा मैं। असल में मुझे सीधा-सादा आदमी समझकर ये लोग ठग रहे हैं। जानते ही हो, मेरा सारा दिन तो हरिनाम में ही निकल जाता है।"

कहकर साहाजी ने गाड़ी स्टार्ट करने को कहा।

बाद में अचानक एक दिन उसी आदमी को देखकर गाड़ी रुकवाकर आवाज लगाई, "ऐ केदार, सुनो तो।"

केदार खेत जोत रहा था। अपना नाम सुनते ही दौड़कर गाड़ी के पास आ, हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

"उस दिन तू पूछ रहा था न कि चीनी का दाम क्यों बढ़ा है?"

"जी हां, साहाजी!"

"तो इसके लिए तू परेशान मत हो, मैंने उसी दिन मैनेजर को बुलाकर पूछा था। ऐसे ही नहीं छोड़ा। खूब धमकाया। मैंने कहा, 'देश के किसान-मजदूर बिन खाए रहें, यह अच्छी बात नहीं है।' मैनेजर बोला, 'हम क्या करें, सरकार ने मशीनों के दाम बढ़ा दिए हैं।' मैंने साफ-साफ कह दिया कि सरकार से मशीनों के दाम कम करने को कहो।"

सुनकर केदार कृतार्थ हो गया।

"लेकिन तू चिन्ता मत कर। मैंने उसी दिन सरकार को चिट्ठी लिखवा दी है कि मशीनों के दाम कम किए बगैर चीनी के दाम घटाना मुश्किल हो रहा है। हमारे देश के गरीब किसान-मजदूरों को परेशानी हो रही है। सारी बात समझाकर साफ-साफ लिखने को कह दिया है। काफी कड़ी चिट्ठी लिखवा दी है, समझा! फिकर मत कर—अरे, तुझे तो मालूम ही है, यह मिल मैंने कोई पैसा कमाने के लिए थोड़े खोली है।"

गाड़ी फिर स्टार्ट हो गई। केदार की समझ में आया या नहीं, इस बात का पता नहीं चला।

दुलाल साहा को लेकिन ज्यादा दिन तक नहीं रोका जा सका। एक दिन नई बहू से उसने सब कुछ कहा।

उसने कहा, "नई बहू, इस सप्ताह विजय की चिट्ठी आई?"

नई बहू ने कहा, "हां, बाबा!"

कुछ लिखा है, कब आ ...
नई वहू ने कहा, "लिखा है, इसी महीने रिज़ल्ट निकलने की वात है,
ल्ट निकलते ही चल देंगे।"

"लेकिन मुझसे तो अव यह सव नहीं होता। यह गाथा अव अच्छी
नहीं लगती।"

नई वहू यहवात काफी दिनों से सुन रही है। वार-वारसुनकर वात
उसके लिए पुरानी हो चुकी है। नई वहू ने इस वात पर खास ध्यान नहीं
दिया। उसने कहा, "मैं ज़रा मालिक के घर जा रही हूं वावा !"

"क्या वात है ?"

"हरतन की वीमारी ने फिर ज़ोर पकड़ लिया है, ताई परेशान हो
रही हैं, मुझे कहलाया है।"

नई वहू चली गई। वाहर गाड़ी तैयार ही थी। नई वहू के वैठते ही
गाड़ी चल दी। गाड़ी स्टार्ट होने की आवाज़ दुलाल साहा के कान में
आई। वहऔर भी ज़ोरों से माला फेरने लगा। ऐसा तो कभी नहीं होता।
मन को वश में रखे वगैर दुनिया में कोई भी काम नहीं होता। असल में
मन ही सव है। इस मन को वांधकर रख पाया वोलकर दुलाल साहा
आज साहा वन पाया है। एकधोती और अंगोछा-कम्वल लिए किशनगंज
में आकर इतने वड़े कारोवार का मालिक वन पाया है। लड़के को विला-
यत भेज पाया है। मिनिस्टर के साथ उसका फोटो अखवार में छप रहा
है। यहसव इस मन के वूते पर ही तो हुआ है। नई वहू वहां हो आए
अच्छा ही है। किसीसे झगड़ा-फसाद न होना ही अच्छा है। मीठे वो
की छुरी मारने से खून भी नहीं गिरता। दुलाल साहा को यह सीख
अपने जीवन से ही मिली है।

हठात् जैसे कुछ याद आया। दुलाल साहा ने आवाज़ दी, "कांत
पास वाले कमरे में कांत खाता देख रहा था। पुकार सुनकर आ
दुलाल साहा ने कहा, "अच्छा कांत, विजय के विवाह पर त
यहीं थे न ?"

"जी हां, अच्छी तरह था।"

"तव तो तुम सव कुछ जानते हो। उस घटक की याद है तुम

भला-सा नाम था जाने ?"

"उस दोलगोविन्द की बात कर रहे हैं ?"

"हां-हां, दोलगोविन्द। तुम्हें तो देखता हूं, सब कुछ याद है ?"

कांत बोला, "जी, याद नहीं रहेगा—पक्का याद है। सदानन्द उन दिनों गद्दी पर बस्ते गिनने का काम करता था। विवाह वाले दिन रात को दोलगोविन्द अचानक पागल हो गया, पंद्रह भरी सोना था क्या उसे सदानन्द ने नहीं दिया। बहुत दिन हो गए न, ठीक से याद नहीं है।"

दुलाल साहा बोला, "अरे, मुझे ही कहां याद है, तुम्हें कैसे रहेगा! ऐसी फालतू बातें भी कहीं याद रहती हैं! किसको पड़ी है इन बेकार बातों में सिर खपाने की ?" कहकर हाथ की माला फिर जोर-जोर से फिराने लगा।

कांत अभी खड़ा था। काफी देर बाद उसने पूछा, "उस दोलगोविन्द के लिए कुछ करना है ?"

"अरे नहीं-नहीं! ऐसे ही हठात् याद पड़ गया सो तुम्हें बुलाकर पूछ लिया। ठीक है, तुम अपना काम करो। मन की भी बलिहारी है, इतने लोगों के रहते याद भी आई तो दोलगोविन्द की, हरि, हरि···"

कांत चला गया, लेकिन मन रह-रहकर उसी ओर भाग रहा था। सुबह उठते ही वही बात, माला फेरते वक्त भी वही बात। नई बहू पूजा के लिए बुलाने आती। अन्यमनस्क भाव से उसकी ओर ताकता, फिर नजर हटा लेता।

निताई बसाक किशनगंज ज्यादा दिन नहीं रह पाता। आज किशनगंज तो कल कलकत्ता। कभी-कभी हठात् कलकत्ते से दिल्ली चला जाता। दिल्ली उसे प्रायः ही जाना पड़ता है आजकल। दिल्ली ही क्यों, पूरे देश में ही घूमना पड़ता है।

उस बार किशनगंज आते ही दुलाल साहा ने बुला भेजा।

"क्या बात है ? इतना घबराते क्यों हो ? मेरे रहते तुम्हें कौन-सी चिन्ता सता रही है ? *ब्लैकशीट के झमेले में फंसा था, सरकार के पास भिजवाकर सीधा चला आ रहा हूं।*"

"लेकिन इस बार लौटने में इतनी देरी ?"

नहीं होगी। एकाउंटेंट लोगों के साथ लगा था। सेल्स-टैक्स है,
स है, सब निपटाकर तब आ पाया हूं।"
ल साहा ने कहा, "खैर, सब ठीक है। मैंने तुम्हें एक और ही
लिए बुलाया है। उस घटक की याद है?"
घटक कौन? किस बात का घटक?"
अरे वही, दोलगोविन्द, या क्या नाम था उसका?"
"लेकिन आज अचानक उसकी याद कैसे आई है तुम्हें?"
दुलाल साहा ने कहा, "इतनी हड़बड़ी का काम मुझे नहीं पुसाता।
ड़ी में ही हमेशा भूल होती है। मालूम है?"
"मेरे कौन-से काम में भूल देखी है तुमने?"
"हुई नहीं है, लेकिन होने में कितनी देर लगती है! मैं तुम्हें सम-
ता हूं।"

कहकर खिड़की-दरवाज़ों की ओर अच्छी तरह देखकर दुलाल साहा
कहा, "सदानन्द के साथ वह घटक भी तो था। सदानन्द को तो ठीक है
हटा दिया लेकिन कभी उसके बारे में भी सोचा है?"

"वह क्या कर सकता है? मेरा नौकर थोड़े ही है!"

दुलाल साहा ने कहा, "यही तो, यहीं पर तुम्हारे साथ मेरी पटरी
नहीं बैठती निताई, मैं दुश्मन की जड़ नहीं छोड़ता। दुश्मन बड़ के पेड़
की तरह होता है। उसकी डाल-डाल से जड़ें फूटती हैं।"

"तो तुम अब क्या करना चाहते हो?"

दुलाल साहा ने फिर से खिड़की-दरवाज़ों की ओर ताककर देखा।
"सारी सिटकनी चढ़ी हैं ना?"

अचानक नज़र पड़ी, पूरब की ओर एक खिड़की की सिटकनी खुली
थी। उसने कहा, "देखो, वह खिड़की खुली है, तुम्हें भी होश नहीं है।"
कहकर दुलाल साहा ने खुद ही जाकर सिटकनी चढ़ा दी। बाहर से अब
कोई भी नहीं जान सकता था कि अंदर दोनों के बीच क्या बातें हुईं।

बंकू वाकई काम का लड़का ज़रूर है। कभी यहां जाता है तो कभी
वहां दौड़ता नज़र आता है। दवा और डॉक्टर सब अकेला सम्हाल रह

है। इसके बाद अकेले सारी-सारी रात हरतन के पास बैठा उसका सिर दबाता रहता है। अभी पिछले दिनों जब हरतन की हालत बिगड़ गई थी तो बेचारे को दिन-रात का भी होश नहीं रहा था। रो-रोकर आंखें फूल गई थीं। मर्द बच्चा भी इस तरह रो सकता है, इससे पहले किसीने नहीं देखा होगा। मालिक तक डर गए उसका रोना देखकर।

बड़ी बहूजी को खुद दिलासा देने की जरूरत थी। लेकिन वही बंकू को दिलासा दे रही थीं। बोलीं, "रोओ मत बेटा, भगवान की कृपा हुई तो हरतन सेरी जरूर बचेगी।"

वाकई कुछ ही दिनों में हरतन की हालत सुधरने लगी। बंकू के चेहरे पर फिर से हंसी खिली। हरतन के पास जाकर उसने कहा, "बाप रे ! पिछले कुछ दिनों तो इस तरह डरा दिया कि मेरी जान ही सूख गई।"

हरतन ने कहा, "सुना है, तुम लड़कियों की तरह रोए थे ?"

"तुमसे किसने कहा ?"

"क्यों, मा ने कहा !"

बंकू जैसे शरमा गया। उसने कहा, "तो तुम जल्दी से ठीक हो जाओ न, फिर मुझे कोई तकलीफ नहीं रहेगी।"

हरतन भी हंसती। कहती, "क्यों, याद नहीं है जोरहाट में मुझे कितना सताया था ? बुखार की खुमारी में बाबुओं के चंडीमंडप में बैठे करते थे, उससे मुझे तकलीफ नहीं होती थी ? मैं कितना कहती थी, कि बीड़ी मत पीओ, बीड़ी मत पीओ, तब सुनते थे मेरी बात !"

"अब तो छोड़ दी है। इतने दिन हो गए, बीड़ी देखी तक नहीं है।"

"सच ?" हरतन का चेहरा खुशी से खिल उठता। "सचमुच बीड़ी नहीं पीते ?"

"सच ! तुम्हारे सिर पर हाथ रखकर कहता हूं। जब तक तुम ठीक नहीं होतीं, एक भी बीड़ी नहीं पिऊंगा। किया है धनुर्भंगप्रण !"

हरतन और भी जोर से हंसने लगी। बोली "तुम्हें अभी तक पाठ याद है, भूले नहीं हो ?"

"वाह ! भूलूंगा कैसे ? तुम भूली हो ?"

"कब की !"

"सच !"

हरतन ने होंठ उलटाकर कहा, "मैं वह सब नहीं सोचती। मैं सब
छ भूल चुकी हूं। कुछ भी याद नहीं है..."

"तुम्हारे लिए सब संभव है !"

"इसके मतलब ?"

"मतलब यही कि एक रोज़ मुझे भी इसी तरह भुला दोगी।"

हरतन कहती, "भूलना ही पड़ेगा। तुम और मैं ? तुम्हारे साथ मेरी क्या बराबरी ? मैं ठहरी ज़मींदार-नंदिनी, और तुम ?"

बंकू बोला, "मैं ज़मींदार-नंदिनी का प्रतिहारी हूं।"

हरतन ने कहा, "जो भी हो, तुम्हारी नौकरी बढ़िया है। आराम से माल उड़ा रहे हो और मज़ा कर रहे हो।"

"लेकिन तनख्वाह नहीं मिल रही है।"

"तनख्वाह न मिलने की काफी तकलीफ है न ?"

हरतन हंसने लगी। बोली, "ऐसा प्रतिहारी तो बहुत अच्छा। फोकट का नौकर आजकल कहां मिलता है भला, तुम्हीं कहो ? देखती हूं, भाग्य मेरा अच्छा ही है।"

बंकू बोला, "भाग्य अच्छा नहीं होता तो ज़मींदार की पोती ऐसे ही हो गईं ? कहां थीं, और कहां जा पहुंचीं। दादा तुम्हारे लिए कितना खर्च करते हैं, कुछ मालूम है ? कितना बड़ा घर, बगीचा, मोटरगाड़ी खरीद है तुम्हारे लिए ही तो।"

सचमुच मालिक जैसे हरतन के लिए बावरे हो गए थे। हरतन पिएगी इसलिए दो गायें खरीद डालीं, कहां-कहां से तरह-तरह के और केले मंगवाते थे। लड़की को खुश रखने के लिए बगीचे में नये से फूलों के पौधे लगवाए। फूलों के बीच हरतन बगीचे में घूमेगी। के घूमने जाने के लिए गाड़ी खरीद ली थी। रुपया पानी की त रहा था। रुपयों की ज़रूरत पड़ते ही निवारण दुलाल साहा के पास और रुपये ले आता। आज दो हज़ार तो कल पांच हज़ार। रुपये दुलाल साहा के पास जाकर निवारण को राह नहीं देखनी पड़ती ही गिन देता। दुलाल कहता, "निवारण, अरे तुम इतना सं

बात का करते हो ? मालिक कोई गैर हैं मेरे लिए ?"

निवारण को फिर भी संकोच होता। कहता, "जी, रकम बढ़ गई है न।"

"तो क्या हुआ, मैंने तो कह ही रखा है कि हरतन की बीमारी के ठीक होने में जितना भी खर्च हो, मैं दूंगा। तुम जमीन रेहन रख रहे हो रखो, लेकिन यह याद रखो कि एक दिन मरना सभीको है। तुम्हारे पास पैसा हो या न हो, मौत किसीको नहीं छोड़ने वाली···"

निवारण कहता, "सो तो है ही···"

"तब ?"

इसके जवाब में निवारण कुछ नहीं कहता।

दुलाल साहा खुद ही कहता, "यह जो धन-दौलत, घर-गाड़ी और जमीन-जायदाद देख रहे हो, एक रोज सभी छोड़कर चले जाना है, समझे निवारण ? सब यहीं छोड़कर जाना है। साथ में रहेगा सिर्फ कर्म ! यही जैसे तुम्हारी मुसीबत में मैं देख रहा हूं, मेरी मुसीबत में तुम देखोगे, यही बाकी बचना है, और कुछ भी नहीं रहना, कुछ भी नहीं। तुमसे यह कहता हूं निवारण···"

इसके बाद इसी तरह निवारण जमीन रेहन रखने का पुर्जा लिखता और रुपये ले जाता। फिर उस रुपये से गाय खरीदी जाती, घर की मरम्मत होती, मोटर खरीदी जाती, हरतन की सुख और सुविधा के लिए जो कुछ किया जा सकता था, मालिक सब करते।

लेकिन उस रोज अचानक बड़ी बाबू आ पहुंचे। बड़ीबाबू अकेले नहीं, पूरे दल-बल के साथ। भाजनघाट आए थे कार्यक्रम कराने। इतनी दूर आकर लड़की को एक बार देखे बगैर कैसे जा सकते हैं ?

मालिक भी हैरान थे। बैठक में बैठे हुक्का पी रहे थे। सामने मोटर रुकते ही सोचा, दुलाल साहा होगा। नई बहू को लिए वही आया होगा। लेकिन नहीं। गाड़ी पुरानी थी। किराये की। टूटी-फूटी और खचड़ा।

बड़ी बाबू ने पूछा, "लड़की कैसी है अब ?"

मालिकबोले, "चलिए, चलकर खुद ही देख लीजिए।"

बड़ी बाबू ने कहा, "सभी भगवान की कृपा है भट्टाचार्यजी! जब खुद भगवान आपका सहायक हैं, तो कौन है जो आपका बिगाड़ कर सके

लिए, चलिए, हरतन आपको देखकर खुश होगी, चलिए...''
व उठ पड़े। फटिक भी साथ था। दल के अन्य सभी थे। सब ऊपर
के लिए सीढ़ी चढ़ने लगे।

किशनगंज के जीवन में यह एक नया अनुभव था। एक आदमी एक
त्र सभीके लिए गणमान्य थे, सभीके लिए श्रद्धा और सम्मान के पात्र
। एक दिन किशनगंज के इन्हीं लोगों ने मालिक को अपने मालिक के
प में स्वीकार किया था। लेकिन कब अचानक सब कुछ बदल गया,
अचानक कब दुलाल साहा उनका नया देवता बन बैठा, उन्हें खुद भी इस
बात का पता न चला।

लेकिन इतने दिन बाद बाज़ी जैसे फिर से उलट गई।

चंडी बाबू को देखकर हरतन भी जैसे इतने दिन बाद फिर से खिल
उठी।

''कैसी हो बेटा ?''

''बाबा!''

सिर्फ एक शब्द। लेकिन इस एक ही शब्द से जैसे दोनों के मन भर
गए। कितने महीने, कितने साल, बाप-बेटी की रातें एकसाथ कटी हैं।
कितने अनजाने गांवों के मामूली चंडी-मंडपों में चंडी बाबू इस बिटिया
को साथ लिए यात्रा करने गए हैं। कितने ही लोगों ने मैडेल दिए हैं इस
लड़की को। आज यहां मालिक के घर के ज़नाने में खड़े-खड़े ये बातें याद
करना अच्छा ही लग रहा था। चंडी बाबू की आंखों के आगे रानी रूप
कुमारी का रूप कौंधने लगा।

'' 'रूपकुमारी' का पार्ट कौन कर रहा है आजकल ?''

''कुछ मत पूछो बिटिया, तू नहीं है, मेरा सब कुछ चला गया। सोच
हूं, दल खत्म ही कर दूंगा अब।''

''नहीं-नहीं, खत्म कैसे कर देंगे ! मैं दल बन्द नहीं करने दूंगी
रुपया लगेगा, मैं दूंगी, दादा देंगे...''

मालिक पास ही खड़े थे। बोले, ''नहीं-नहीं, दल क्यों बन्द क
आप ? दल मत उठाइए। मैं रुपया दूंगा। आप दल चालू रखिए

चढी बाबू बोले, "मालिक, रुपया होने से ही दल नहीं चला करता, हीरोइन चाहिए। इस हरतन जैसी ही एक लड़की का इंतजाम कर दीजिए, मैं दल चालू रखता हूं।"

जरा रुककर फिर कहा, "उन दिनों साहब और रईसों ने मेरी इसी बिटिया का पार्ट देखकर कितनी बख्शीशें दी हैं, मैं आज भी नहीं भूला हूं वह सब। यह लड़की ही तो मेरी लक्ष्मी थी। इस लक्ष्मी के चले जाने से मेरा दिल भी टूट रहा है।"

बात कोई झूठ भी नहीं है। जो लोग चढी बाबू के साथ घूमते हैं, वे भी समझ चुके हैं कि बगैर एक अच्छी-सी 'रानी रूपकुमारी' के दल को टूटने से नहीं बचाया जा सकता।

मालिक ने कहा, "यहां मेरे आंगन में एक दिन जलसा हो जाए चढी बाबू, जो खर्च होगा, मैं दूंगा। हरतन भी देख लेगी।"

चढी बाबू बोले, "यह तो बड़ी खुशी की बात है मालिक!"

"मेरे लिए भी खुशी की बात होगी। हमारे यहां एक नया रईस हुआ है, बात-बात में नाटक करके गहर दिखलाता है, मेरी भी बड़े दिनों की इच्छा है, एक दिन जमकर नाटक कराऊं।"

चढी बाबू को और क्या चाहिए! खुश होकर बोले, "आपके यहां नाटक करना तो मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी मालिक! ठीक है, हम लोग तब जरा घूमकर आते हैं। दो जगह से पेशगी ले रखी है, उसे निबटाकर वापस जाते वक्त यहां होकर जाएंगे।" कहकर चढी बाबू चारों ओर निगाह घुमाकर देखने लगे। कितना आलीशान मकान है! मकान बहुतेरे देखे हैं चढी बाबू ने। कितने ही राजा और जमींदारों के यहां जलसा कर आए हैं। लेकिन यह जैसे अपना निजी घर लग रहा था उन्हें।

चढी बाबू बोले, "यह तो अपना ही घर है मालिक, जैसा आपका वैसा हमारा..."

मालिक बोले, "मेरा क्यों कहते हैं, अब तो सब कुछ इस बिटिया का ही है। इसीके भाग्य से सब कुछ फिर से हुआ। हरतन बिटिया वापस आई तो उसके साथ लक्ष्मी भी लौट आई। नहीं तो सब श्मशान हो चुका था यहां।"

...तन लेटी-लेटी सब सुन रही थी। लेकिन अब और लेटना अच्छा ... रहा था। बोली, "मैं उठूंगी दादा !"

...कू पास ही था। हड़बड़ाकर बोला, "अरे नहीं-नहीं, तुम्हारे सीने में ...।"

"चुप भी रहो तुम, मेरा शरीर ठीक है या नहीं, इसका पता मुझे नहीं ... ?"

मालिक भी परेशान हो उठे। बोले, "उठने की क्या ज़रूरत है ... ?"

फटिक इस बीच घूम-घूमकर सारा घर देख आया था। दीदी के यह ...ठ होंगे, इस बात की वह कल्पना भी न कर पाया था। आकर बोला, 'तुम तो वाकई राजरानी हो गई हो दीदी !"

हरतन मुसकराने लगी। फिर चंडी बाबू से पूछने लगी, "अच्छा बाबा, फटिक क्या अभी भी तम्बाकू चुराकर खाता है तुम्हारी ?"

फटिक की ओर देख चंडी बाबू बोले, "देख, दीदी को अभी तक याद है तेरी ! इसके खाने की न पूछो बिटिया, मेरी तो हालत ही पतली हो गई है इस पेट के मारे। इसके पेट में राक्षस घुसा है, राक्षस !"

चंडी बाबू मालिक के साथ घूम-घूमकर देखने लगे। साथ में फटिक और बंकू सभी थे। निवारण भी था।

"यह देखिए, हरतन के आने से पहले यह सब टूटा पड़ा था—अब फिर से सब कुछ ठीक कराया है। पूरा एक लाख लग गया। सब बिटिया के लौटने से हुआ।"

"कितना रुपया लगा कुल ?"

निवारण ने जवाब दिया, "जी, यही कोई एक लाख !"

"लाख रुपये तो बहुत होते हैं ?"

मालिक बोले, "बहुत हैं तो इसमें मैं क्या कर सकता हूं। रुपया देने वा... मालिक क्या मैं हूं चंडी बाबू ? सब बिटिया का भाग्य है। लक्ष्मी ही उ... लौटकर आई है तो अब लक्ष्मी अपने रहने की तथा अपने भोग-राग ... व्यवस्था भी कर लेगी। लक्ष्मी ने खुद ही सब कुछ छीन लिया और ... खुद ही दे रही हैं, मेरे करने को क्या है इसमें ? मैं कर भी क्या स...

है ?

फटिक बोल उठा, "तब तो मालिक, आप एक दिन हम लोगों को भोजन करवा दें।"

"तू चुप रह तो फटके···"

मालिक ने कहा, "नहीं-नहीं, फटिक ने गलत बात नहीं कही कोई। एक दिन आपके दल को भोजन कराना तो मेरा फर्ज है। हमारे यहां एक आदमी है जो बात-बात में लोगों को खिलाता है, समझे—तो मैं भी एक दिन आप लोगों को खिलाऊंगा, आप लोगों को कब सुविधा होगी, यह बतलाइए ?"

बड़ी बाबू बोले, "फालतू में इस सब झमेले की क्या जरूरत है ? इस फटिक की बातों पर ध्यान न दें आप। घर की मरम्मत कराने में इतना खर्चा हो चुका है, अब और क्यों खर्चा बढ़ाते हैं बेकार में ? इन्हें खिलाना माने भूत-भोजन कराना।"

चलते-चलते सदर की ओर पहुंचते ही देखा गया, बैठक के सामने दुलाल साहा और निताई बसाक खड़े हैं।

मालिक को देखते ही दोनों ने बड़ी विनम्रता के साथ प्रणाम किया।

"और क्या जरूरत पड़ गई दुलाल ? अब और क्या चाहिए तुम्हें?"

दुलाल साहा ने विनम्रता के साथ कहा, "मुझे और क्या चाहिए मालिक, मेरी तो और कोई मांग बाकी नहीं है अब, मैं तो एक छोटी-सी प्रार्थना करने आया था, आगामी सोमवार को विजय विलायत से वापस लौट रहा है, गरीब की कुटिया में एक बार पदधूलि पड़े, यही प्रार्थना है।"

मालिक बोले, "विजय लौटकर आ रहा है, बड़ी अच्छी बात है, लेकिन मैं जाकर क्या करूंगा ?"

"जी, आप आशीर्वाद देंगे उसे, मेरा तो और कोई भी नहीं है। एक निताई है, लेकिन वह अकेला क्या-क्या करे ? आपको ही देखना पड़ेगा, आप नहीं देखेंगे तो और कौन देखेगा ?"

मालिक मन-ही-मन हंसे। दुलाल साहा ने अभी भी चालबाजी नहीं छोड़ी है। यह चालबाजी दिखलाकर ही इतने दिन उन्हें बुद्धू बनाया है दुलाल साहा ने। लेकिन अब और उसके चंगुल में नहीं फंसने वाले हैं वे।

ने कहा, "मैं ? मेरी वात कर रहे हो ?"
ा हां, इस निताई से भी मैं यही कह रहा था, देखने वाले तो
, लेकिन सव क्या आपकी तरह देखेंगे ? तव ऐसा होता तो वात
थी ?"

"क्यों, तुम तो हो ! तुम कहां जा रहे हो ?"

निताई वसाक इतनी देर से चुपचाप खड़ा था। दुलाल की ओर से
जवाव दिया, "यह तो जा रहा है मालिक! लड़के के आते ही यह
ार त्याग रहा है।"

"त्याग रहा है माने ? लेकिन जाएगा कहां ?"

दुलाल साहा वोला, "जाऊंगा, जिधर दो आंखें ले जाएंगी। गुरुजी
ुझे वुला रहे हैं न..."

"रहोगे कहां ? खाओगे क्या ? रुपये-पैसे की ज़रूरत नहीं पड़ेगी ? खर्चा-पानी कहां से आएगा ?"

दुलाल साहा मुसकराने लगा। फिर वोला, "संसार ही जव छोड़ दे रहा हूं मालिक, तो इन सवमें सिर खपाने की मुझे क्या पड़ी है ! जो चिंता करने वाला है, वही करेगा। मैं कौन होता हूं ?"

ज़रा ठहरकर फिर कहने लगा, "खैर, इस सवकी कोई चिन्ता मुझे नहीं है, आप सिर्फ एक वार आकर लड़के को आशीर्वाद कर जाएं। मेरी इतनी ही प्रार्थना है..."

मालिक की समझ में जैसे कोई वात नहीं आ रही थी। फिर पूछने लगे, "लेकिन तुम्हारी तो इतनी संपत्ति है ? लड़का सव सम्हाल पाएगा ? लड़का तो तुम्हारा डाक्टर है ! डाक्टरी कव करेगा, कव व्यवसाय देखेगा ?"

दुलाल वोला, "इस सवकी चिन्ता मुझे नहीं है मालिक ! जिन्हों
यह सव दिया है, वे ही देखेंगे। और नहीं देखें तो जाए सव भाड़ में। जाए सव चौपट। मुझे क्या है ?"

इतनी देर वाद जैसे चंडी वावू पर नज़र पड़ी, पूछा, "मालिक,
कौन हैं ?"

चंडी वावू ने खुद ही परिचय दिया, "जी, मुझे चंडी श्रीमानी

है—इलाके में नाटक-पार्टी है मेरी।"

निताई बसाक सुनकर जैसे उछल पड़ा, "जी हां, तो आप ही ने मानिक की दोस्ती का पता लगाया है न!"

चंडी बाबू ने बड़ी विनम्रता के साथ कहा, "छी-छी, मैं कौन होता हूं पता लगाने वाला! जिसका काम है, उसी ने किया। मैं तो निमित्त मात्र हूं, बस…"

"ठीक कहा। बिल्कुल ठीक कहा चंडी बाबू ने! हम लोग कोई कुछ भी नहीं हैं, सब वही है। वो कराते हैं, हम करते हैं। उनके नचाने पर ही हम नाचते हैं। लोग बेकार में 'मैं-मैं' करके ढोंग मारा करते हैं।"

इसके बाद मानिक की ओर देखकर बोला, "तो अब आता हूं मानिक, और भी कई जगह जाना है।"

कहकर और एक बार झुककर प्रणाम करने के बाद दुलाल साहा गाड़ी में जा बैठा। निताई बसाक भी साथ चला गया।

लेकिन सोमवार से पहले ही वह घटना घट गई।

कब किस कुघड़ी में एक रोज सदानंद को दुलाल साहा ने अपने यहां रखा था। काफी अरसा हो गया उस बात को। हो सकता है, सदानंद खुद ही आ पहुंचा हो। लेकिन वही सदानंद ऐसी आफत खड़ी कर देगा, यह किसने सोचा था!

उस रोज दुलाल साहा का लड़का विलायत से वापस आया। उसे लेने सब लोग कलकत्ते के हावड़ा स्टेशन गए थे। दुलाल साहा, निताई बसाक, नई बहू। शिवनगर पहुंचने पर गांव के सारे लोग स्टेशन पर मौजूद रहें, इसकी भी व्यवस्था थी। गांव के लोग फूल-माला लिए उसका स्वागत करने वाले थे। कैमरे से फोटो ली जाएगी। बी० डी० ओ० सुकांत राय अपनी जीप के साथ दल-बल लिए हाजिर रहेगा। सुकांत ने सबको सिखा रखा था। ट्रेन आते ही एक आदमी चिल्लाएगा—'वंदे मातरम्!'

साथ-ही-साथ और सब भी चिल्लाएंगे—'वंदे मातरम्।'

किसीने पूछा, "वंदे मातरम् क्यों? यह कोई स्वदेशी कुछ तो है नहीं…"

सुकांत ने कहा था, "किसने कहा कि स्वदेशी बात नहीं है? साहबी

का देश की भलाई करने के लिए आया है—जननी जन्मभूमि
का करने के लिए ही तो विजय बाबू विलायत से पढ़-लिखकर आ रहे
के आने से देश का कल्याण होगा, हम सबका भी भला होगा।"
निताई बसाक ने कह रखा था, "जरूरत समझे तो फी आदमी आठ
करके नाश्ता करा दें। धूप में खड़े रहना पड़ेगा, देखिएगा लोग
नहीं।"

सारा इन्तजाम पक्का था।

तो लड़के के विलायत से लौटने पर खर्चे के लिए दुलाल साहा ने
पांच हजार का बजट बनाया था। इतने लोगों का नाश्ता-पानी, दान-
दक्षिणा, इसके अलावा किशनगंज के मजिस्ट्रेट से लेकर पुलिस कमिश्नर
तक मिठाई-दही और मछली भिजवाने की व्यवस्था थी। खासा उत्सव
कर डाला था साहाजी ने।

लेकिन घर पहुंचने पर जब सब लोग विजय को घेरे थे, तब साहाजी
ने हठात् कांत को एक ओर बुलाकर पूछा, "अरे कांत, मालिक के यहां से
कोई नहीं आया क्या ?"

"मालिक के घर है ही कौन जो आता ? आने को एक मालिक आ
सकते थे, या फिर निवारण आता।"

वैसे निवारण आया भी था।

"निवारण आया था ?"

"जी हां, आपके कलकत्ता जाने के बाद निवारण बाबू आए थे रुपये
के लिए।"

"तो तूने रुपये दे दिए न ?"

"जी, मैं कैसे देता ?"

"कितने मांग रहा था ?"

"दो हजार के लिए कह रहा था।"

"और क्या जरूरत पड़ गई इतने रुपये की ? मकान-गाड़ी सब
तो हो गया है।"

कांत ने कहा, "यही लगता है, पोती की हालत फिर बिगड़ ग[ई]
कलकत्ते से बड़े-बड़े डॉक्टर आ रहे हैं, लम्बी फीस ले रहे हैं, दव[ा]

का भी खर्चा है। इसीलिए आया था, रुपये लेने।"

दुलाल साहा ने पूछा, "तो तूने क्या कह दिया ?"

"जी, मैं और क्या कहता, कह दिया कि साहाजी नहीं हैं, मैं कैसे दे सकता हूं रुपये ?"

"इसपर निवारण ने क्या कहा ?"

"क्या कहता, लौट गया। शायद और कहीं गया होगा रुपयों का इतजाम करने, मैंने उतना सब नहीं पूछा। देखा, उसकी आंखों में टपा-टप आंसू गिर रहे थे।"

घर उस समय नाते-रिश्तेदार और परिचितों से भरा था। इतने दिन बाद लड़का आया है डाक्टर होकर, लग रहा था, जैसे फिर से उसके विवाह का उत्सव हो रहा था। घर में आज भी विवाह वाले दिन की तरह ही धूम थी। फर्क सिर्फ इतना ही था कि आज दोनगोविंद घटक वहां नहीं था। बहू-भात की उस रात की तरह उसकी पागल जैसी बड़बड़ाहट भी नहीं थी। 'सदानद है' की रट भी नहीं थी। पद्रह भरी सोने की 'हाय-हाय' भी नहीं थी। आज सिर्फ खुशी-ही-खुशी थी। सुबह से ही लोगों का तांता लगा है, सबकी आवभगत भी पूरी तरह हो रही है।

कात ने हठात् आकर कहा, "साहाजी, निवारण सरकार मिला था..."

"निवारण! कहां? क्या कहा उसने ?"

"पूछा, आप हैं या नहीं घर में ?"

"तू क्या बोला ?"

"कह दिया कि साहाजी बहुत व्यस्त हैं।"

"तूने पूछा नहीं कि क्या काम है ?"

"जी हां, कह रहा था, कुछ रुपयों की जरूरत थी। हरतन की हालत खूब खराब हो गई है, अब जाए, तब जाए वाली बात है।"

"ठीक है, तू जा।"

कहकर कात को दुलाल साहा ने हटा दिया। लेकिन कांत के जाते ही उसे फिर पुकारा।

"कांत, सुन तो जरा।" कात के वापस आते ही दुलाल साहा ने कहा, "अच्छा, एक बार मालिक के घर जा सकता है तू ?"

कांत ने कहा, "जा क्यों नहीं सकता !"

"तो फौरन जा—दो हजार रुपये लेता जा। मालिक से कहना कि
ने भिजवाए हैं।"

"और कुछ भी कहना है ?"

"नहीं।"

कैश से रुपया लेकर कांत के चले जाने पर दुलाल साहा अपनी माला-झोली लेकर बैठ गया। कचहरी-घर के किवाड़ उसने अंदर से भिड़का लिए। आज हर कोई उसके साथ बात करना चाहेगा। लेकिन किसीके साथ भी बात करने की इच्छा नहीं हो रही थी उसकी। विजय के आने के बाद से जैसे सब कुछ उलट-पुलट हो गया है। लड़का विलायत जाकर जैसा सोचा था, वैसा कुछ भी नहीं हुआ। विजय वैसे-का-वैसा ही रह गया। कलकत्ते से यहां किशनगंज आने तक एक सिगरेट या चुरुट कुछ भी नहीं पी। ट्रेन से उतरते ही इतने लोगों के बीच प्लेटफार्म पर ही दुलाल साहा के पांव छुए। दुलाल साहा ने ऐसा नहीं सोचा था। वैसे दूसरा कुछ होने पर भी कुछ कहने को नहीं था।

"रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?"

"नहीं, आप कैसे हैं बाबा ?"

दुलाल साहा ने उस बात का जवाब न देकर कहा, "अपने निता
काका का पांव नहीं छुए तुमने ?"

विजय सचमुच ही पहचान नहीं पाया। कितने दिन भी तो हो ग
जैसे सब कुछ बदल गया है। हावड़ा स्टेशन भी कैसा था, अब कैस
गया है। इसके बाद किशनगंज स्टेशन देखकर भी उसे बड़ा अजीब ल

"वह देखो, हम लोगों की शुगर मिल है। चिमनी दिखलाई
है..."

"और वह देखो, हम लोगों की नई गद्दी।"

दुलाल साहा का मकान भी दूर से दिखलाई दे रहा था।
के जाते वक्त मकान इतना बड़ा नहीं था। काफी छोटा था। च
इस तरह चारदीवारी से भी नहीं घिरा था। आज चारों ओ
हो गया था। पूरा किशनगंज स्टेशन पर आकर हाजिर हो ग

"आप मिस्टर सुकांत राय हैं, और आप हैं मिसेज राय, आपकी पत्नी···" निताई बसाक ने परिचय करा दिया।

इतने लोगों में दुलाल साहा सिर्फ एक चेहरा ढूंढ रहा था। मानिक का वहां होना असंभव था। वह कभी भी संभव नहीं हो सकता था। यहां पर उनकी आशा करना ही गलत था। फिर भी जैसे एक बार दिखलाने की इच्छा थी दुलाल साहा को। काफी ऐश्वर्य और ठाट-बाट हो गया है आज दुलाल साहा का। विजय का आज डॉक्टरी पास करके किशनगंज लौटना भी एक ऐश्वर्य ही था। यह ऐश्वर्य एक बार मानिक को दिखला पाता तो बड़ा अच्छा रहता।

हठात् नजर पड़ी। देखा, दूर प्लेटफार्म पर निवारण जैसे भीड़ में किसीको खोजता फिर रहा है।

जरूर विजय को देखने ही आया होगा।

'निवारण, ओ निवारण!'

भीड़ में से ही पुकारने की इच्छा हुई। लेकिन तब तक निवारण दूसरी ओर चला गया। दुलाल साहा उसी ओर देखने की कोशिश करने लगा। उसी ट्रेन से जैसे कोई एक जना उतरा। उसी ट्रेन से। कोट-पैंट पहने, गले में डॉक्टरों वाला स्टेथेस्कोप झूल रहा था। साथ में एक और भी कोई था, उसके हाथ में बैग था। डॉक्टर का बैग होगा।

"उधर क्या देख रहे हैं साहाजी?"

"वह कौन है उधर, निवारण लग रहा है न?"

उस आदमी ने कहा, "जी हां, निवारण ही है। कलकत्ते से डॉक्टर आया है, इसी ट्रेन से।"

बस, इतना ही। किशनगंज के प्लेटफार्म पर यहीं तक। उसके बाद लोगों की भीड़ घर आ पहुंची। सभी विजय को देखने आ रहे थे। खाने-पीने का जोरदार इंतजाम था घर पर। पूड़ियां तले जाने की सोंधी महक से हवा भर उठी थी। मजिस्ट्रेट साहब, पुलिस कमिश्नर साहब सब आकर खा गए हैं। गांव के मजूर और माझी वगैरह अभी सामने बैठे आंगन में खा रहे हैं। लेकिन दुलाल साहा ने जैसे खुद को भीड़ से दूर कचहरी-घर के अन्दर छुपा रखा है। मानिक कभी नहीं आते इस घर में

क बार आए थे। वही गुरुदेव जब आए थे तभी। अपनी जन्म-पत्नी
ाने। उसके बाद से खाली निवारण को भेजकर रुपया मंगा लेते हैं।
कभी न आए। दुलाल साहा का फर्ज़ था, जाकर उनसे कहने का,
लिए गया था। सभीके साथ उन्हें भी निमंत्रित कर आया था।

"बाबा!" हठात् अंधेरे कमरे में आकर नई बहू हैरान रह गई,
ाप यहां हैं, हम लोग कब से खोज रहे हैं आपको। आपकी तबीयत
क नहीं है क्या?"

"नहीं बेटी, तबीयत को कुछ भी नहीं हुआ। तुम मेरी चिन्ता न करो।"

"आपने भोजन भी नहीं किया है?"

"मैं आज भोजन नहीं करूंगा, उसके लिए तुम परेशान न होओ
कुछ लेना हुआ तो ले लूंगा।"

ज़रा रुककर दुलाल साहा ने फिर पूछा, "विजय कहां है?"

"ऊपर हैं, उन्होंने खाना खा लिया है।"

"ठीक है, आज तुम विजय को ही देखो। इतने दिन बाद घर लौटा
है, उसे देखो, मेरी चिन्ता न करो।"

"वह सब कुछ सुनने वाली नहीं हूं मैं।"

कहकर नई बहू ने सीधे बढ़कर दुलाल साहा का हाथ पकड़ लिया।

"आपके लिए संध्या करने का सारा इंतज़ाम कर दिया है, इस तरह
बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। संध्या-वंदन करके जल पी लीजिए, उसके
बाद जो चाहे कीजिएगा। उठिए—काफी रात हो गई है।"

दुलाल साहा ने नई बहू के चेहरे की ओर अच्छी तरह देखा; जैसे
अच्छी तरह मिला लेना चाहता हो। न ही मिले तो जैसे अच्छा हो। न
मिलने में ही खैर है।

अचानक बाधा पड़ी। कांत आ पहुंचा।

"क्यों रे, दे आया?"

"जी हां।"

"किसके हाथ में दिए?"

"निवारण सरकार के हाथ में।"

"ठीक है।"

इसके बाद कांत चला जा रहा था। दुलाल साहा ने फिर पुकारा, "अरे कांत, सुन तो जरा। रोगी की हालत कैसी है अब ?"

कांत बोला, "लगा, काफी खराब है। कलकत्ते से तीन-तीन डॉक्टर आए हैं। सरकार बाबू का चेहरा भी गंभीर था। कागज पर दस्तखत कराकर मैं चला आया, डर के मारे कुछ पूछा नहीं मैंने।"

कांत के जाते ही नई बहू ने पूछा, "हरतन की बात कर रहे थे न बाबा ?"

जैसे बात को दबा देने के लिए ही दुलाल साहा उठकर खड़ा हो गया। बोला, "तुम्हें वह सब सुनने की जरूरत नहीं है। आज इतने दिन बाद विजय आया है घर में, तुम कोई पागलपन न कर बैठना।"

कहकर दुलाल साहा नई बहू के साथ ठाकुर घर की ओर चल दिया।

लेकिन रात जब काफी गहरी हो गई, किशनगंज की सारी आवाजें जब बन्द हो गईं, जब सिर्फ रास्ते के कुत्ते दुलाल साहा के घर के सामने पड़े जूठे पत्तों के लिए झगड रहे थे, तभी अचानक एक आवाज सुनकर दुलाल साहा की नींद टूट गई।

पहली बार खुमारी में उतना साफ सुनाई नहीं दिया। लेकिन दोबारा सुनकर कान सजग हो उठे।

'बोलो हरि, हरि बोल !'

और साथ ही दुलाल साहा ने अपने दोनों कान दोनों हाथों से ढक लिए, मानो कान ढकने से दुनिया में लोगों के कानों से बात ढकी रह जाएगी। लेकिन हाथ जरा हटाते ही आवाज और भी स्पष्ट होकर कानों में गूंजने लगी। फिर कान ढके, जिससे आवाज न सुननी पड़े। लेकिन आवाज तो पास आ गई थी। अब दोनों कानों को जोर से दबा लेने पर भी आवाज को रोका न जा सका। आवाज बिलकुल साफ सुनाई दे रही थी—बोल हरि, हरि बोल !

सुबह होते ही दुलाल साहा का काम-काज शुरू हो जाता है। सुबह माने भोर पांच बजे। तो भोर पांच बजे ही नित्यकर्म पालन करना हमेशा का नियम है। सबसे पहला काम है इच्छामती के घाट की सीढ़ियों को

हाथों धोना।

लेकिन उस दिन जी बड़ा खराब था। अपने-आपको बड़ा कमज़ोर महसूस कर रहा था। ऐसी कमज़ोरी दुलाल साहा के मन में कई बार आ चुकी है। बल क्या है और दुर्बल क्या है, इस बात को लेकर दुलाल साहा ने काफी सोचा है। लेकिन अब वह एक ऐसे निर्णय पर आ पहुंचा है जहां से उसे हिलाने की क्षमता किसीमें नहीं है। अगर बल अत्याचार है, या अगर अन्याय ही है तो उसका जवाब भी है दुलाल साहा के पास। वह जवाब बाहरी आदमी को नहीं देता, देता है खुद को।

आस-पास जब कोई भी नहीं होता तो माला-झोली लिए हरि-नाम का जप करते-करते वह अपने से ही बात किया करता है।

कहता, 'मैं क्या कर सकता हूं, तुम्हीं कहो। दुनिया ही ऐसी हो गई है कि तुम चाहो तो भी कोई तुम्हें अच्छा रहने नहीं देगा।'

फिर कहता, 'कोई-कोई कहता है कि मैं साधु पुरुष हूं। ठीक है, मैं साधु पुरुष नहीं हूं, यह भी कौन कह सकता है? अरे आज पैसा है, इसी-लिए न मैं साधु हो गया हूं। पहले मालिक के पास पैसा था, तब मालिक को भी लोग साधु पुरुष कहते थे।'

इसके बाद माला को और भी ज़ोर से फेरते हुए कहने लगा, 'अ... यहां पर अपनी एक बड़ी पत्थर की मूर्ति और बनवानी होगी जिससे म... के बाद भी लोग मेरी पूजा किया करें।'

मन-ही-मन अपने प्लान की दाद देने लगा दुलाल साहा।

'इसके अलावा पैसा पास में होने पर और बहुत कुछ किया जा स... है। मिसाल के तौर पर जैसे बच्चों की टेक्स्ट बुकों में अपनी जीवनी... करा दी जा सकती है। सिर्फ थोड़ा पैसा खर्च करने की बात है औ... भी नहीं। इसके बाद हर स्कूल में उस पुस्तक को पढ़वाने की भी व्यव... जा सकती हैं। पैसा खर्च करने पर क्यों नहीं पढ़ाई जाएगी? हे... को कुछ देना पड़ेगा, बस। पैसा पास होने पर और भी बहुत कु... जा सकता है।'

दुलाल साहा ने खुद अपने से ही सवाल किया, 'अच्छा... क्या किया जा सकता है, कहो तो सुनूं ज़रा?'

'क्यों ? इस किशनगंज का नाम तक बदलकर दुलाल गंज किया जा सकता है।'

'किया जा सकता है ?'

'जरूर किया जा सकता है। पैसे के ज़ोर पर रोज़ कलकत्ते की सड़कों के नाम बदले जा रहे हैं। और इस छोटे-से गांव का नाम नहीं बदला जा सकता ?'

वाह, क्या बात कही है! दिमाग में यह ख्याल आते ही दुलाल साहा की सारी उदासी दूर हो गई और उसका मन फिर खुशी से भर उठा। तब तो वह पूरी तरह अमर हो जाएगा। इसके बाद फिर कोई दुलाल साहा को नहीं ठग पाएगा। अब विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी के साथ उसका नाम भी इस तरह चिरस्थायी हो जाएगा। स्टेशन का नाम भी बदला जा सकता है। रेल-आफिस तो घूस का गढ़ है। स्टेशन का नाम बदलने के लिए भी थोड़ी घूस दे दी जाएगी। एक हज़ार से काम न बना तो एक लाख से बनेगा। एक लाख से भी नहीं हुआ तो दो लाख सही। निताई कह रहा था कि कलकत्ते के किसी अस्पताल के लिए रुपया देकर एक मारवाड़ी ने उस अस्पताल का नाम ही अपने नाम पर करवा लिया। स्टेशन पर आकर जब रेल रुकेगी तो यात्री लोग पूछेंगे, 'क्यों भाई, यह कौन-सा स्टेशन है ?'

यहां के लोग कहेंगे—'यह दुलालगंज है।'

'दुलाल साहाजी के नाम पर ही शायद इसका नामकरण हुआ है ?'

'जी हां, हमारे इसी गांव के थे। बड़े साधु पुरुष थे। जीवन-भर नदी के घाट की सीढ़ियों को उन्होंने अपने हाथों झाड़ू लेकर धोया है। बड़े देवतुल्य पुरुष थे।'

असल में इसी तरह बड़े आदमियों के नाम का प्रचार होता है। बचपन से ही लोग पुस्तक में विद्यासागर का नाम पढ़ते हैं। उनकी लिखी प्रथम भाग पढ़ते हैं। नहीं तो मनुष्य तो सभी हैं। आदमी में गुण-दोष न हो, यह भी कोई बात हुई ? पैसा होने पर वे लोग दुलाल साहा को भी विद्यासागर बना सकते हैं। दुलाल साहा के दान और ध्यान की बातें

कितावों के पेजों में भर सकते हैं। यानी सभी कुछ हो सकता है, सभी कुछ संभव है।

भोर हो आई थी।

स्नान करने के वाद माला फेरते दुलाल साहा घर की ओर लौट रहा था। कल रात वह मनहूस आवाज़ सुनकर मन वड़ा खराव हो गया था। अव फिर से चंगा हो उठा। इस दुनिया में सव नश्वर है। एक हरि-नाम ही सत्य है। तभी तो कहा है—नामैव केवलम्…

"नमस्कार साहाजी!"

"कौन?"

"जी, मैं सतीश हूं।"

"सतीश! सतीश कौन? विधू सुनार का लड़का, या शशी वैद्य का जमाई सतीश—कौन-सा सतीश?"

"जी नहीं, मैं व्लॉक आफिस का क्लर्क सतीश जोयादार हूं।"

"ओह, तो तुम सुकांत वावू के ऑफिस में काम करते हो? अच्छा-अच्छा, सुवह घूमने निकले हो?"

"जी हां।"

"वहुत अच्छा करते हो। सुवह टहलने के साथ थोड़ा हरिनाम भी ले लो तो और भी अच्छा है। कलियुग में नाम ही सत्य है और सव मिथ्या है। जानते हो न, शास्त्रों में लिखा है—नामैव केवलम्…"

वात सतीश जोयादार की समझ में आई या नहीं, कौन जाने। हो सकता है, समझ में आई हो; हो सकता है, न आई हो!

उसने कहा, "जी, हमारे भाग्य में कहां उतना पुण्यफल है साहाजी! वही देखिए न, कलकत्ते में नौकरी शुरू करके यहां जंगल में पड़ा हूं, कितने लोग कलकत्ते में नौकरी करते हैं, घर की रोटी खाकर मज़े से पैसा कमा रहे हैं, अपने लिए यही कर्म-भोग लिखा था!"

"छिः भैया, छिः!" कहकर दुलाल साहा ने माला फेरते-फेरते ही दोनों हाथ हरि के नाम पर माथे से लगा लिए।

फिर कहा, "हरि के सामने कोई छोटा-वड़ा नहीं भैया, उसके लिए

सब समान हैं। और कहीं क्यों जाते हो, मेरी ही बात ले लो न, मैंने जो इतना रुपया कमाया है, उसके लिए क्या घाट धोना बन्द कर दिया है? तुम्हारे पास पैसा होने दो, फिर देखोगे कि पैसे में भी शांति नहीं है। पैसा होने पर भी जैसा है, पैसा न होने पर भी वैसा ही है! शांति पानी है तो हरिनाम लो, देखोगे यह पैसा, यह नौकरी सब तुच्छ हो जाएगी।"

मनोज ने कहा, "आपके पुत्र कल विलायत से लौटे हैं।"

"क्यों, तुम लोग आए नहीं? तुम लोगों को भी तो निमंत्रित किया था मैंने।"

"गया क्यों नहीं था! रात काफी हो गई थी इसलिए क्वॉर्टर वापस नहीं लौटा, यहीं एक परिचित के घर रुक गया था।"

घर के पास पहुंचते ही नजर किसी चीज पर अटक गई। पुलिस का दरोगा लग रहा है। सुबह भी ठीक से नहीं हुई थी अभी। इतनी सुबह किशनगंज थाने का दरोगा यहां क्या करने आया है?

दुलाल साहा ने आगे बढ़कर पूछा, "फिर और क्या हो गया? फिर कोई गड़बड़ हो गई क्या?"

निताई बसाक अभी तक दिखलाई नहीं दिया था। दुलाल साहा को देखकर वह भी सामने आ गया।

"क्या हुआ? सदानद के खून का कुछ पता लग पाया?"

निताई बसाक बोला, "उसीकी इनक्वायरी करने के बाद ये लोग यहां आए हैं।"

"ओह, तो खूनी पकड़ा गया? अपराधी को सजा मिलनी चाहिए भाई, बड़ा भरोसे का आदमी था सदानंद। उसके जाने के बाद से मेरी पटसन की गद्दी का हाल ही खराब हो गया है। उस जैसा भरोसे का आदमी ही नहीं मिल रहा।"

निताई बसाक ने कहा, "नहीं, ऐसी बात नहीं है।"

दरोगा साहब ने बात साफ की, "असल में सदानंद के मर्डर-केस की ही इन्क्वायरी चल रही थी, उसी सिलसिले में हम लोग बड़े चातरा गए थे।"

"बड़े चातरा? वह कहां है?"

जी, वर्द्धमान जिले में।"

"लेकिन वहां सदानंद का कौन था? जहां तक मुझे मालूम है, सदा-
का तो तीन कुल में कोई नहीं है।"

"आप ठीक कह रहे हैं, उसका कोई नहीं है लेकिन एक व्यक्ति है।"

दुलाल साहा ने पूछा, "कौन है वह ?"

"आप उसे पहचानेंगे। उसका नाम दोलगोविंद प्रामाणिक है।"

दुलाल साहा ने नाम दुहराया, "दोलगोविंद! इस नाम के किसी
आदमी का तो ध्यान नहीं आ रहा है।"

फिर निताई बसाक की ओर देखकर कहा, "तुम पहचानते हो
क्या ?"

निताई बसाक को जवाब नहीं देना पड़ा। दरोगा साहब ही बोले,
"वह एक घटक है, घटकी का काम करता है, आपके लड़के की शादी कराई
थी उसने।"

"ओह, हां-हां, याद आया..."

इतनी देर बाद जैसे याद पड़ा दुलाल साहा को। बोला, "लेकिन
उसका तो दिमाग खराब हो गया था, बहू-भात के दिन उसने न तो
खाया न पिया, खाली बड़बड़ा रहा था।"

"वह क्यों बड़बड़ा रहा था, उसके बारे में कुछ जानते हैं आप ?"

"वह तो खाली एक ही बात कह रहा था कि किसीने उसका पन्द्रह
भरी सोना ठग लिया है !"

"जी नहीं, वह सब फालतू बात है। हमने बड़े चातरा जाकर उसका
स्टेटमेंट लिया है। अब वैसी कोई बात नहीं है।"

"तो उसे साथ में ले क्यों न आए एक बार ? मैं उससे बात करता,
पूछता कि सदानंद का खून उसने किसलिए किया ?"

दरोगा साहब बोले, "जी नहीं, सदानंद का खून उसने नहीं किया।"

"तब ? तब किसने किया खून ?"

"उसकी जांच अभी चल रही है।" कहकर दरोगा ने इधर-
देखा। फिर पूछा, "आप कौन हैं ?"

सतीश जोयार्दार इतनी देर से खड़ा-खड़ा सब सुन रहा था।

कहा, "मेरा नाम सतीश जोयार्दार है। ब्लॉक ऑफिस में क्लर्क हूं।"

दुलाल साहा की ओर देखकर दरोगा साहब ने पूछा, "इनसे कोई काम है आपको, मुझे आपसे अकेले मे कुछ बातें करनी थीं।"

वैसे एक सतीश को छोड़ उस वक्त आस-पास कोई भी नही था। बातचीत दुलाल साहा की कचहरी के सामने खड़े होकर हो रही थी। पास ही कांत के बैठने की कोठरी थी। इतनी सुबह उसके आने की बात नही थी। थोड़ी देर बाद गद्दी की चाबी लेने के लिए दरबान आएगा। दूध दोहने ग्वाला आएगा। उसके बाद आएगे देनदार, किसान और दूसरे लोग। दुलाल साहा तब माला-झोली लिए महाजनी का कार-बार करेगा। दलील, दस्तावेज लिखे जाएगे। कांत ही एक तरह से दुलाल साहा का खजांची या मुंशी जो भी कहिए, था। पहले सदानंद भी यही काम करता था। सदानंद ही हिसाब की घपलेबाजी, इनकम-टैक्स की गड़बड़ और दो-नबरी हिसाब रखता था।

दुलाल साहा ने कहा, "अच्छा तो भैया सतीश, तुम फिर आना। देख रहे हो न, ज़रा चैन से बैठकर हरिनाम ले सकू, उसमे भी कहां-कहां की अड़चनें आ खड़ी होती हैं।"

सतीश फिर नही रुका। वह जैसे जान बचाकर भागा।

निताई बसाक ने कहा, "चलो, यहां नही, बाहर का कोई आ सकता है। ये बातें अकेले मे करना अच्छा रहता है।"

"लेकिन बात क्या है?"

दुलाल साहा की समझ मे ही नही आ रहा था, इसमे इतनी लुका-चोरी की क्या जरूरत है! सदानंद का खून हुआ है, तुम लोग उसका पता लगाओ। हो सके तो खूनी को पकड़ो। पकड़कर उसे फांसी पर लट-काओ। हमसे उसका क्या सम्बन्ध? इसके अलावा अभी कल ही विजय इतने दिन बाद विलायत से लौटा है। कल काफी रात तक गाना-पीना हुआ है। घर के सामने अभी भी जूठे पत्तों का ढेर पड़ा है। मिट्टी के टूटे कुल्हड़-सकोरे पड़े हैं। उसके बाद ही सुबह-सुबह यह क्या हंगामा!

अंदर आकर फिर भी थोड़ी आड़ हुई। दरोगा साहब बोले, "आपका तो एक ही लड़का है न, जो कल विलायत से लौटा है?"

ताई वसाक ने कहा, "हां।"
लड़के की शादी आपने कहां से की ?"
"नदिया ज़िले के मालिकन्दा से, मालिकन्दा के सामन्त घराने की
ी है मेरी वहूरानी, मैं उसे नई वहू कहकर पुकारता हूं।"
"आपके लड़के की ससुराल में कौन-कौन हैं ?"
निताई वसाक ने रोककर पूछा, "आप इतना सब क्यों पूछ रहे हैं?
ानंद के खून से इसका क्या सम्वन्ध है ?"
दरोगा साहब ने कहा, "है वसाक वावू, सम्बन्ध नहीं होता तो ऐसे
ही पूछ रहा हूं! दोलगोविंद प्रामाणिक ने जो स्टेटमेंट दिया है, उसमे
मिला रहा हूं।"
इसके वाद दुलाल साहा की ओर देखकर कहा, "इतना सब-पूछने
के लिए आशा है, आप अन्यथा न लेंगे। अच्छा, आपने ज़रूर ही अच्छी
तरह देख-सुनकर और खोज-वीन करने के वाद ही लड़के की शादी तय
की होगी ?"
"यह वात क्यों पूछ रहे हैं ?"
"क्यों पूछ रहा हूं, यह वात भी जल्दी ही मालूम हो जाएगी। मैं भी
चाहता हूं कि दोलगोविंद की वात गलत निकले। उसकी वात गलत साबित
होने पर आपकी तरह मुझे भी खुशी होगी।"
निताई वसाक ने कहा, "दोलगोविंद पागल आदमी है, उसके स्टेट-
मेंट की कीमत ही क्या है ?"
"हमारे लिए कीमत है।"
दुलाल साहा वोला, "ठीक ही कह रहे हैं आप। सदानंद के खून क
अगर इससे कोई किनारा हो सके तो ज़रूर कीमत है इस वात की।"
दरोगा ने पूछा, "आपने पूरी तरह छान-वीन की थी कि आप
वहूरानी वाकई सामन्त घराने की लड़की है ?"
"सो तो की ही थी। आखिर लड़के का विवाह कर रहा था, व
खोज-खवर लिए ही कर देता ?"
"लेकिन दोलगोविंद का तो कहना है कि उसने मछुए की लड़
शादी करवा दी आपके लड़के की।"

"मछुए की लड़की ? कहते क्या हैं आप ?"

अचानक नई बहू आ पहुंची; बोली, "बाबा !'

पुलिस देखकर वह भी हैरान थी। उसने कहा, "आपकी पूजा का प्रबन्ध हो गया है बाबा, चलिए।"

दरोगा साहब, निताई बसाक, दुलाल साहा सब टकटकी लगाए नई बहू को देखने लगे। यह क्या हो गया ! ऐसा कुछ भी हो सकता है, किसने सोचा था ? नई बहू के चेहरे पर क्या उसकी छाप पड़ी है ?

भादों का महीना ही नाटक वालों के लिए खराब होता है। पूजा-वूजा भी नहीं होती यहीं। उन दिनों शादी-ब्याह भी नहीं होते। मलमास असल में भादों का महीना ही है। इन दिनों चंडी बाबू का दल अपने चितपुर ऑफिस में कुर्सी-मेज़ों पर धूप और गंगाजल के छींटे मारा करते हैं। गणेशजी के कपाल पर फिर से फूल और चंदन जुटता है।

चंडी बाबू चुपचाप बैठे-बैठे बीच-बीच में जंगले से बाहर ताक लेते।

चंडी बाबू कहते, "फटिक, सोचता हूं, अब दल तोड़ ही दूंगा।"

तम्बाकू लगाते-लगाते फटिक कहता, "कुछ रोज और देख लीजिए न अधिकारीजी, कुछ रोज और सही।"

"अरे चल, एक पैसे की आमदनी नहीं, और खाने को इतने पेट !"

फटिक कहता, "जी, मैं तो कई रोज से खा ही नहीं रहा।"

"क्यों ? खा क्यों नहीं रहा ?"

चंडी बाबू ने फटिक की ओर देखा, फटिक के नसीब में अगर डांट खाना है तो स्नेह भी कम नहीं जुटता। फटिक यह बात जानता है। नहीं तो इतने दिनों से फटिक बना क्यों है इस दल के साथ ?

"क्यों, क्या हुआ तुझे ? खाता क्यों नहीं है ?"

फटिक कहता, "जी, आमदनी-वामदनी कुछ भी नहीं है न !"

"आमदनी नहीं है, इसलिए तू खाएगा नहीं ? मेरे ऊपर इतनी दया ?"

"जी, दया की बात नहीं है।"

"तब ? दया नहीं है तो और क्या है ?"

दल का हाल तो देख रहा हूं न मैं।"
...क बोला, "दल का हाल तो देख रहा हूं न मैं। खाना न खाकर मुझे कृतार्थ कर
...ल देख रहा है! तू सोचता है, खाना न खाकर मुझे कृतार्थ कर
...? तूने सोचा क्या है?"
...टिक की बोलती बंद हो गई। चंडी बाबू का पारा चढ़ जाने पर
...हने का ही नियम है। गुस्से में अधिकारीजी कुछ भी कर बैठते हैं।
"तू सोचता है, तू यहां बगैर खाए-पिए मरेगा और मैं देखूंगा?"
...कूफ समझ रखा है मुझे? बोल, बोलता क्यों नहीं? बोल? बेवकूफ
...झ रखा है मुझे?"

फटिक जिस तरह चिलम गर्मा रहा था, गर्माता रहा, चूं तक नहीं
...की उसने।

"आज सुबह क्या खाया? सुबह, बोल, जवाब दे?"

"जी लैया और बताशे।"

"कितने की?"

"यही कोई आठ आने की।"

चंडी बाबू जरा ठंडे पड़े। फिर कहने लगे, "आठ आने की लैया-बताशे अकेले चट कर गया, और कहता है कि कुछ भी नहीं खाया! उसके बाद फिर खाना नहीं खाया कुछ?"

"जी हां, खाया।"

"खाया! तब क्या भात कम पड़ गया था?"

"जी, भात क्यों कम पड़ने लगा। हां, तरकारी कम पड़ गई थी।"

"किस चीज़ की तरकारी थी?"

"आलू-परवल की।"

"कम क्यों पड़ी? पैसे नहीं थे पाकेट में?"

फटिक बोला, "जी, वो बात नहीं है। सोचा, मछली के स...
खाऊंगा, इसीलिए तरकारी और नहीं ली।"

"ठीक है, तो मछली क्यों नहीं ली?"

"जी, गोश्त बना था न! गोश्त छोड़कर मछली कैसे खाता?"

चंडी बाबू और नहीं सम्हाल पाए अपने-आपको। बोले, "...
कहीं के, आलू-परवल की तरकारी दबाई है, मछली खाई है, गो...

किया है, फिर भी कहता है, खाना नहीं खाया ? भस्मासुर आ पुना है, भस्मासुर ! अब गुरु को भी खाएगा, साथ में मुझे भी खाएगा।"

"जी, कसम से—खाना ठीक से नहीं हुआ आज !"

"और कितना ठीक से होगा ? कब होगा ? मुझे खाकर पेट भरे तो मुझे ही खा डाल। चल, खा···"

फटिक डर के मारे उठ खड़ा हुआ। फिर बोला, "आप बेकार गर्म हो रहे हैं।"

"गर्म नहीं होऊंगा ? इस तरह बेवकूफी की बात सुनकर मिजाज गर्म नहीं होगा ? मुंह तक ठूंसने के बाद यहां आकर रो रहा है कि खाना ही नहीं खाया, नवाब साहब ने !"

फटिक बोला, "वही तो कहता हूं, खाना हो ही कहां पाया ?"

"क्यों, इतना सब डकारकर आपका खाना ही नहीं हुआ ! वृकोदर है क्या ? वृकोदर है तो पांडवों में जाकर पैदा होता, यहां मेरे नाटक-कंपनी में क्यों मरा है आकर ? हां तो, जरा मैं भी सुनूं, आपके भोजन में क्या कमी रह गई ?"

"जी, मैं तो गोश्त के साथ ही खा रहा था···"

"फिर ?"

"हां तो, खाना जब करीब-करीब खा ही चुका था तो मैनेजर बाबू ने कहा कि कालिया बना है गल्दा चिंगड़ी का।"

"हूं, तो वह भी साफ किया आपने ?" बड़े बाबू जैसे आग बबूला हो रहे थे। फटिक को अब मारें कि तब मारें।

फटिक जल्दी से बोला, "जी नहीं, खाया नहीं। कसम से खाया नहीं। आपके पांव छूकर कसम खाता हूं—खाया नहीं

"तो किसने आपको अपने सिर की सौगंध [illegible] खाने को [illegible] किया था ? ठूंस क्यों नहीं लिया ?"

"यही बात तो कही मैंने मैनेजर बाबू [illegible] कहा—कालिया है, यह पहले क्यों नहीं बतलाया ! [illegible] तो बेकार [illegible] की तरकारी और मछली से पेट नहीं [illegible]···'

बड़े बाबू ने जेब से एक अठन्नी [illegible]

इए। जाकर उसे भी खा आइए।"

फटिकने ना-ना करते हुए कहा, "नहीं-नहीं, रहने दीजिए।"

"नहीं-नहीं, आप जरूर खा आइए, नहीं तो सारी रात आपको नींद हीं आएगी और मेरी जान खाओगे।"

फटिक फिर भी नहीं हिल रहा था। बोला, "नहीं, दल की आमदनी बंद है।"

"दल की आमदनी के लिए आपको आंसू बहाने की ज़रूरत नहीं है, मैं अकेला ही बहुत हूं, अब जाइए।"

"आप कह रहे हैं तो..."

'हां, ठूंसकर आइए..."

फटिक हुक्का आगे बढ़ाकर चटपट अठन्नी उठाकर जा ही रहा था; लेकिन दरवाज़े पर हठात् वंकू को देख हैरान रह गया।

"अरे वंकू दा!"

चंडी बाबू भी हैरान थे। वंकू के बाल सूखे और बेतरतीब थे। उसका चेहरा भी आधा सूख गया था, जैसे कई दिन से खाना न खाया हो, मोया न हो!

"क्या खबर है वंकू? अंजना जीवित है या चल बसी?"

कहते-कहते जैसे चंडी बाबू को मजा आ रहा था। जैसे काफी दिनों के बाद वंकू को सामने पाकर अपने मन का गुब्बार उतारने लगे।

"अरे, मैंने तो तभी कहा था, जा रहे हो, जाओ, लेकिन यह राजरो है, ठीक नहीं होता। एक बार जिसे पकड़ा है इस रोग ने, तो फिर ज लेकर ही छोड़ा है। तुम गए, साथ में मेरा भी पटरा बैठा गए! अगर कहोगे कि अधिकारीजी, मुझे नौकरी दीजिए, मैं एक्ट करूंग वह भी मैं तुम्हें नहीं दे पाऊंगा।"

कहकर गुड़गुड़ कर हुक्के में दम लगा चंडी बाबू वंकू को दिख धुआं छोड़ने लगे। वंकू अभी भी कुछ नहीं बोला। उतरा चेहर चुपचाप खड़ा रहा।

उधर ही देखकर चंडी बाबू फिर कहने लगे, "क्यों? कहा मैंने? अब जवाब क्यों नहीं देते? मेरी बात का जवाब दो। तब

कि चंडी बाबू क्या जानते हैं। तब तो सोचते होंगे, जमींदार के यहां रहकर मजे में तर माल उड़ाने को मिलेंगे ! सारी पिरीत खत्म हो गई ? तभी तो कहा है—'पचके खा और देख-सुनके प्यार कर।'"

इतने पर भी बंकू चुप रहा।

"खैर, तो अब तुम्हारा बक्सा-पिटारा कहां है ? वह सब नहीं लाए? या कि दुःख में वह सब भी फेंक आए ? इतना ही दुःख है मन में तो नौकरी का शौक किसलिए ? पेट की चिंता में ही तो यहां आए हो! यही एक ऐसी चीज है भैया, जिसके मारे सब बाबू मैं रहते हैं। इसीलिए तो भगवान से कहता हूं—और जो दिया सो ठीक, लेकिन इस पापी पेट को किसलिए दिया है ? यह पेट न होता तो जीवन के सारे झंझट चुक जाते ? तुम्हें भी नौकरी के लिए मेरे दरवाजे पर नहीं आना पड़ता, और मुझे भी इस बुढ़ापे में कभी बाकुड़ा तो कभी गोहाटी के धक्के न खाने पड़ते।"

कहकर गुड़ुम से फिर एक दम लगाया हुक्के में।

इसके बाद ही जैसे चंडी बाबू एक भारी भूल कर बैठे।

बोले, "अच्छा, ठीक से दाह-क्रिया तो कर आए हो लड़की की? कहीं पानी-वानी में तो नहीं बहा आए ?"

बात और पूरी नहीं हो पाई। बंकू इतनी देर से गुस्से के मारे फटा पड़ रहा था। एकदम जैसे बिजली की-सी तेजी से आगे बढ़कर उसने चंडी बाबू के मुंह पर जोर से मुक्का मारा। और साथ ही चंडी बाबू अपने हुक्के को लिए-दिए कुर्सी से छिटककर जमीन पर जा पड़े। लेकिन इतने पर भी जैसे बंकू का गुस्सा कम नहीं हुआ। मरे को और भी मारने के लिए वह आगे बढ़ा, लेकिन तब तक पीछे फटिक आ गया था।

माजरा देखकर फटिक चौंक उठा।

"यह क्या कर बैठे बंकू ? अधिकारीजी को ही मार बैठे ?"

बंकू का गुस्सा अभी कम नहीं हुआ था। गुस्से के मारे हांफने लगा था।

"गुस्सा नहीं आएगा ? झूठा कहीं का !"

"ऐसी कौन-सी बात कह दी ?"

"अरे, इसका खून नहीं किया, यही बहुत है। मेरे साथ बात करने

है। मैं जैसे यहां इसकी नौकरी करने आया हूं ! लेकि
नौकरी पर, किसे करनी है ऐसी नौकरी ?"

लेकिन चंडी वावू की हालत तव काफी गम्भीर थी। फर्श पर पड़े-
कराह रहे थे। शायद वात करने तक की ताकत नहीं रह गई थी।
लने की कोशिश कर रहे थे, लेकिन मुंह से वोल नहीं निकल रहा था।
लने जाकर कराह उठते थे।

"अव क्या होगा ?"

वगल के कमरे वालों ने शायद आवाज़ सुनी। वे लोग भी दौड़े,
"क्या हुआ ? चंडी वावू को क्या हुआ ? गिर पड़े क्या ?"

तव तक काफी लोग जमा हो गए थे। एक के वाद एक छोटे-छोटे
कमरे थे। सभी पूछने लगे, "फटिक, क्या हुआ ? चंडी वावू को क्या
हुआ ? डॉक्टर वुला न एक..."

सुनकर जैसे फटिक को खयाल आया। झटपट डॉक्टर वुलाने भागा।

दुलाल साहा का लड़का काफी दिन विदेश में रहा। वचपन में भी
उसकी पढ़ाई-लिखाई वाप के पास रहकर नहीं हुई थी। कलकत्ते के
कॉलेज में पढ़ता था। कहां से पैसा आता है, कारोवार क्या होता है, उसे
कुछ भी जानने का मौका नहीं मिला था। ये वातें कभी वतलाई भी नहीं
गईं उसे। पहले कॉलेज की पढ़ाई, फिर डॉक्टरी पढ़ी, और वाद में एक
रोज़ टेलीग्राम मिलने पर विवाह करने भी चला आया।

दुलाल साहा ने उससे कहा था, "अव तुम्हें विवाह करना है वेटा
तुम्हारी मां नहीं है, मैं भी ज़्यादा रोज़ नहीं हूं।"

जिससे विवाह हो रहा है, वह देखने में कैसी है, उसका वंश-परिच
क्या है, इस सवको लेकर सिर खपाने की ज़रूरत महसूस नहीं की। स्कू
कॉलेज, जहां भी रहा, पढ़ाई-लिखाई से ही वास्ता रखा। निताई व
वीच-वीच में जाकर होस्टल में उससे मिल आता था। दुलाल साह
भी डर था। आखिर कलकत्ता शहर है। लेकिन निताई वसाक जि
वार उसे देखने गया, हमेशा उसे पढ़ाई में ही व्यस्त पाया। दूसरे लड़
खेल, सिनेमा और राजनीति में व्यस्त रहते थे, तो विजय अपनी

में जुटा होता। निताई बसाक जाकर पूछता, "तुम्हें किसी तरह की तकलीफ तो नहीं है ? तकलीफ हो तो कहना।"

विजय कहता, "जी नहीं, कोई तकलीफ नहीं है मुझे।"

"रुपये-पैसे की जरूरत है ?"

"रुपये अभी हैं मेरे पास।"

"और रख लो थोड़े-से।"

"जरूरत होने पर ले लूंगा।"

लेकिन जरूरत कभी नहीं हुई। जितने रुपये जाते उसके पास, वे भी पूरे खर्च नहीं होते थे। खर्च करने को कुछ था भी नहीं।

दुलाल साहा निताई बसाक से पूछता, "क्या देखा ? सिगरेट-बीड़ी कुछ पकड़ी है या नहीं ?"

निताई बसाक कहता, "कुछ नहीं।"

"चोरी-छुपे पीता होगा ?"

"सो भी खोज की है, लेकिन कुछ पता नहीं चला।"

चलो, अच्छा ही है, लेकिन दुलाल साहा को मन-ही-मन डर लग रहा था। आज के जमाने में यह कैसा लड़का है !

इतना विश्वास करने पर भी जैसे डर लगता है।

छुट्टियों में लड़के के घर आने पर नजर रखता था। कचहरी में पास बैठाकर उपदेश देता। विजय बाप की बातें सुनता। कोई प्रतिवाद नहीं करता। कह-सुनकर बीच-बीच में दुलाल साहा हताश हो पड़ता। यह लड़का क्या उसकी इतनी सम्पत्ति सम्हाल सकेगा ? वह हमेशा तो रहेगा नहीं, निताई बसाक भी हमेशा नहीं रहेगा। हमेशा रहने के लिए यहां कोई भी नहीं आया। एक दिन सभी को जाना है। तब ? तब इतना भला आदमी होकर कैसे यह संपत्ति सम्हालेगा ? यह क्या भलमनसाहत का जमाना है ? इस जमाने में भले आदमी ही तो ठगे जाते हैं। उन्हें हर कोई ठग लेता है।

दुलाल कहता, "समझे बेटा, दुनिया में धर्म करने के लिए नहीं आते सब। यहां ठग, गुंडे-बदमाशों का साम्राज्य है। यहां टिके रहने के लिए बुद्धि खरचनी पड़ती है। यहां पर सब-के-सब तुम्हें ठगने के लिए ताक

वैठे हैं, मालूम है ?"

विजय कहता, "जी हां..."

"तव ? तव सव समझकर भी तुम चुपचाप सव सुन लेते हो ! उस वह आदमी जो 'रुपया नहीं दे पाएगा' कहकर रोता था, तुम उसकी त पर इस तरह पिघल कैसे गए ?"

विजय को वात याद नहीं थी। उसने पूछा, "कौन-सा आदमी ?"

"यह देखो, तुम्हें इतना भी याद नहीं है ? अरे वेटा, यहां हर वात ध्यान रखनी पड़ती है। अच्छी भी और खराव भी। होशियार की मार नहीं होती। तुम ज़रा असावधान हुए नहीं कि लोग तुम्हें टोपी पहना देंगे, समझे ? इसी का नाम दुनिया है। तुम्हारी तरह इतनी कितावें नहीं पढ़ी हैं मैंने, लेकिन भगवान ने जो वुद्धि दी है, उसीके वूते पर यह घर, गाड़ी, कारोवार, शुगर मिल और जो कुछ भी देख रहे हो, खड़ा किया है। इन मालिक ने ही क्या कम कोशिश की थी मुझे ठगने की ! लेकिन मैं क्या ठगा गया ? ठगा नहीं गया, इसीलिए आज भी सिर उठाकर खड़ा हूं।"

इसी तरह कितने उपदेश, कितनी तागीदें दीं दुलाल साहा ने। लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। विजय ठीक वैसे-का-वैसा ही है। विदेश से लौटकर भी उसमें कोई वदलाव नहीं आया। दुलाल साहा ने सोचा था, लड़का विलायत से साहव वनकर लौटेगा। लेकिन कुछ भी तो नहीं, सीधा-सादा जस-का तस रह गया विजय।

लड़के ने कहा था, "एक डिस्पेंसरी खोलकर यहां गांव में ही प्रैक्टिस करूंगा, वावा !"

"तो करो न, प्रैक्टिस करो। फीस कितनी लोगे ?"

"कुछ भी नहीं, रुपये की ज़रूरत ही क्या है हमें ?"

"कहता क्या है!" सुनकर जैसे दुलाल साहा के सिर पर विजली गि[र] तो माथे में यह सव भरा है ? ऐसा करने से यह सव कुछ कितने टिकने वाला है ? उसने कहा, "फीस नहीं लोगे ? आखिर क्यों ?"

"इस देश में तो सभी गरीव हैं !"

दुलाल साहा वोला, "गरीव ! गरीव कहां देखे हैं तुमने ?"

"गरीव नहीं हैं तो उनके पास अच्छे कपड़े क्यों नहीं हैं ?"

दुलाल साहा अब मुश्किल में पड़ा। विलायत जाकर लड़के का यह हाल होगा, उसने सोचा भी नहीं था। विजय के हाव-भाव देखकर उसको काफी चिन्ता हो गई। एक रोज निताई बसाक को पास बुलाकर उससे सारी बात कही।

निताई बसाक बोला, "तुम फिक्र मत करो, मैं सब ठीक कर दूंगा।"

"ठीक कैसे कर दोगे?"

"वह सब अभी नहीं बतलाऊंगा तुम्हें।"

यहीं तक बात हो पाई थी कि इसी बीच दरोगा के आने से सब गड़बड़ हो गया। इतने दिन का सारा करा-धरा चौपट हो गया। सदानन्द आकर इस तरह सारा गुड़गोबर कर जाएगा, किसे मालूम था। निताई बसाक ने सोचा था, सदानन्द को रास्ते से हटा देने से ही सब कुछ धुल-पुंछकर साफ हो जाएगा। एक सदानन्द ही सब कुछ जानता था, अगर उसे दुनिया से हटा दिया जाए तो दुलाल साहा के वंश का कोई भी कलंक किसीकी जानकारी में नहीं आ पाएगा। लेकिन यह दोलगोविन्द इस तरह पर्दाफाश कर देगा, यह बात किसीके दिमाग में नहीं आई।

दरोगा साहब अभी भी मौजूद थे।

दुलाल साहा ने नई बहू की ओर देखकर कहा, "तुम यहां क्यों चली आईं बेटी? तुम जाकर अपना काम करो, विजय क्या अभी सोकर नहीं उठा?"

नई बहू ने इस बात का जवाब दिए बगैर कहा, "दरोगा साहब, आप मेरे बारे में जो कह रहे थे, बाहर से मैंने सुन लिया है।"

"तुमने क्या सुना? दरोगा साहब ने तुम्हारे बारे में तो कुछ भी नहीं कहा।"

"नहीं बाबा, मैंने सुना है, मैं सिर्फ एक बार और सुनना चाहती हूं वही बात। मेरे वंश को लेकर अगर कोई बात···"

दरोगा की ओर देखकर निताई बसाक ने कहा, "आप जरा वहां चलिए, आपसे एक जरूरी काम है मुझे।"

दुलाल साहा ने कहा, "हां-हां, वहीं ठीक रहेगा, तुम अंदर जाओ नई

अभी आ रहा हूं।"

नई बहू ने आगे बढ़कर दरोगा का रास्ता रोक लिया, और कहा, "ीं, आपको मेरे सामने ही कहना पड़ेगा।"

दुलाल साहा बोला, "अरे, तुम बहू-बेटियों को इस सब पचड़े से क्या तुम जाओ।"

नई बहू ने कहा, "नहीं, मुझे अपने कानों से सुनना है कि मैं मछुए ी लड़की हूं या नहीं। मैं सुनकर ही रहूंगी, नहीं तो आप लोगों में से किसीको यहां से जाने नहीं दूंगी।"

असल में इसके लिए शायद कोई ज़िम्मेवार नहीं है। कहां के किशन-गंज के कौन-से एक मालिक अपने अतीत के कौन-से एक वंश-गौरव के मिथ्या आडम्बर को ओढ़े दंभ और आत्म-गरिमा के नशे में चूर हो रहे थे और इसीका सुयोग लेकर उस संकरे रास्ते की किस एक संभावना ने खुद को प्रकट कर दिया, यह सब जितना निर्मम था उतना ही मर्मान्तिक भी था। मनुष्य की दृष्टिहीन नियति जिस प्रकार उसे हठात् आकाश के उत्तुंग शिखर पर चढ़ाकर अविश्वासी बना डालती है, उसी प्रकार कठोर अंधकूप का वास्तविक विश्लेषण भी उसे नास्तिकता की ओर ले जाता है। वह अब कहने लगता है कि कुछ भी सत्य नहीं है। ईश्वर, जगत्, जीवन, जन्म-वेदना या साफल्य—सब प्रवंचना है। एकमात्र सत्य हूं मैं मेरी सफलता, मेरी व्यर्थता, मेरा जन्म, मेरी मृत्यु, मेरा अनुभव एव मेरा अनुराग! इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी अस्तित्व मैं अस्वीक करता हूं।

इसी प्रकार एक दिन मालिक अहंकार के उत्तुंग शिखर पर स हो, अपने शरीर, अपने मन और उसकी अनुभूति की परिधि में एक की रचना कर जैसे अज्ञातवास कर रहे थे। सोचते तो अपने बारे में, कारते तो अपना गौरव, अनुभव करते तो अपना अहंकार। उनका था, इसी मूलधन के बूते पर वे सारे विश्व को नहीं तो कम-से-कम गंज को अवश्य खरीद लेंगे, इसमें पूर्वजों के सारे विस्मृत गौरव अपने-आपको प्रतिष्ठित कर एकछत्र सम्राट की तरह प्रचंड प्रताप

किशनगंज में शासन करेंगे।

लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं।

नहीं हुआ क्योंकि ऐसा कभी भी नहीं हो पाया है। भविष्य में भी कभी संभव नहीं है।

उस रोज पता नहीं किसलिए दीवानखाने से निकलकर सीढ़ियाँ चढ़ने जा रहे थे, जैसे रोज ही चढ़ा करते हैं, ऊपर चढ़ते-चढ़ते सीने में दर्द उठा, फिर भी चढ़ते गए। हमेशा इसी तरह चढ़ते हैं इसलिए आज भी चढ़ते रहे। उनका खंडहर घर फिर से प्रासाद हो गया है। अतएव और भी अधिक उत्साह के साथ चढ़ते हैं। सिर्फ सीढ़ियाँ ही चढ़ते हैं, ऐसी बात नहीं है। छत पर भी जाते हैं। छत पर पहुँचकर सिंहासन पर चढ़कर बैठने जैसे आनंद से विभोर हो उठते हैं। यह सब उन्हींका है। यह प्रासाद, यह परिवार, यह इस्तत, यह भट्टाचार्य-वंश, यह बंगदेश, यहाँ तक कि यह इंडिया भी उन्हें अपनी निजी संपत्ति लगी थी। एकमात्र दुलाल साहा की संपत्ति को छोड़कर सभी कुछ उनका ही है। फिर से उनके पास सब कुछ हो गया है। वैसे वे दुलाल साहा के देनदार हैं। एक लाख के देनदार हो गए। लेकिन जब सभी कुछ उनका ही है तब दुलाल साहा का कर्ज भी कर्ज नहीं है। अरे, देखो, दुलाल साहा ही रहता है या नहीं। और जब दुलाल साहा ही नहीं रहने वाला तो उसका कर्ज भी नहीं रहने वाला। जितनी जमीन बेची है या दुलाल साहा के पास रेहन रखी है, फिर से सब उनकी हो गई। जितना सोचते, उनके दोनों पांव उतने ही डगमगाते। वे और भी जोर लगाकर पांव बढ़ाते।

लेकिन उस रोज अचानक व्यतिक्रम हो गया।

पांव ठीक जगह पर न पड़कर बेठीक जगह पड़ गए। पहले तो समझ ही न पाए। लेकिन तीन दिन बाद जब होश आया तो देखा, उनके चारों ओर लोग ही लोग हैं। डॉक्टर उनके चेहरे पर झुका उन्हें देख रहा है। आँखें फाड़-फाड़कर वे लोगों की ओर देखने लगे। निवारण सरकार टकटकी लगाए उन्हींकी ओर देख रहा था। मालिक को होश आया देख, पास जाकर बोला, "कुछ कह रहे थे?"

उन्होंने काफी कोशिश करके मुँह-होंठ टेढ़े कर कुछ कहा।

लेकिन कोई भी उनकी बात समझ न पाया। निवारण ने उनके मुंह और भी पास अपने कान ले जाकर कहा, ''हरतन के बारे में पूछ हैं?''

सभीको कह रखा गया था कि हरतन की बीमारी की हालत के बारे में कुछ भी न कहा जाए। मालिक को मालूम ही नहीं था कि वे तीन दिन से इस तरह पड़े हैं। उनकी चिकित्सा के लिए कितना रुपया खर्च हो चुका है, कलकत्ते से डॉक्टर आए हैं, उन्हें कुछ भी मालूम नहीं है। सौभाग्य की आशा में मनुष्य सिर्फ ज्ञान ही नहीं, आयुष्य की भी कामना करते हैं। सौभाग्य के साथ-साथ सौभाग्य भोगने के लिए स्वास्थ्य को भी चाहते हैं। लेकिन मालिक की आशा करने की क्षमता तक जैसे चली गई है। उन्होंने सोचा होगा कि वे शायद फिर से ठीक हो जाएंगे। उनका सारा ऐश्वर्य भी फिर से लौट आएगा।

लेकिन अन्य सभी समझ गए थे कि हो सकता है, भट्टाचार्य-वंश की ऐश्वर्यश्री पुनः स्थापित हो जाए, पर मालिक उसे देखने के लिए नहीं रहेंगे।

बड़ी बहूजी को इसी बात का दुःख था। बेचारी हमेशा से चुपचाप ब कुछ देखती आई हैं, सहती आई हैं। इस घराने का ऐश्वर्य भी उन्होंने खा और फिर बुरे दिन भी देखे हैं। लेकिन वे इसके लिए कभी विच-लित नहीं हुई। या यों कहा जाए कि उनके विचलित होने पर भी बाह से किसीको इस बात का पता नहीं चल पाया।

कमरे के बाहर वे भी चुपचाप खड़ी थीं।

और बंकू? उसके पास जैसे किसीको भी देखने का समय न कुछ भी करने की फुरसत ही नहीं थी। वह इस घर का कोई नह यह बात जैसे वह भूल ही गया था। इतने दिनों में वह इस घर क आदमी हो गया था। कोई उसकी खोज-खबर नहीं रखता था लेकि सभीकी खोज-खबर रखकर उन्हें अस्थिर कर डालता था।

वह कहता, ''मां, आप जब तक नहीं खाएंगी, मैं भ खाता।''

बड़ी बहूजी कुछ नहीं कहतीं। बंकू की बकझक के मारे खा

बंकू कहता, "मैं भी आपकी तरह बीच-बीच में खाना नहीं खाता था, गुस्से में खाना छोड़कर उठ जाता था।"

जरा रुककर फिर कहता, "गुस्सा तो करता था अधिकारीजी पर, बाद में अपने ही पेट में चूहे कूदते थे।"

इसी तरह उसकी बातों का अंत नहीं था।

कभी कहता "अधिकारीजी को जानती तो हैं मां ?"

बड़ी बहूजी कहती, "नहीं।"

"बड़ा ही बदमाश आदमी है ! मां, जानती हैं ? बड़ा ही बदमाश है..."

"वाकई ?"

"हां मां, बड़ा बदमाश, खाने तक को नहीं देता था, हरतन को ही क्या कम परेशान किया है उसने ?"

"क्यों ? तुम लोगों को परेशान क्यों करता था ? ऐसा क्या किया था तुम लोगों ने ?"

बंकू बोला, "कुछ भी तो नहीं मां, और करने को था भी क्या ! एक तरह से हरतन की वजह से ही तो दल चलता था। कहीं हरतन मेरे दिमाग चढ़ न जाए, इसीलिए बेवक्त डांटा करता था।"

बड़ी बहूजी चुपचाप सुना करतीं और घर का काम सम्हालतीं। रात के वक्त मालिक की छाती पर सरसों के तेल की मालिश करनी होती थी। दिनोंदिन घर में खानेवालों की संख्या बढ़ रही थी। मालिक की हालत सुधरने के साथ पलने वालों की भी बढ़ोतरी हो रही थी।

निवारण सरकार के पास जाकर बंकू कहता, "लाइए, सरकार बाबू, रुपये निकालिए।"

रुपये का नाम सुनते ही निवारण का दिल धक् से कर उठता। फिर रुपये ! मालिक तो हुक्म करके ही रह जाते हैं ! लेकिन हिसाब तो निवारण को रखना पड़ता है। एक मात्र निवारण को ही मालूम था कि दुलाल साहा से कितने रुपये लिए जा चुके हैं। निवारण ने जितने रुपये मांगे, दुलाल साहा ने उतने ही दिए हैं। हर बार रुपये लेकर निवारण ने मालिक की ओर से कागज पर दस्तख़त किए हैं।

दुलाल साहा के पास जाकर रुपये मांगना निवारण को अच्छा नहीं
ा था।

लेकिन दुलाल साहा को जैसे कोई परवाह ही नहीं थी। वह कहता,
रे तुम क्या पागल हुए हो निवारण? तुमने क्या मुझे ऐसा-वैसा
दमी समझ रखा है?"

निवारण ने कहा, "नहीं-नहीं, वह बात नहीं है, फिर भी हाथ
फैलाते संकोच तो होता ही है साहाजी!"

"देखो निवारण," कहकर दुलाल साहा गंभीर हो उठता। फिर
कहता, "तुम लोग मालिक को जानते हो, ठीक है, लेकिन मुझसे इस
बारे में कुछ भी न कहो। मैं भी आदमी पहचानता हूं।"

"लेकिन इतना कर्ज़ हो गया, यह कोई दो-चार रुपयों की तो बात
है नहीं..."

"तो होने दो न, हरि की कृपा से मेरे पास रुपयों की कमी नहीं है।
फिर रुपयों को क्या धोकर पिऊंगा मैं? मुझे भी तो यह सारा रुपया-पैसा
और संपत्ति यहीं छोड़कर जाना है; तब कौन खाएगा इन रुपयों को?"

"अब तो आपका लड़का लौट आया है, वह शायद..."

"लड़का? अपना रुपया मैं खर्च करूंगा, उसके लिए मेरे लड़के को
आपत्ति होगी? तुम क्या कह रहे हो निवारण? तब मेरे लड़के को तुम
पहचान नहीं पाए, निवारण!"

ये सब पुरानी बातें हैं। इस तरह की बातें बहुत बार हो चुकी हैं
दुलाल साहा के साथ। निवारण ने इन बातों को सोचना छोड़ दिया है
लेकिन उस दिन दुलाल साहा के घर पहुंचने पर सदर दरवाज़े पर
पुलिस देखकर वह हैरान रह गया। सिर्फ पुलिस ही नहीं, बीच में
और आदमी भी था। आदमी पागल-सा लग रहा था। पागलों की त
कुछ बड़बड़ा रहा था।

अपने घर के आगे दुलाल साहा खड़ा था, उसका लड़का
और नई बहू भी पास ही खड़े थे। नई बहू का यह चेहरा नि
सरकार ने पहले कभी नहीं देखा था।

निवारण को देखकर दुलाल साहा उसीकी ओर बढ़ा।

लेकिन उससे पहले ही पुलिसवाले पागल को पकड़े दुलाल साहा के पास ले आए।

दुलाल साहा ने निवारण से पूछा, "क्या बात है निवारण, तुम ?"

लेकिन निवारण कुछ कहे, उससे पहले ही नई बहू पुलिसवालों की ओर बढ़ आई।

उसने कहा, "कहाँ है वह आदमी ? लेकिन यह तो वह नहीं है। शादी के वक्त इस आदमी को तो नहीं देखा मैंने।"

"जी, मिसेस साहा, इसीका नाम दोलगोविंद है। इसी आदमी ने आपकी शादी तय कराई थी, आप पहचानने की कोशिश कीजिए।"

पागल जैसे वाकई में पागल नहीं था। नई बहू की ओर कुछ देर आँखें फाड़े ताकता रहा।

उसकी ओर देखकर नई बहू हठात् बोल उठी, "बोलो, मेरी शादी तुम्हींने तय कराई थी ?"

दोलगोविंद अचानक फूट-फूटकर रोने लगा।

निवारण सरकार ने सोचा भी नहीं था कि उसे यह सब देखना पड़ेगा। जरूर कोई पारिवारिक दुर्घटना हो गई है। ऐसे मौके पर उसका आना ठीक नहीं हुआ। जल्दी से खिसकने के लिए पाँव बढ़ा रहा था। दरवाजे तक ही पहुँचा होगा कि नई बहू ने पुकारा, "सरकार बाबू, जाइएगा नहीं, आपके सामने ही सारी बात हो जाए, आइए।"

किशनगंज के ग्रामीण जीवन में एक दिन इस तरह की आँधी आएगी, किसीने कल्पना ही नहीं की थी इस बात की। आँधियाँ पहले भी आई हैं लेकिन धीमे-धीमे, इतनी तेज नहीं। दुलाल साहा और निताई बसाक रातों-रात बड़े आदमी नहीं बने। मालिक भी एक ही रात में नहीं उठ गए थे। उतार-चढ़ाव के स्वाभाविक नियम के अनुसार ही सब हुआ था। कूट कालचक्र या प्रकृति के स्वाभाविक नियम से ही सब कुछ हुआ था। लोगों की दृष्टि में वह सह्य हो गया था। सभीने इस निष्ठुर सत्य को मन-प्राण से स्वीकार किया था।

लेकिन इस बार और बात थी। इस बार की आँधी ने जैसे स

नहस कर दिया था।

वकू हमेशा का मुक्त आदमी था। नाटक के गीत गाता रहा है। अधिकारी के साथ गांव-गांव और एक-दूसरे ज़िले घूमा है। रात जागकर गाया है, और दिन भर सोया है। इस सवके वीच कव चानक मन की किस संद से एक अटूट वंधन की जकड़ में फंस गया, स वात का खुद उसको पता नहीं चल पाया।

जिस रोज़ अचानक पता चला कि अंजना ऐरी-गैरी न होकर किशनगंज के ज़मींदार भट्टाचार्यजी की खोई हुई पोती है, उस रोज़ उसके जितना आनंद शायद मालिक को भी नहीं हुआ। वंकू को लगा कि अव उसका अपना जो भी हो, कम-से-कम अंजना को तो दल के साथ जगह-जगह की धूल फांकते हुए मुंह पर खड़िया पोत कर यात्रा नहीं करनी पड़ेगी।

वंकू कहता, "हम लोगों का जो भी हो, अंजना के लिए तो अच्छा ही हुआ।"

और सभी कहते, 'लेकिन अंजना के चले जाने पर क्या दल टिकेगा? हम लोगों की नौकरी क्या फिर रहेगी?"

वंकू कहता, "यही तो तुम लोगों का स्वभाव है, साले दूसरे का भला देख ही नहीं सकते।"

अंजना के ख़िलाफ किसीके कुछ कहते ही वंकू के मुंह से गाली निकलने लगती। लोग वजह भी जानते थे।

कहते भी, "तुझे क्यों नहीं वुरा लगेगा, दिल जो फंसा है, बुरा तो लगेगा ही?"

वंकू तमक उठता, कहता, "खवरदार, कहे देता हूं, ज़वान सम्हाल कर वात कर।"

कितनी ही वार किसी एक गांव में सव जव सो रहे होते, कि एक रोज़ मज़ाक-मज़ाक में मार-पीट तक की नौवत आ जाती। पि रात जागने के वाद हो सकता है, चंडी वावू दिन,चढ़े तक खर्राटे भर होते कि अचानक मार-पीट की आवाज़ सुन सीधे जाकर, जिसे स पाते, उसीकी गर्दन पकड़कर खींचते वाहर ले आते। कहते, "

कहां के सारे लुच्चे-बदमाश मेरे पास मरने आ जुटे हैं—चुप, एकदम चुप !"

इसके बाद बंकू की ओर देखकर कहते, "इतनी शेखी किस बात की ? बहुत शेखी हो गई है ? जिस रोज भगा दूंगा, उस रोज पता चलेगा !"

चंडी बाबू को मालूम था कि बकू को भगाने पर भी बंकू नहीं जाएगा। तनखाह न मिलने पर भी कहीं जाने की हिम्मत बकू में नहीं थी। बंकू 'श्रीमानी आपेरा' के पास जैसे बंधक था। बाद में जब अजना मालिक के साथ आई तो बंकू भी साथ आया था। जीवन मे कुछ भी नही इसके लिए रोनेवाला और जो भी हो, बकू नहीं था, उसे कोई दुःख नहीं था। अजना की बीमारी ठीक होते ही वह वापस चला जाएगा, यही तय था। लेकिन एक रोज सब कुछ जैसे उलट-पुलट हो गया।

सरकार बाबू के घर आते ही बकू आ पहुंचा, "सरकार बाबू, रुपये लाइए।"

निवारण सरकार हठात् गूंगा हो गया था, जैसे बात करने की ताकत नहीं रही थी उसमे।

"क्या हुआ, रुपये लाइए, देर क्यो कर रहे हैं ? दवा लानी है।"

निवारण हमेशा दुलाल साहा के घर जाता और रुपये लेकर लौटता। और फिर इस रुपये से दवा आती, इलाज होता। सिर्फ दवा ही नहीं मालिक के घर का सारा खर्च उधार आए इसी पैसे मे होता। कौन [illegible] कागज पर क्या कुछ लिखकर दे आता, यह जानने की किसी [illegible] भी जरूरत नही होती, कोई पूछता भी नहीं था। इसी तरह इतने रोज [illegible] रहा था। मालिक की बीमारी से पहले भी और बाद मे भी। [illegible] कभी मालिक ने नहीं पूछा कि यह रुपया तुम कौन-सी जमीन [illegible] कर लाए हो। और अब तो वह सवाल ही पैदा नहीं हो[illegible] आना ही है, उनका खयाल है कि इस रुपये के वह हकदार [illegible] इस घर मे आने के बाद से सम्पत्ति काफी बढ़ रही [illegible] गौरव का पुनरुद्धार हुआ। सब कुछ इतन की [illegible] जैसे खुद लक्ष्मी थी। अब लक्ष्मी भी अचला होकर [illegible]

नहीं तो इतने दिनों वाद वह मिलती ही क्यों ?
कन वंकू इतना सव नहीं जानता था। वह अपना काम करता
कलकत्ते जाता, बड़े से वड़ा डॉक्टर लाता, दवा-दारू खरीदकर
ा है। रुपये का सारा इंतज़ाम निवारण करता।
ेकिन आज निवारण को चुप देख वंकू भी चिढ़ गया। उसने कहा,
, मेरी वात सुन नहीं पा रहे क्या आप ? आठ वियालिस की गाड़ी
गई तो कव जाऊंगा और कव लौटूंगा ?"

इतनी देर वाद जैसे निवारण की वोलने की क्षमता लौटी। उसने
हा, "पैसे नहीं हैं।"

"नहीं हैं, माने ? नहीं हैं के माने क्या ? दवा नहीं आएगी ?"

निवारण वोला, "मैं कुछ नहीं जानता।"

"जानते कैसे नहीं हैं, ज़रूर जानते हैं! हरतन विना दवा खाए रहेगी, कहना चाहते हैं ?"

निवारण जैसे डर गया। उसने कहा, "तुम चुप रहो, चिल्लाओ मत, रुपये का इंतज़ाम नहीं हो पाया। दोपहर तक ज़रा सवर करो, मैं कोशिश कर रहा हूं।"

वंकू ने कहा, "लेकिन मैं कल से कह रहा हूं कि हरतन की दवा खत्म हो गई है ?"

"वोलने से क्या होता है ? मालिक की दवा भी खत्म हो गई है, वह भी तो आनी है।" इसके वाद वूढ़ा निवारण क्या करे, ठीक न कर पाकर सिर के वाल खींचने लगा।

"ठीक है, तो मैं मां से कहे देता हूं कि रुपये नहीं हैं इसलिए दवा नहीं आएगी। इलाज भी नहीं होगा, हरतन मर जाए, यही चाहते हैं न आप ?"

निवारण की आंखें छलछला उठीं। वहां और नहीं रुक पाया। पास वाले दरवाज़े से वराण्डे में चला गया।

वंकू मन-ही-मन निवारण को उद्देश्य कर वड़वड़ाने लगा, "ठी
है, मुझे क्या है ! भाड़ में जाए सव ! दवा के विना आप लोगों का ही इल
नहीं होगा, आपको ही पछताना पड़ेगा। मैं क्यों फालतू में फिक्र क

मरूँ ?"

कहकर बंकू सीधा आँगन की ओर निकलकर चौखट पर आ बैठा। बंकू को ऐसे मौकों पर ही बड़ा परायापन लगता था। जिन्दगी भर इधर-उधर भटकनेवाला बंकू, इतने दिन बाद एक ठिकाना पाकर जैसे निश्चिन्तता के आराम में पड़ गया था। लेकिन जिसके भाग्य में आराम लिखा ही नहीं, उसे आराम कैसे मिल सकता है? हसन की हालत जरा सुधरी थी कि ठीक तभी यह झमेला। ठीक तभी मालिक को भी बीमार पड़ना था, और कोई मौका नहीं था बूढ़े को। ठीक है, मुझे क्या है! मैं भी बिना खाए-पिए यहीं बैठा रहूँगा। हसन को दवा नहीं मिलेगी तो मैं भी खाना नहीं खाऊँगा। कोई कितना भी कहे। जन्म भर भी क्या है! कितने दिन, कितनी रातें बगैर खाए काटी हैं, फिर एक बार और सही। हजार कहने पर भी नहीं खाऊँगा। दवा लाने को कहने पर भी नहीं लाऊँगा।

अचानक बड़ी बहूजी की नजर पड़ गई। यही बहूजी हमेशा से कम बोलती हैं। उनकी सारी जिन्दगी मालिक के पीछे [illegible] करते कट गई। अब तो उन्होंने खटिया पकड़ ली है। रसोई भी देखनी पड़ती है। साथ ही मालिक की सेवा-शुश्रूषा भी। बंकू को यहाँ बैठे देखकर उन्हें बड़ी हैरानी हुई।

उन्होंने कहा, "अरे बंकू तुम यहाँ कैसे बैठे हो?"

बंकू ने कोई जवाब नहीं दिया।

बड़ी बहूजी को और भी हैरानी हुई। बंकू ऐसा तो नहीं करता। पुकारते ही जवाब देता है। फिर पूछा, "हसन अच्छा है क्या?"

बंकू भभक उठा, "अच्छा क्यों नहीं रहेगा? मैं कौन होता हूँ? मैं क्यों देखूँ उसे? मेरी बात की अब कोई कीमत ही नहीं है। हसन मरे या जहन्नुम में जाए, मुझे क्या मतलब?"

"तुम्हें क्या हुआ है? गुस्सा क्यों हो रहे हो? हसन से कुछ झगड़ा है क्या?"

"हसन क्यों झगड़ेगा भला? वह ऐसा लड़का नहीं है। उस बेचारे को क्यों बदनाम करती हैं बेकार में?"

"तब यहां इस तरह क्यों बैठे हो मुंह फुलाए ? क्या हुआ है तुम्हें ?"

वंकू बोला, "मेरी खुशी, बैठा हूं।"

बड़ी बहूजी ने पूछा, "भूख लगी है क्या ? चलो खाना परोस दूं।"

वंकू ने कहा, "खाने के लिए इतनी हाय-हाय नहीं है मुझे। खाने के लिए फटिक की लार टपका करती है, मेरी नहीं।"

"फटिक ? फटिक कौन है तेरा ?"

"फटिक कौन है, यह जानकर आपको क्या करना है ? हरतन से आपको मतलब ? आप लोग खाइए जाकर, मैं अब घर का जल तक स्पर्श नहीं करूंगा ?"

बड़ी बहूजी डर गई, बोलीं, "बात क्या है ? ऐसा कौन-सा कसूर हो गया हम लोगों से ?"

"जी नहीं, कसूर आप लोग क्यों करने लगे, कसूर तो मेरा ही है। सारा कसूर मेरा है, मैं अनपढ़ हूं, मूर्ख हूं, यात्रा करता घूमता हूं। सब मेरा ही कसूर है।"

"यह सब क्या कह रहे हो ?"

वंकू बुरी तरह भभक उठा, "मैंने बार-बार कह दिया कि मैं यहां बैठा रहूंगा, मुझे न खाना न पीना, इसके बावजूद आप क्यों बार-बार परेशान कर रही हैं ? आप क्या चाहती हैं कि मैं आपके घर से चला जाऊं ?"

"ऐसा क्यों कहने लगी मैं ? कभी ऐसा कहा है मैंने ?"

"मुंह से नहीं कहा, लेकिन मन-ही-मन तो कहा है ?"

"यह सब क्या कह रहे हो तुम ? यह सब तो मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा।"

वंकू बोला, "आप नहीं सोचतीं लेकिन वह तो सोचता है !"

"किसकी बात कर रहे हो ? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा ?"

वंकू बोला, "सो कैसे समझेंगी, वह आपका अपना आदमी जो है, उसे आप कैसे पहचान सकती हैं, मैं तो गैर हूं, गैर हूं इसीलिए तो यह हाल है ! मैं तो इस घर का कोई नहीं हूं, बैठा-बैठा आपका

खराब कर रहा हूं !"

बड़ी बहूजी ने सोचा, ये सारी बातें मान-अभिमान की हैं। उन्होंने कहा, "किसकी बात कर रहे हो, मेरी समझ में नहीं आ रहा ! खैर, जो भी हो, लगता है, तुम्हें भूख लगी है, भूख लगने पर गुस्सा तो आता ही है।"

बंकू उठ खड़ा हुआ। और नहीं बैठ पाया। बोला, "खबरदार मां, कहे देता हूं, मुझे बेकार में गुस्सा न दिलाओ। मैं खुद ही काफी परेशान हूं, अब दया करके आप लोग और परेशान न करें ! एक बार फिर कहे देता हूं, मुझे भूख-वूख नहीं लगी है।"

"तब तुम्हें क्या हुआ है ?"

बंकू बोला, "आपको सुनना है ?"

"हां, कहो न। सुनना है, इसीलिए तो पूछ रही हूं।"

"तब जो मैं कहूंगा, वही करेंगी ?"

बड़ी बहूजी मुश्किल में पड़ गईं। बोली, "पहले कहो तो सही, क्या करना है ?"

"नहीं, पहले आप कहिए कि जो कहूंगा, वही करेंगी ?"

"अच्छा बाबा, जो तुम कहोगे, वही होगा।"

बंकू ने पास के बराण्डे की ओर इशारा करते हुए कहा, "तो पहले उसे भगाइए यहां से।"

"किसे भगाऊं ? किसकी बात कर रहे हो ?"

"क्यों ? नासमझ क्यों बन रही हैं ? उसकी बात कर रहा हूं, वही जो बैठा आपका घर तबाह कर रहा है।"

"ओह ! तो तुम निवारण सरकार की बात कर रहे हो ?"

"नहीं तो और किसकी बात करूंगा ? वह आपके घर का शत्रु विभीषण है। आप लोग जानते नहीं हैं, यह बूढ़ा आप लोगों का सरकार आप ही लोगों का सर्वनाश कर रहा है।"

बड़ी बहूजी ने कहा, "छिः बेटा, ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। यह निवारण था जो हम लोग अभी तक बचे हैं, नहीं तो कब के…"

बंकू ने कहा, "उसी भरोसे बैठी रहिए, बाद में जब मेरी बात फलेगी

ा चलेगा।"

"लेकिन तुम्हें निवारण के ऊपर इतना गुस्सा क्यों है ? उसने ऐसा कर दिया ?"

"क्या नहीं किया, यह पूछिए उसके पास जाकर। आज तीन रोज़ गए, बार-बार कह रहा हूं, रुपये लाइए, हरतन के लिए दवा लानी है, वा कब की खत्म हो चुकी है। आठ विग्रालीस की गाड़ी से कलकत्ते ाता, डॉक्टर को भी लिवाकर लाता, दवा भी ले आता। लेकिन रुपये देने का नाम ही नहीं लेता है! सोचता होगा, पैसे लेकर मैं चंपत हो जाऊंगा। रुपये लेकर क्या मैं भाग जाऊंगा ? अपने लिए क्या एक रुपया भी लिया है मैंने ? फटा कुर्ता पहने घूमता हूं। लेकिन कहा है कि मुझे एक नया कुर्ता चाहिए ? कभी सुनी है ऐसी बात मेरे मुंह से ? मुझे किस चीज़ की ज़रूरत है मां ! जिन्दगी में मैंने कभी अपने लिए कुछ सोचा है, जो आज सोचूंगा ? हरतन के पास भी इसी डर से नहीं जा पा रहा। हरतन कहीं ठीक न हो जाए, इसीलिए रुपये नहीं दे रहा, मालूम है आपको ? आज अगर मेरे पॉकेट में रुपये होते तो मैं परवाह करता उसके रुपये की ? खुद ही जाकर डॉक्टर लाता, दवा भी ले आता।"

बड़ी बहूजी ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया।

बंकू फिर कहने लगा, "इतने दिन बाद हरतन के चेहरे पर ज़रा चमक आई है। और ठीक तभी यह बदमाशी ? सोचता है, मैं कुछ समझता नहीं हूं ? मैं बुद्धू हूं ? पढ़ा-लिखा नहीं हूं, इसीलिए क्या एकदम मूर्ख हूं मैं ?"

बड़ी बहूजी अभी भी चुप थीं। उनकी आंखें भर आई थीं।

हठात् एक आवाज़ सुनकर बड़ी बहूजी चौंक उठीं। निवारण आवाज़ थी।

"रानी मां !" इतना ही। जैसे इससे ज़्यादा कुछ कहने की हि उसमें नहीं थी।

बंकू ने देख लिया। निवारण को देखते ही वह बड़ी बहूजी से लगा, "लीजिए, निवारणजी आ गए। आप ही पूछिए अब इनसे ठीक कह रहा हूं या नहीं। यह तय हो ले कि कौन सच्चा है औ

झूठा है। सामने-सामने बात हो जाए···"

बंकू की बात पर किसीने ध्यान नहीं दिया। ध्यान देने की ज़रूरत भी महसूस नहीं की। निवारण सरकार ने सिर झुकाए सिर्फ इतना ही कहा, "सब खत्म हो गया।"

बड़ी बहूजी जैसे पत्थर हो गई थीं। न हिलीं, न डुलीं। अनायास आर्तनाद कर उठें, सो भी नहीं। जिस तरह धीर-स्थिर खड़ी थीं, वैसे ही धीर-स्थिर खड़ी रहीं। लग रहा था, सिर के ऊपर वाली छत भी अगर आ गिरे तो भी वे इसी तरह धीर-स्थिर खड़ी रह सकती हैं। दुनिया की कोई भी ताकत जैसे उन्हें झुका नहीं सकती थी।

सिर्फ बंकू बुद्धू की माफिक दोनों की ओर देखता एक मायने खोजने की कोशिश कर रहा था। लेकिन कोई भी मायने न खोज पाकर निवारण की ओर देखकर उसने पूछा, "सब खत्म माने? क्या खत्म हो गया? खाली खत्म कहने से काम नहीं चलेगा, खत्म होने के मायने समझाने होंगे मुझे।"

लेकिन तब बंकू को यह बात समझाता कौन? दोनों की समझ जैसे समझ के दायरे से बाहर चली गई थी।

ज़रा भी रोना-धोना नहीं, ज़रा-सा भी आर्तनाद नहीं! यह कैसी मौत! किशनगंज के भट्टाचार्य-वंश में आंसुओं की जैसे पराजय हो गई थी। मालिक जीवन में कभी नहीं रोए। उनकी मौत पर कोई नहीं रो सकता। तुम लोग भी मत रोओ। मेरे घर की लक्ष्मी घर वापस आ गई है। ऐश्वर्य भी फिरेगा। किशनगंज के लोग एक दिन फिर देखेंगे, यह भट्टाचार्य-भवन दुलाल साहा के घर से धन-जन और ऐश्वर्य में समृद्धि के शिखर पर पहुँचेगा। मैं न हुआ, चला ही गया, लेकिन हरतन तो है, लक्ष्मी तो है। दुलाल अपनी सारी सम्पत्ति त्याग कर काशीवास करेगा। इतने दिन बाद उसे सुमति हुई है यह भी एक अच्छा लक्षण है। दुनिया में कोई हमेशा के लिए नहीं आया। एक रोज़ हर किसीको जाना है। आज मैं जा रहा हूं। कल दुलाल साहा और निताई बसाक भी जाएंगे। एक रोज़ पहले या बाद में। लेकिन देखना, जय सत्य की ही होती है। मैं

दगी-भर धर्म के पथ पर ही चला हूं। ईश्वर मेरी पराजय कैसे सह
न्ते हैं ? जो पाप है, वह दवा नहीं रहता। पारे की तरह वह फूटकर
हर आएगा ही। दुलाल साहा कितना भी पाखंडी हो, सज़ा उसे भोगनी
ी पड़ेगी।

निवारण को लगा, जैसे मालिक फिर वात कर रहे हैं।

'हो मृत्यु, मृत्यु से ही जीवन का अंत नहीं होता निवारण ! तुम तो
हो ही अभी, तुम देखोगे, मेरी वात झूठ नहीं होगी, नहीं होगी, नहीं
होगी !'

सुवह से निवारण की जान को कई झंझट रहे हैं। पिछली कई रातों
से वह सो नहीं पाया। दिन-रात चौवीसों घंटे मालिक के पास वैठा भग-
वान से विनती करता रहा। मालिक के ऐश्वर्य के दिनों में जव निवारण
आया था, उसकी उम्र वहुत कम थी। काफी आशा थी। आशा से ज्यादा
उत्साह था उसमें। एक-एक कर जव सव कुछ देखते-देखते चला गया, तव
भी एक भरोसा था—हरतन। उसी हरतन के लिए मानो मालिक अव
तक ज़िंदा थे। लेकिन निवारण कैसे कहता कि उनकी सारी आशा, सारी
कल्पना निर्मूल हो गई है ! सव झूठ है, फरेव है !

मालिक की उस मृतदेह के पास खड़े होकर निवारण जैसे कहने की
कोशिश कर रहा था, 'रुपये नहीं मिल पाए मालिक !'

'क्यों ? मिले क्यों नहीं ?'

निवारण वोला, 'दुलाल साहा ने नहीं दिए।'

'नहीं दिए माने ? हमेशा देता रहा है और आज ही नहीं दिए ?'

निवारण ने कहा, 'दुलाल के पास अव कुछ भी नहीं है।'

मालिक जैसे चीख उठे, 'क्या फालतू वकवक कर रहे हो ? तुम
क्या दिमाग खराव हो गया है निवारण ? तुम क्या पगला गए हो
'नहीं मालिक, आज आप सुन नहीं पा रहे, फिर भी मैं क
दुलाल के पास कुछ भी नहीं है अव।'

'इसके माने ?'

'उसकी अपनी पुत्रवधू, जिसे दुलाल साहा खुद पसंद करा
वह नई वहू ही मिलावटी है। मछुए की लड़की है वह।'

'कहते क्या हो ?'

'जी हां, मैं ठीक ही कह रहा हूं मालिक ! मैं आज ही सुबह हरतन और आपके इलाज के लिए रुपये लेने दुलाल साहा के पास गया था। जाकर देखता हूं, सर्वनाश हो गया है। पुलिस आई हुई थी, दरोगा आया था, नई बहू भी थी। सबके सामने सारी बात जाहिर हो गई। मैं वापस आ रहा था, लेकिन नई बहू ने मुझे जबर्दस्ती रोक लिया—मैं भी सब कुछ सुन आया।'

'क्या सुन आए ?'

'सुना कि वही घटक, जिसने दुलाल साहा के लड़के का विवाह तय कराया था, उसीने सब कुछ कह दिया। वह भी पागल हो गया है मालिक ! पन्द्रह भरी सोने के लालच में उसने दुलाल साहा का यह सर्वनाश किया, यह भी बोला। इस सबके मूल में था सदानंद। दुलाल साहा की पटसन की गद्दी का वही कर्मचारी जिसकी वजह से पेपुलबेड़ की आहट वाला हंगामा हुआ था।'

कहते-कहते निवारण की आंखें भर आईं। बड़ी बहूजी मानिक के बिस्तरे के पास निस्पंद पड़ी थीं। निवारण ने एक बार उसी ओर देखा। इतनी भयानक आंधी आज इस घर को झकझोर गई लेकिन किशनगंज की चिड़िया तक को इसकी भनक न पड़ी। किसीको पता तक नहीं चला। किशनगंज का कितना बड़ा सर्वनाश हो गया था आज ! अब दुलाल जो जी में आए, कर सकता है, कोई उसका प्रतिवाद नहीं करेगा।

मानिक जैसे हठात् बोल उठे, 'चुप क्यों हो गए ? कहो, फिर क्या हुआ ?'

'फिर क्या हुआ, मुझे नहीं मालूम मानिक, लेकिन इतना समझ में आया कि सदानंद ऐसे ही नहीं मरा। ऐसे ही मरने वाला आदमी नहीं था वह। उसका खून हुआ था। पुलिस के पास सबूत हैं।'

''क्यों ? किसने किया उसका खून ? खून किसलिए किया ? उसका खून करके किसीको क्या फायदा ?''

निवारण ने कहा, 'उसको नहीं मारने पर सारा भंडाफोड़ जो हो जाता मानिक ! वह सब जानता था। दुलाल साहा के पास कहां से कितना रुपया आया और आ रहा है, सब उसकी उंगलियों पर था। दुलाल का खाता वही तो रखता था। दुलाल साहा ने सरकार के कितने

हैं, वह सब जानता था।'

'तो अब क्या होगा ?'

निवारण ने कहा, 'सो तो पुलिस जानती है मालिक ! सदानंद का ... करने के लिए किसीको सज़ा होगी या नहीं, यह पुलिस ही ठीक ...रेगी। लेकिन नई बहू ने अपना विचार खुद करने का फैसला किया है।'

'इसके माने ?'

निवारण ने कहा, 'नई बहू ने मेरे सामने ही कहा, अगर यह बात साबित होती है कि मैं मछुए की लड़की हूं, और दोलगोविन्द की ठगी का शिकार हुई हूं तो श्वसुर, पति, घर, सब कुछ छोड़कर चली जाऊंगी।'

'कहां जाएगी ?'

निवारण बोला, 'इससे ज़्यादा मैं नहीं सुन पाया मालिक ! मैं सुनना चाहता भी नहीं था। नई बहू का चेहरा और दुलाल साहा के लड़के का चेहरा देख मुझे बहुत खराब लग रहा था। यही लग रहा था कि क्यों वहां गया। रुपये लेने अगर वहां नहीं जाता तो मुझे यह सब सुनना नहीं पड़ता। वैसे मैंने बार-बार वहां से चले आने की कोशिश की और हर बार नई बहू ने रोका। एक ही बात कह रही थी वह—'मैं चाहती हूं कि सभी लोगों को पता चले।' लोगों में सब कुछ जाहिर करके नई बहू जैसे हल्का होना चाहती थी।'

'लेकिन आखिरकार क्या हुआ ?'

'आखिर सबने नई बहू के मायके जाने का निश्चय किया। इतन... सुनने के बाद ही मैं चला आया। वहां पहुंचकर अगर मालूम हुआ ... नई बहू गैर-जाति की लड़की है तो क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकत...

मालिक की प्राणहीन निस्पंद देह अभी बिस्तरे पर उसी तरह ... थी। बड़ी बहूजी भी उसके पास निश्चल बुत बनी बैठी थीं। बाहर ... की आवाज़ हुई। शायद किशनगंज के डॉक्टर बाबू आए हैं। बंकू ... बाबू को लाने गया था। गाड़ी घर के आगे ही रुकी थी। गाड़ी क... वाजा खुलने के बाद बंद होने की आवाज़ हुई। डॉक्टर बाबू ... आखिरी बार आकर सर्टिफिकेट देकर चले जाएंगे। ऊपरवाले ... हरतन लेटी है। उसे खबर नहीं दी गई है। उसे मालूम भी न...

...िला नाम दुनिया

मालिक की जीवन-शिखा बुझ चुकी है। उसे बतलाने से नुकसान हो सकता है। जब पता चलेगा, तब चलेगा। उससे पहले उसे बतलाना उसकी सेहत के लिए खराब होगा।

निवारण डॉक्टर बाबू को अन्दर लिवाने के लिए बाहर आते ही हैरान रह गया। डॉक्टर नहीं, बी० डी० ओ० सुकांत राय आया था।

"आपको कैसे पता चला सुकांत बाबू ?"

"किस बात के बारे में ?"

सुकांत राय की बात सुनकर उसे और भी अजीब लगा। उसने पूछा, "आपने कुछ सुना नहीं ?"

"क्या सुनता ?"

तब तक किशनगंज के डॉक्टर बाबू की गाड़ी भी आ पहुंची। डॉक्टर बाबू उतरे, पीछे-पीछे बंकू था।

सुकांत कुछ भी नहीं समझ पाया। निवारण की ओर देखकर उसने पूछा, "बीमार कौन है ? मालिक की पोती ?"

सुकांत राय असल में निताई बसाक को खोजता हुआ आया था। निताई बसाक उससे काफी रुपये ले चुका है। अब तक कितने रुपये वह दे चुका है, उसका कोई हिसाब नहीं है। निताई बसाक राजा बना देने की क्षमता रखता है, इस बात का निताई बसाक ही बार-बार प्रचार किया करता है।

सुकांत जब भी पूछता, "क्या हुआ दादा ? राइटर्स बिल्डिंग जाना हुआ फिर ?"

निताई वैसे व्यस्त आदमी था। लेकिन भद्रता के मामले में पक्का था। वह कहता, "कैसी बात करते हैं मिस्टर राय ? राइटर्स बिल्डिंग नहीं जाऊंगा तो खाऊंगा क्या ? हम लोगों की गुजर कैसे होगी ?"

"नहीं ऐसी बात नहीं। आप लोगों का तो परमिटों का झमेला रहता है, आपको तो जाना ही पड़ेगा ! मैं उसकी बात नहीं कर रहा, मेरा मतलब है, मेरे बारे में कुछ पता चला ?"

"यह क्या बात करने लगे आप ? आप सोचते हैं, मुझे उ

न्ता नहीं है ? कालीपद बाबू से कह आया हूं। मैंने कहा—सुकांत ू मेरे आदमी हैं, उनके लिए कुछ करना ही पड़ेगा आपको, नहीं तो न लोग जिन्दा कैसे रहेंगे ?”

“आपने कहा यह सब ?”

“कहूंगा नहीं ? कालीपद बाबू आज मिनिस्टर हो गए हैं तो क्या भगवान हो गए हैं ? बरसों ताश खेले हैं हम लोग, मुरमुरे और पकौड़े खाए हैं, वह सब क्या भूल सकता है कोई ?”

“आप लोग क्या एकसाथ उठते-बैठते थे ?”

निताई ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगता। कहता, “अरे क्या अकेले काली बाबू ? एक विधान बाबू को छोड़कर जितने भी मिनिस्टर हैं, सभी के साथ एक ज़माने में उठना-बैठना रहा है। अजी मैं एक नम्बर का बैठकबाज था, जितनी उन्नति हुई है, सब इस बैठकबाज़ी की बदौलत ही हुई है। लेकिन हां, आदमी देखकर मेल-जोल रखता हूं। ‘फोरसाइट’ भी थी। मुझे मालूम था, जिसके साथ मेज-जोल है, एक रोज वह बड़ा आदमी होगा ही…”

सुकांत कहता, “वाकई, मानना पड़ेगा कि आपमें दूरदृष्टि है।”

निताई बसाक कहता, “लेकिन जानते हैं, मुश्किल कहां है ? आज कल इन मिनिस्टरों के सेक्रेटरी लोग बड़े धूर्त होते हैं। बात हो न सुनना चाहते। वैसे दोष उनका भी नहीं है। घूस देने वालों ने राइ बिल्डिंग में चक्कर काट-काटकर इन लोगों को ऐसा लोभ सिखला दि है कि बगैर जेब गर्म किए, कोई कलम ही नहीं पकड़ना चाहता।”

सुकांत कहता है, “अगर कहें तो रुपये दे दूंगा। कितने देने प एक हजार ?”

निताई बसाक कहता, “खबरदार, रुपये का नाम भी न लीजि काम हुए बगैर इन लोगों के हाथ में पैसा नहीं रखना चाहिए। स एक नम्बरी हैं। माल हजम करके कहीं जा छुपेंगे कि फिर दिखलाई नहीं पड़ेगी।”

सुकांत पूछता, “तो अब क्या करने को कहते हैं ?”

शुरू-शुरू में निताई बसाक कहता, “जो करना होगा,

आप फिक्र न करें मिस्टर राय !"

लेकिन आहिस्ते-आहिस्ते परिचय जैसे-जैसे पुराना होता गया, घनिष्ठता जैसे-जैसे बढ़ती गई, निताई बसाक उतना ही बदलने लगा। कहने लगा, "दो सौ रुपये दीजिए तो, काम बन आया है आपका।"

सुकांत की हैसियत ऐसी कुछ नहीं कि दो सौ रुपये कहते ही दो सौ निकाल दे। लेकिन नौकरी में तरक्की के लिए आदमी को सब कुछ करना पड़ता है। इन मामलों में बीवी के गहने रेहन रखने की नौबत आने पर भी कोई पीछे नहीं हटता। सुकांत की जो भी जमा पूंजी थी, नौकरी की तरक्की के लिए उसने वह सब निताई बसाक के हाथ में रख दी। बाद में जब लगा कि उसके पास अब और कुछ नहीं है तभी से उसके पास निताई बसाक का आना भी कम हो गया। अब सुकांत राय ही निताई बसाक को ढूंढ़ता फिरता था। गाड़ी लेकर बार-बार दुलाल साहा के घर आकर सुनता—निताई बाबू कलकत्ते गए हैं, या दिल्ली नहीं तो बम्बई गए हैं।

बाद में तो उससे मिल पाना ही दूभर हो गया। अब सुकांत को भी शक होने लगा, तब क्या यह आदमी उसे ठग रहा है ?

इसीलिए उस रोज आकर जब सुना कि निताई बसाक नहीं है, तभी पता नहीं क्यों, उसे खयाल आया कि चलकर एक बार मालिक को ही देख लिया जाए। दुलाल साहा भी नहीं है, निताई बसाक भी नहीं है। सब-के-सब समधियाने गए हैं !

लेकिन यहां आकर जो सुना, उससे वह हतवाक् रह गया।

निवारण की हालत उस समय पागल जैसी हो रही थी।

सुकांत ने पूछा था, "क्या बीमारी हुई थी ?"

तब तक शायद किसी तरह यह खबर किशनगंज में फैल गई थी। एक-के-बाद एक लोग आने लगे। किसीके भी मुंह पर चूं तक नहीं थी। वही सब हुआ आखिर में। किशनगंज का भट्टाचार्य-भवन दुबारा सिर ऊंचा किए खड़ा हुआ। हरतन भी वापस आई। पोती के लौटने के साथ-ही-साथ मालिक फिर से वंश का खोया गौरव वापस ले आए।

हते तो शायद पेंपुलवेड़ के पास वाली आहर की शुगर मिल भी मालिक खुद भी यह वात वार-वार कहते थे। सभीने आशा कि यह वात सच होगी। एक दिन दुलाल साहा के गुरु आकर वाणी कर गए थे, उसका सब कुछ तो मिल गया, तो वाकी का क्यों मिला? वाकी क्यों न देख पाए मालिक?

अन्दर अचानक वड़ी वहूजी फूट-फूटकर रो पड़ीं। आम तौर पर वड़ी जी के गले की आवाज़ कभी किसीने नहीं सुनी। लेकिन आज के न भी क्या रोए वगैर रह पाना मुमकिन था?

निवारण ने फौरन अन्दर जाकर कहा, "रानी मां, चुप रहिए, हर-तन सुन लेगी।"

हरतन का नाम सुनते ही वड़ी वहूजी ने अपने-आपको सम्हाल लिया, फिर और नहीं रो पाईं। एक निवारण को छोड़ हरतन के वारे में जैसे सभी भूल गए थे। एक दिन जिसके लिए इलाज, इतनी देखभाल, और इतना खर्च हो रहा था, उसका किसीको खयाल ही नहीं था। वह इस मौत के वारे में नहीं जानती। उसे यह खवर देना ठीक नहीं है, यह वात निवारण के दिमाग में ही कौंधी। सच ही तो, यह खवर सुनकर उसकी बीमारी और वढ़ सकती है। यह ज़िम्मा वंकू ने ले रखा था। अव तक सव देखने के वाद वंकू जैसे गूंगा हो गया था, लेकिन ध्यान हर ओर था। वह सीढ़ी रोककर खड़ा हो गया, जिससे कोई ऊपर जाकर हरतन तक खवर न पहुंचा दे। साथ ही हरतन भी किसी तरह खवर पाकर नीचे न उतर आए।

इतने पर भी वंकू को शक था।

वंकू दवे पांव ऊपर पहुंचा। वाहर वराण्डे से झांककर देखा, हरत सो रही है। सिर के ऊपर पंखा सनसना रहा था। सामने टेवल पर अंग सेव, अनार, सव तैयार रखे थे।

अचानक आंख खुलते ही हरतन ने वंकू को देख लिया।

"चोरी-चोरी क्या देख रहे हो?"

वंकू सकपका गया। आहिस्ते-आहिस्ते अन्दर आया। वोला, देख रहा था, तुम क्या कर रही हो? दवा खाने का वक्त हो गया है

हरतन ने मुंह बनाकर कहा, "दवा नहीं खानी है मुझे।"

"क्यों? मालूम है, कितनी मुश्किल से कलकत्ते से दवा लाता हूं?"

"सो मालूम है। लेकिन इतनी तकलीफ उठाकर तुम सोचते हो, तुम्हारा कुछ फायदा होगा?"

"सोचती हो, अपने फायदे के लिए यह सब कर रहा हूं? तुम किसी तरह ठीक हो जाओ, इसीलिए यह सब हो रहा है।"

"लेकिन मेरे ठीक होने से तुम्हें क्या फायदा होना है? मेरे ठीक होते ही तो तुम्हें यह घर छोड़ना पड़ेगा। तब कोई तुम्हें इस तरह बिठला-कर फोकट में खाना नहीं खिलाएगा।"

वंकू ने ज़रा हंसने की कोशिश की। नीचे जो कुछ हो रहा है, हरतन को कहीं उसकी भनक न पड़ जाए। उसने कहा, "लगता है, मुझे फोकट का खाना मिलता देखकर तुम्हें काफी जलन हो रही है।"

हरतन ने कहा, "यह बात नहीं है, मैं कह रही थी, मेरे ठीक होते ही तुम्हें फिर चंडी बाबू के यहां मशक्कत करनी पड़ेगी, खाना जुटाने के लिए।"

तभी जैसे कुछ सुनकर हरतन के कान खड़े हो गए। फिर बोली, "नीचे हल्ला क्यों हो रहा है? लगता है, काफी लोग आए हैं!"

इसके बाद कहने लगी, "बहुत दिनों से दादा को नहीं देखा है, दादा आजकल मेरे पास आते क्यों नहीं हैं? मैं ठीक हो गई हूं, क्या इस-लिए?"

वंकू बोला, "नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं है। काम-काज बढ़ गया है। और भी एक जमीन खरीद रहे हैं तुम्हारे लिए। एक और मकान बन-वाएंगे न! रोज ही मालिक तुम्हारे बारे में पूछते हैं, अभी थोड़ी देर पहले ही पूछा था कि हरतन कैसी है।"

"तुमने क्या कहा?"

"मैं और क्या कहता? कह दिया कि बहुत अच्छी है। सचमुच ही तुम काफी ठीक हो गई हो अब। अच्छा है, तुम जल्दी-जल्दी अच्छी हो जाओ तो मुझे छुट्टी मिले।"

हरतन ने मुसकराकर कहा, "तब तो मुझे कुछ रोज और इसी तरह

ड़े रहना चाहिए, क्यों ?

"किसलिए ?"

"ऐसा करने से तुम जो चाहते हो, वही होगा ।"

"मैं क्या चाहता हूं, तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"इतने दिन एकसाथ काम किया है हम लोगों ने, तुम क्या चाहते हो, मुझे मालूम नहीं होगा ?"

"साफ-साफ कहो न कि मैं क्या चाहता हूं ?"

"जाओ, तुमसे तो वात करना ही मुश्किल है। अरे, यह क्या नल-दमयन्ती का ड्रामा है कि पार्ट देखा और फटाफट वोलना शुरू कर दिया ?"

वंकू ने कहा, "लेकिन दादा ने कहा है कि एक रात तुम्हारा पार्ट देखेंगे। तुम्हारे अच्छे हो जाने के वाद, यहीं घर के सामने, 'रानी रूप-कुमारी' का तुम्हारा पार्ट देखेंगे ।"

हरतन ने कहा, "अव तो सारे पार्ट ही भूल गई, अव कुछ भी याद नहीं है।"

वंकू ने कहा, "लेकिन मैं नहीं भूला हूं। तुम्हारा पार्ट भी सुना सकता हूं। मुझे सव याद है।"

हरतन अचानक वोल उठी, "अच्छा, मेरे ठीक होने पर तुम क्या करोगे वंकूदा ? फिर से जाकर चंडी वावू के ऑपेरा में काम करोगे ?"

वंकू ने कहा, "वह सव अभी नहीं सोचा है।"

"लेकिन अभी से सोचे वगैर काम कैसे चलेगा ? हमेशा मेरे पास बै रहने से तो नहीं चलेगा।"

वंकू ने कहा, "सो तो नहीं ही चलेगा। तुम्हारी शादी होगी, घ वार होगा, तुम वहू वनकर अपना घर सम्हालोगी। कभी-कभी, सकता है, तुम्हें देख आया करूंगा। तुम घूंघट से सिर ढके मेरे सा आकर खड़ी होओगी, फिर अन्दर चली जाओगी।"

हरतन वोली, "वाह ! तुमने तो एकदम मेरे भविष्य का नक्श वनाकर रख दिया। देखती हूं, दूरदृष्टि है तुम्हारे में।"

वंकू ने कहा, "सच कहता हूं अंजना, इससे ज़्यादा कुछ चाह अधिकार ही कहां है हम लोगों को ?"

हरतन बोली, "अब यहां खड़े होकर यह नाटक करना बन्द भी करो।"

बंकू बोला, "रूपकुमारी का मेरा पार्ट देखकर कितने लोगों ने मजाक बनाया, लेकिन मैंने उसका कोई बुरा नहीं माना। लेकिन अब तुम भी अगर इस तरह मेरा मखौल उड़ाओगी तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा।"

हरतन बोली, "तो मैंने ऐसी कौन-सी खराब बात कह दी! तुम्हीं क्यों सुना रहे थे मुझे वे सब फालतू बातें?"

"कौन-सी बातें?"

"वही सब कि मेरी शादी होगी। घूंघट डालकर तुम्हारे सामने आऊंगी, क्या-क्या सब कहे जा रहे थे?"

"तो इसमें झूठ क्या कहा मैंने? तुम कभी शादी नहीं करोगी क्या? घर नहीं बसाओगी कभी? तो यह इतना बड़ा मकान, यह इतनी संपत्ति, ऐश्वर्य, यह सब कौन खाएगा? कौन सम्हालेगा इस सबको?"

हरतन ने कहा, "ओह, तो यह कहो कि मैं पैसेवाली हो गई हूं, यह तुमसे देखा नहीं जा रहा?"

बंकू ने कहा, "देखा जा रहा है इसीलिए तो तुम्हारे मुंह पर यह सब कहने की हिम्मत आई मुझमें। इतने दिन बाद ठीक हो रही हो, इससे मेरे जितनी खुशी कितनों को हुई है जरा?"

हरतन ने कहा, "लेकिन बंकूदा, सच कहती हूं, लगता है, इतना आराम मिले बगैर शायद कभी पता ही नहीं चलता कि तकलीफ सहना किसे कहते हैं। इसीसे तो तुम्हारे बारे में सोचकर डर लगता है। यहां से लौटकर तुम्हें बड़ी बाबू क्या नौकरी देंगे तुम्हें? अगर दी भी तो क्या तुम वह नौकरी कर पाओगे अब?"

बंकू बोला, "मेरी चिंता छोड़ो, मैं भी कोई आदमी हूं?"

हठात् फिर नीचे से गोलमाल की आवाज आई।

हरतन ने पूछा, "यह कैसी आवाज हो रही है? नीचे इतना हल्ला क्यों हो रहा है? ये लोग कौन हैं?"

बंकू बोला, "कुछ भी तो नहीं अंजना! कहां, मुझे कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा। दादा, लगता है, सरकार बाबू को डांट रहे हैं।"

गोलमाल बढ़ रहा था। हरतन बिस्तरे से उठने लगी।
ने कहा, "तुम क्यों उठ रही हो ? मैं जाकर देख आता हूँ कि
त है।"
किन नीचे गोलमाल और भी बढ़ गया था। किसीके रोने की
ावाज, कुछ लोगों की बातचीत की आवाज़, जैसे बहुत-से लोग
हुंचे थे और क्या सब कह रहे थे। इतना बड़ा घर, स्पष्ट कुछ भी
ई नहीं पड़ रहा था।

"लगता है तुम मुझसे छुपा रहे हो कुछ! बोलो, क्या बात है ? क्या
ा है नीचे ?"

वंकू ने कहा, "नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं हुआ। तुम चुपचाप लेटी
रहो। मैं जाता हूं, देखकर आता हूं, क्या बात है।"

लेकिन हरतन ने उसकी बातें नहीं सुनीं। वह बिस्तरा छोड़ उठ खड़ी
हुई। बोली, "वंकूदा, तुम बेकार छिपा रहे हो, मैं समझ गई हूं।" कहकर
दरवाज़े की ओर बढ़ी।

वंकू ने हरतन का हाथ पकड़ लिया और कहा, "तुम नीचे न
जाओ अंजना, मेरी बात सुनो, तुम्हारी सेहत इस लायक नहीं है, तुम
अभी भी बीमार हो।"

हरतन वंकू का हाथ झटककर सीढ़ी की ओर बढ़ गई।

वंकू चिल्लाकर उसे पकड़ने भागा, "अंजना, सुनो, डॉक्टर ने तुम्हारे
लिए हिलना-डुलना मना किया है, मेरी बात सुनो।"

लेकिन तब तक नीचे से और भी ज़ोर की आवाज़ें आने लगीं। हर-
न धम-धम करती सीढ़ी से उतरने लगी।

वंकू पीछे-पीछे आ रहा था, "अंजना, सुनो।"

लेकिन नीचे पहुंचकर हैरान रह गई। नीचे बहुत-से लोग जमा थे
दीवानखाना, बराण्डा, आंगन सब भर गए थे।

वंकू भी उतने लोगों को देखकर हैरान था। बड़ी बहूजी ज़मीन
बेसुध पड़ी थीं। मालिक भी बिस्तरे पर निश्चिंत लेटे थे। एक म
मक्खी उनके होंठों पर बैठी अपने पर हिला रही थी। और निव
सरकार पत्थर का बुत बना खड़ा था। उसमें जैसे हिलने-भर की

नहीं रह गई थी।

जो लोग इतनी देर से कानाफूसी कर रहे थे, वे भी हरतन को आते देखकर चुप हो गए।

हरतन जैसे सबको पहचान रही थी। अरे यह तो नई बहू है, ये दुलाल साहा और ये निताई बसाक, और उनके पीछे ही था दुलाल साहा का लड़का विजय। उन लोगों के पीछे सुकांत राय, इतने लोगों को देख जैसे भौचक खड़ा था। और सबसे पीछे कुछ पुलिस वाले, दरोगा और एक अजान चेहरा।

"दादा, दादा!"

हरतन के गले की आवाज आर्तनाद जैसी सुनाई दे रही थी दूर किसीको। लगा कि मालिक इस आवाज को सुन अभी उठ बैठेंगे। लेकिन मालिक उसी तरह निश्चल निथर पड़े रहे। नई बहू ने हठात् आगे बढ़कर हरतन का हाथ पकड़ लिया।

आज इतने दिन बाद किशनगंज की बातें याद कर सिर्फ बंकू ही नहीं, अंजना भी जैसे अन्यमनस्क हो उठती है। कभी यह श्रीमानी ऑपेरा की रूपकुमारी थी!

रानी रूपकुमारी। रानी ही तो। नाटक-दल की नकली राजकुमारी सीधे किशनगंज की सचमुच की रानी। बंकू जब अपने नये दल के साथ जोरहाट, गोहाटी, शिवसागर और डिब्रूगढ़ की ओर जाता है तो स्टेशन के प्लेटफार्म पर लोगों की भीड़ जमा हो जाती है। पहले जैसे 'श्रीमानी ऑपेरा' के समय में होती थी। ठीक वैसे ही। लोग कहते, 'अरे श्रीमानी ऑपेरा आ रहा है, यात्रा करने।'

बंकू ने अपने नाम पर ही नया दल बनाया है, बंकू विहारी दास। दास से पहले श्री लगाकर नाम हुआ, 'श्रीदास ऑपेरा'। कम-से-कम एक महीने पहले बुक कराए बिना 'श्रीदास ऑपेरा' की तारीख नहीं मिलती। आज काफी नाम हो गया है 'श्रीदास ऑपेरा' का।

हालांकि उस रोज यानी मालिक की मृत्युवाले रोज भी बंकू इस बात की कल्पना तक न कर पाया था। तुम, हम, इसके अलावा और भी

लोग जो किशनगंज को शुरू से आखीर तक देखते आए हैं, जिन्होंने ल साहा को भी देखा है, मालिक को भी देखा है, अपने पांवतले की ी किस तरह शुरू हुई, यह बात ज़रूर नहीं मालूम हमें, लेकिन किशन- को देखकर उसकी कल्पना कर सकते हैं। यह पृथ्वी ही जैसे एक ड़ा किशनगंज है। हर रोज़ रास्ते में हम दुलाल साहों को देखते हैं, ालिकों को भी देखते हैं। यहां पर कोई जीतता है तो कोई हारता है। कोई मिट्टी रौंदते चलते हैं तो कोई मिट्टी कंपाते चलते हैं। दोनों दलों में का कोई भी हमेशा के लिए नहीं आया। लेकिन तो भी ये लोग जव तक रहते हैं, इनमें एक की उन्नति होने पर दूसरे का सीना फटता है। एक के घर पूड़ियां तले जाने पर दूसरे को तकलीफ होती है। एक पर विपद-आपद पड़ती है तो दूसरा चैन की सांस लेता है। अनन्तकाल से यही चला आ रहा है।

आज भी अगर कोई किशनगंज जाए तो मालिक के घर के सामने जाकर चौंक उठेगा। दुलाल साहा के घर से मालिक के घर जाने के लिए पहले धूल और कीचड़ रौंदते और चक्कर काटकर जाना पड़ता था। लेकिन अव वह वात नहीं है। अव वह अचल एकाकार हो गया है। यहां से वहां तक लम्वी चारदीवारी खिच गई है। सारी ज़मीन हरिसभा के नाम पर देवोत्सर्ग हो गई है। दुलाल साहा भी नहीं है। मालिक भी नहीं हैं। वड़ी वहूजी भी नहीं हैं, निवारण सरकार भी नहीं है। लेकिन फि भी किशनगंज है। और है किशनगंज की हरिसभा।

अभी उस रोज़ तक सिर्फ निताई वसाक था। ज़िन्दगी भर पंपुल वाली आहर से लेकर जिस आदमी ने सुकांत राय के प्रमोशन त लेकर इतना हंगामा किया, उसका कोई निशान तक वाकी नहीं कोई नहीं जान सका कि किस तरह किशनगंज की 'दी इंडिया मिल्स लिमिटेड' की स्थापना हुई, किस तरह पटसन के इम्पोर्ट- का लाइसेन्स हासिल हुआ तथा किशनगंज की उन्नति के पीछे हाथ-सफाई थी। आखिरी दिनों में छड़ी लिए शाम के वक्त टह लता था, या कभी गाड़ी में वैठकर पूरे इलाके का चक्कर ल ड्राइवर गाड़ी ले जाकर इच्छामती के पक्के घाट के पास खड़ी

दुलाल माहा जब तक जिंदा रहा, उसने रोज अपने हाथ में झाड़ू लेकर इस घाट को धोया है। जवानी के वे दिन याद आते, जब दुलाल साहा और वह माझी, मल्लाह और व्यापारियों से हरिसभा के लिए फी आदमी एक आना चन्दा उघाया करते थे। सिर्फ याद ही करता था उन सबके बारे में, कहनेवाला या सुननेवाला कोई बाकी नहीं रहा था किशनगंज में। पाकिस्तान से आए नये-नये लोग किशनगंज में बस गए हैं। जिन्हें गंज की ओर जगह नहीं मिली, वे लोग मछुआटोली की ओर जाकर बस गए हैं। किशनगंज पूरी तरह भर गया है। नये आए रिफ्यूजियों ने कपड़े और बर्तनों की दुकानें खोल ली हैं। गंज, बाजार और सड़क पर ये लोग जैसे छा गए हैं। इनकी वजह से सड़क पर मोटर चलाना तक दूभर हो गया है। साइकल लिए जैसे सिर पर ही गिर पड़ते हैं।

बाद में हठात् एक दिन निताई बसाक भी मर गया।

अखबारों में जब निताई बसाक के मरने की खबर छपी तो खबर के साथ उसकी फोटो भी छपी थी। फोटो के नीचे शोक-संवाद में निताई बसाक के अनेक गुणों का बखान था। लिखा था: 'आप किशनगंज के प्रातःस्मरणीय व्यक्ति थे। इन्हीं के परिश्रम एवं उद्योग से किशनगंज में विभिन्न सेवा प्रतिष्ठानों की स्थापना हुई थी। वे एक ही साथ कर्मठ व्यवसायी और संन्यासी थे। विभिन्न जनहितकारी संस्थाओं से युक्त रहकर आप निरासक्त भाव से आजीवन कर्मरत रहे। उनकी मृत्यु से राममोहन, रवीन्द्रनाथ, विद्यासागर और विवेकानंद के देश ने एक और कर्मवीर खो दिया है। हम उनकी पारलौकिक आत्मा के लिए शांति की कामना करते हैं एवम् उनके अनगिनत शोकसंतप्त गुणग्राही श्रद्धालुओं के लिए हार्दिक सहानुभूति की कामना करते हैं।'

इस जमाने के नये लोग अखबार पढ़कर 'अहा' कर उठे। सचमुच देश से एक महापुरुष उठ गया। इसीलिए जिस रोज किशनगंज में निताई बसाक के लिए शोकसभा हुई तो सिर्फ एक आदमी था जो हैरान था, और वह था सुकांत। यह कैसे हो सकता है? यह भी संभव है? कितने लोगों को देने का नाम कर यह आदमी सुकांत से कितने रुपये ऐंठ चुका

। एक पैसा भी राइटर्स विल्डिग में किसीके पास नहीं पहुंचा। का प्रमोशन भी नहीं हुआ, वदली भी नहीं हुई। अभी भी वह गंज के मछुआटोली में वी०डी०ओ० ही है, और कुछ भी नहीं हो ।

सिर्फ है ही नहीं, मालिक और दुलाल साहा के झगड़े को शुरुआत कर अंतिम परिणति तक उसने देखा है।

यह परिणति जितनी अप्रत्याशित थी, उतनी ही आश्चर्यजनक ! ी तरह मानव-जीवन की परिणति होती है। वंकू विहारी जिस दिन रतन को लेकर मालिक का घर छोड़कर गया, उस रोज़ सुकांत भी वहां ौजूद था। वही क्यों, सभी लोग थे। सभी लोग वहां मौजूद थे।

किशनगंज में उस रोज़ खलवली मच गई। मछुआटोली, उत्तर टोली, दक्षिण टोली और गंज के लोग आकर मालिक के घर जमा हुए थे।

जो सुनता, वही कहता—क्या हुआ ? कहां चल दिए ?

इसने उसके मुंह से सुना, उसने उसके मुंह से। किसीने अपनी आंखों नहीं देखा था। सब सुनी-सुनाई वात थी। सुनी वात का यकीन नहीं, इसीलिए सभी अपनी आंखों देखने दौड़ रहे थे। इतने ताज्जुव की वात को देखे वगैर रहा जा सकता है भला ?

"सच कहते हो ?"

"अजी सच नहीं तो क्या ऐसे ही कामकाज छोड़कर फ़िजूल भाग रहा हूं ?"

किसीने देखा नहीं, लेकिन घटना सभीने सुनी है। सुना कि इतने दिन वाद मालिक की असली पोती का पता चला है।

"तव इतने दिन से घर में जो थी, वह कौन है ?"

"वह कौन है, वहां पहुंचने पर ही पता चल जाएगा। हमने क्या देखा है ? हम तो सुनी-सुनाई वात कह रहे हैं।"

उस रोज़ किशनगंज में हर कोई उस सुनी-सुनाई वात को परख मालिक के घर पहुंचे थे। लेकिन आकर जो देखा, उसके वाद दांतों उंगली दवाने के अलावा कोई रास्ता नहीं वचा उनके पास। हर ज़ पर एक ही वात थी। आश्चर्य ! ऐसी परिणति हो सकती है इंसान

ज़िंदगी में। सभी जाते हैं, मालिक भी गए लेकिन जाने से पहले यह सब देख लेते तो उनका ऐसा नुकसान हो पाता? उनको तो कुछ पता भी नहीं चल पाया। वे तो अपने भाग्यदेवता के नाम एक हल्का-सा अभियोग भी नहीं कर पाए। कह नहीं पाए कि प्रभु, मैंने जो भी चाहा, तुमने सभी दिया, लेकिन इस मर्मान्तिक रूप में दिए बग़ैर क्या काम नहीं चलता था? वैसा करने से क्या आपकी महासृष्टि के कार्य में कोई बड़ी हानि हो जाती ?

नई बहू अभी भी अपने को पूरी तरह सम्हाल नहीं पाई थी।

दुलाल साहा भी जैसे इन पीढ़ियों में सिमटकर छोटा हो गया था। दीनगोविंद घटक को लिए जब पुलिसवाले वापस आए तब पूरे किशनगंज की तस्वीर ही जैसे बदल गई।

पुलिस के दरोगा ने दीनगोविंद से पूछा था, "लेकिन तुमने यह सर्वनाश क्यों किया ?"

पागल में भी जैसे पाप-बोध अभी बाकी था। उसने कहा, "मेरी मति मारी गई थी हुजूर ! मैं उस वक्त पंद्रह भरी सोने का लोभ नहीं छोड़ पाया।"

"लेकिन तुमने एक बार भी नहीं सोचा कि तुम दुलाल बाबू जैसे धार्मिक आदमी का सर्वनाश करने जा रहे हो ?"

"सोचा क्यों नहीं हुजूर ?"

"तब फिर ऐसा काम क्यों किया ?"

"मैंने कहा न हुजूर, पंद्रह भरी सोने के लोभ में। वह सोना भी नहीं मिला। मेरा भी सर्वनाश हो गया।"

इसके बाद गांव के कुछ लोग आकर खड़े हुए। नई बहू की एक बुआ थी, वह भी नहीं थी अब। उसके मरने के बाद वह संपत्ति भी नई बहू की हो गई।

निताई बसाक और दुलाल साहा ने उस संपत्ति को बेचकर रुपया भी ले लिया। इसलिए गांव के किसी आदमी ने सोचा भी न था कि इतने दिन बाद वही पोती फिर आएगी उस गांव में।

लड़की है ?"

लेकिन तुम्हें यह कैसे पता चला कि मछुए की लड़की है ?"

जी, शादी से पहले इनकी बुआ से ही सुना था। इसीलिए तो शादी हो रही थी कहीं।"

नई बहू अचानक बोल उठी, "झूठ बात, ऐसा कुछ होता तो मुझे पता चलता। तुम झूठ बोल रहे हो।"

"नहीं बिटिया, पहले भी कितनी बार झूठ बोल चुका हूं। आज उस पाप का फल भी भोग रहा हूं। मेरी अपनी लड़की भी शायद इसी पाप से मर गई। जिसके भले के लिए मैंने सदानंद की बात में आकर झूठ बोला था, वही अब नहीं है। अब और किसके लिए झूठ बोलूं ? कौन है मेरा ?"

"तो फिर क्यों कह रहे हो कि मैं मछुआ की लड़की हूं, मेरी बुआ, मेरी अपनी बुआ नहीं थी ?"

"नहीं मां, नहीं..."

"सबूत है तुम्हारे पास ?"

दोलगोविंद ने कहा, "वह सबूत देने ही तो आया हूं यहां।"

"ठीक है, तो सबूत दो।"

दोलगोविंद ने कहा, "अच्छा, आप लोग ज़रा रुकिए," कहकर कहीं चला गया और थोड़ी ही देर में एक बूढ़े आदमी को लेकर वापस आया। उस आदमी की उम्र करीब नब्बे साल की होगी। उस आदमी ने आकर सब लोगों को प्रणाम किया। उम्र के बोझ से कमर झुक गई थी। आंखों से दिखाई भी ठीक से नहीं देता था।

"आप लोग इसीसे पूछ लीजिए, जो कुछ पूछना है।"

दरोगा साहब ने पूछा, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"हुजूर, कालीचरण माइती।"

"कहां रहते हो ?"

"हुज़ूर, और कहां रहूंगा, उसी गांव में रहता हूं।"

"दोलगोविंद घटक को जानते हो ?"

"खूब अच्छी तरह से।"

"इन महिला को पहचानते हो ?"

"जी हां, खूब अच्छी तरह से। मेरी रानी बिटिया। कितनी बार मेरी गोद और पीठ पर चढ़ी है। मैं इन्हीं लोगों की रोटी खाता रहा हूं। ये शायद मुझे नहीं पहचानेंगी अब, कितने बड़े घर की बहू हैं अब।"

नई बहू की ओर देखकर दरोगा साहब ने पूछा, "आप पहचान पा रही हैं इसे?"

नई बहू ने कहा, "नहीं···"

"ठीक है। ज़रा अच्छी तरह पहचानने की कोशिश कीजिए।"

कालीचरण माइती बोला, "अच्छा बिटिया रानी, तुम्हें याद है, यहां एक अमरूद का पेड़ था? तुम अमरूद खाना चाहती थीं, मैं तोड़ देता था, तुम्हारे लिए?"

नई बहू ने कहा, "मुझे कुछ भी याद नहीं है।"

कालीचरण ने कहा, "तुम छोटी जो थी बिटिया, तुम्हें कैसे याद होगा? तुम्हारे विवाह के समय मैं आया था। गुमाई मां ने मुझे खबर देकर बुलवाया था। इनकी बुआ को मैं गुमाई मां कहकर पुकारता था।"

"लेकिन तुम क्या उन दिनों यह घर छोड़कर कहीं और नौकरी करते थे?"

"नहीं, मुझे गुमाई मां ने काशी भेज दिया था। कहा था—काली-चरण, तेरी उमर हुई। तू चटर्जी लोगों के साथ काशी घूम आ, मैं तेरा खर्चा देती हूं। रानी बिटिया के ज़रा बड़े होते ही काशी का नाम कर बाहर भेज दिया। गांव के चटर्जी काशी जा रहे थे न!"

"इसके बाद?"

"इसके बाद चटर्जी लोग घूम-घामकर चले आए। मैं वहीं रह गया, गुमाई मां ने वहीं रहने को लिखा था। चिट्ठी लिखी थी। मैंने भी सोचा, ठीक है, बाबा विश्वनाथ के चरणों में पड़ा रहूंगा।"

"लेकिन काशी से लौट कैसे आए?"

"गुमाई मां के मरने के बाद मुझे रुपये कौन भेजता, सो यात्रियों के साथ फिर वापस गांव लौट आया।"

दरोगा साहब ने कहा, "लेकिन गुमाई मां ने तुम्हें इस तरह काशी भेजा ही क्यों?"

कालीचरण बोला, "वही कहा न, कि मुझे सब कुछ मालूम था।"

"क्या मालूम था तुम्हें ?"

"वही बात कहने के लिए दोलगोविंद मुझे यहां बुलाकर लाया है हुज़ूर ! गुसाई मां के तो कोई भी नहीं था हुज़ूर। लड़का गया, नाती गया, इतना बड़ा घर जैसे खाने को दौड़ता था। रहने वालों में एक मैं था और गुसाई मां। मैं घर का काम-काज करता और गुसाई मां की सेवा करता। इसी बीच एक दिन सुबह गुसाई मां बोलीं, 'अरे कालीचरण, आज एक बड़ा अच्छा सपना देखा है रे !'

मैंने पूछा, 'सपने में क्या देखा गुसाई मां ?'

गुसाई मां ने कहा, 'अरे कालीचरण, मैंने देखा कि मां लक्ष्मी उस अमरूद के पेड़ की ओर से अपने घर की ओर आ रही हैं। रूप के उजाले से चारों ओर सब कुछ जगमग कर रहा था। पहले तो मैं पहचान ही न पाई। मैंने पूछा—तुम कौन हो मां ? मां लक्ष्मी ने कहा—मैं कमला हूं। तुम्हारा घर आलोकित करने आई हूं। तुम रख पाओगी मुझे ? मैंने कहा—रख क्यों नहीं पाऊंगी मां, तुम अगर अचला होकर मेरे घर रहो तो ज़रूर रखूंगी।'

मैंने पूछा, 'इसके बाद ? इसके बाद क्या हुआ गुसाई मां ?'

गुसाई मां बोलीं, 'उसके बाद मां लक्ष्मी के पास आते ही उसे गोद में लेकर चूम लिया। कैसी फूल-सी बिटिया थी कालीचरण, कि क्या कहूं ! इसके बाद जैसे ही एक बार और चूमने जाऊं, वैसे ही नींद टूट गई। देखा, अंधेरे कमरे में अकेली लेटी हूं, समझ गई, स्वप्न देखा था।'"

कालीचरण माइती ज़रा सांस लेने के बाद फिर कहने लगा, "इसके बाद हुज़ूर, मां लक्ष्मी की क्या लीला ! पिछले दिन ज़ोर का आंधी-पानी हो चुका था, हठात् देखा, पूरब मुहल्ले की ओर से कोई आ रहा है। पहले सोचा, तारिणी कोलू की वहू नातनी को लिए आ रही है। लेकिन नहीं हुज़ूर—पास आने पर देखा, कोई दूसरी ही औरत थी।

गुसाई मां ने कहा, 'कौन है ?'

वह और पास आकर रोने लगी। बोली—'मैं पराण मछुए की बहू हूं। आंधी-पानी में मेरा घर ढह गया है, मुझे रहने के लिए जगह दो मां !'

मैं टकटकी लगाए उस औरत की गोद की लड़की को देख रहा था। गुसाई मां भी देख रही थी। गुसाई मा ने मेरी ओर देखा। पराण को हम लोग जानते थे हुजूर ! गुसाई मां तो मछली खाती नहीं थी, लेकिन वह मछली पकड़कर घर-घर बेचता था। उसे सब जानते थे। मैंने सोचा, इतने घरों के रहते यह गुसाई मा के घर ही क्यों आई है ?

गुसाई मां ने ही पूछा, 'गोद की लडकी कौन है री ?'

पराण की बहू बोली, 'रास्ते में पड़ी मिली गुसाई मां !'

'पड़ी मिली ?'

गुसाई मा शायद सपने की बात सोच रही थी।

पराण मछुए की बहू की गोद वाली लडकी गुसाई मां की गोद में आने के लिए हाथ फैला रही थी। छटपट कर रही थी। गुसाई मा को लगा, सपने में भी लक्ष्मी ठीक इसी तरह उनकी ओर देख रही थी।

गुसाई मा लडकी को गोद में लेकर चूमने लगी।

फिर बोली, 'इस लडकी को मेरे पास छोड दे, बड़ी प्यारी लड़की है री…'

पराण की बहू बोली, 'तो मुझे भी रहने दो मा, मेरा घर-बार सब चला गया। तुम्हारे पास ही पडी रहूंगी।'

'लेकिन यह लडकी है किसकी ? खोज-खबर नही की कुछ ?'

'नही गुसाई मा, किसीने खोज नही की। सुबह-सुबह बैंगन लेने खेत गई—वहीं मिली थी यह लडकी। लेकिन किसीसे कहना नहीं गुसाई मा ! बाद में भी किसीने इतने दिन खोज-खबर नही ली। तब से मेरे पास ही बनी है। मैने इस बारे में किसीसे कुछ भी नही कहा है गुसाई मा… '

'तेरे मुहल्ले में मालूम है सबको ?'

'मैंने कह रखा है कि यह मेरे बहन की लड़की है। बहन मेरे पास छोड गई है इसे।'

तो गुसाई मा ने उस रोज ही पराण मछुए की बहू से लडकी को ले लिया। उसी रोज से मा लक्ष्मी गुसाई मा के पास रह गई। इसके बाद जब तक पराण मछुआ और उसकी बहू जिंदा रहे, गुसाई मां चावल,

और कपड़े देती रहीं। जैसे-जैसे दिन वीत रहे थे, गुसाईं मां की भी
तरी होने लगी। और भी ज़मीन हुई, पैसा भी आया, घर और भी
ा हुआ—मैं रानी विटिया को रखता था, गुसाईं मां भी दिन भर मां
क्ष्मी को लेकर व्यस्त रहती थीं।

वाद में जव मां लक्ष्मी वड़ी हुई तो यह दोलगोविंद घटक एक दिन
आया। उसने कहा, 'एक अच्छा लड़का है, अगर विवाह करना हो
तो…' मैंने कहा, 'लेकिन मां लक्ष्मी गुसाईं मां की अपनी नातनी नहीं
हैं।'

दोलगोविंद ने पूछा, 'तव किसकी हैं ?'

मैंने सव कुछ साफ-साफ कह दिया। दोलगोविंद वोला, 'इसके माने
मछुए की लड़की है ?'

गुसाईं मां मेरी वात सुनकर वहुत नाराज़ हुईं। कहने लगीं, 'तुझे
हर वात में टांग अड़ाने की क्या ज़रूरत है ? तू क्यों वोलने गया कि मेरी
नातनी नहीं है ? मैंने तो इसका गोत्र भी वदल दिया है। पुरोहित वुला-
कर गोद भी ले लिया है, अव तो यह मेरी ही जाति की है।'

इसपर भी मेरा मन नहीं मान रहा था। तव गुसाईं मां ने नाराज़
होकर चटर्जी लोगों के साथ मुझे काशी भेज दिया। मैं भी काशी चला
गया। चटर्जी परिवार एक महीने काशी रहकर वापस चला आया और
मैं वहीं रह गया। गुसाईं मां हर महीने रुपये भेजतीं।

वाद में मां लक्ष्मी के विवाह पर काशी से आया। गुसाईं मां मुझसे
वोलीं, 'कालीचरण, अव किसीसे कह नहीं देना कि यह मेरी नातन
नहीं है। इसके विवाह में आने की तेरी इच्छा थी इसीलिए तुझे वुलवा
है, व्याह हो जाने पर तुझे वापस काशी जाना है।'

'ठीक है, चला जाऊंगा', इसके अलावा मुझे इस सव पचड़े में
की ज़रूरत भी क्या थी। मां लक्ष्मी के व्याह में जी भरकर माल उ
और जी भरकर आशीर्वाद दिया।"

इतनी देर तक सव लोग सांस रोके कालीचरण माइती की
सुन रहे थे। दोलगोविंद घटक, दरोगा, पुलिस वाले, दुलाल साहा,
वसाक और नई वहू—सभी।

कालीचरण माइती बोलते-बोलते रुक गया। नब्बे साल का बूढ़ा आदमी। आखों से ठीक से देख भी नही पाता, बात भी नहीं कर पाता ठीक से। दांत सारे गिर चुके हैं। चमड़ी झूल गई है।

दरोगा साहब ने पूछा, "फिर? इसके बाद क्या हुआ?"

कालीचरण माइती कहने लगा, "पराण मछुए की बहू ने शुरू मे कुछ भी नही कहा, हम लोगो ने भी कुछ नही पूछा। पूछने की जरूरत भी क्या थी, आप ही कहिए? पराण की बहू गुसाई मा के पास रहती और घर का काम-काज करती। वाकई उस बार मछुआटोली मे बड़े ज़ोर का आधी-पानी बरसा था। नदी को भी न जाने क्या हुआ कि तभी से इस ओर की बाड़ तोड़कर मामारकपुर की ओर के खेतो को अपनी चपेट मे ले लिया। मछुआटोली ही खत्म हो गया गाव से।"

नई बहू ने अचानक कहा, "लेकिन मैं मछुए की लड़की हू, इस बात का कोई सबूत तो तुम नही दे पाए?"

कालीचरण ने कहा, "जी, वही कहने जा रहा हू रानी बिटिया! तुम्हारे आने के बाद से गुसाई मा की हालत अच्छी होने लगी थी। इसी-लिए गुसाई मा भी मा लक्ष्मी की तरह तुम्हारी सेवा करती। गुसाई मां कहती, 'कालीचरण, यह मेरी मा लक्ष्मी हैं, इससे कुछ न कहना तू।' उन दिनो तुम शैतान भी तो कम नही थी रानी बिटिया। मुझे कितना नोचा-खसोटा है तुमने, फिर भी मा लक्ष्मी मानकर हमेशा छाती से लगाए रखता। वैसे भी गुसाई मां की वजह से कुछ भी कहना मुश्किल था।"

दरोगा साहब बोले, "अच्छा, इन बातो को छोड़ो, असली बात कहो—तुम्हे कैसे मालूम हुआ कि ये मछुए की लड़की हैं?"

"कहता हूं हुजूर, बूढ़ा आदमी हू इसीलिए बात ठीक से नही कर पाता। माफी चाहता हूं। हा, तो पराण की बहू बीमार हो गई एक दिन। गांव मे बीमार कितने ही हुआ करते हैं, लेकिन पराण की बहू फिर ठीक नही हुई।"

"ठीक नही हुई?"

"जी हा, फिर ठीक नही हुई। मर ही गई बेचारी! अहा, उन दिनों की बातें जैसे आज भी नजरों के आगे घूम रही हैं। मरने से एक

ल पराण की वहू ने मुझे वुलाया। उसने कहा, 'कालीचरण, मैं तो हूं। लेकिन जाने से पहले दो वात कहना चाहती हूं तुमसे, वगैर नहीं मान रहा।'

मैंने आगे झुककर पूछा, 'क्या कहना चाहती हो पराण की वहू ?'

उसने कहा, 'कालीचरण, एक वार गुसाईं मां को वुला दो।'

मैंने पूछा, 'क्यों ? गुसाईं मां को किसलिए वुला रही हो ? अभी तो सो रही हैं।'

पराण की वहू ने कहा, 'गुसाईं मां से कहे वगैर मैं जा नहीं पा रही कालीचरण ! मेरे पाप का वोझ हलका नहीं होगा।'

क्या करता, उतनी रात गए गुसाईं मां को वुलाकर लाया। सारे दिन के काम-काज के वाद गुसाईं मां वेसुध सोई थीं।

मेरे पुकारने पर उठकर वोलीं, 'क्या हुआ ? इतनी रात में क्यों पुकार रहा है ?'

मैंने कहा, 'पराण की वहू की हालत खराव है, तुम्हें वुला रही है, एक वार।'

गुसाईं मां पराण की वहू के पास गईं। और उसके मुंह के पास मुंह ले जाते ही पराण की बहू ने गुसाईं मां से कुछ कहा। गुसाईं मां ने मेरी ओर देखकर कहा, 'कालीचरण, जा तो, जाकर हराधन वैद्य को एक वार वुला ला, कहना, गुसाईं मां ने वुलाया है, साथ में मकरध्वज लाने को कहना।'

'गुसाईं मां की वात सुनकर मैं दौड़ा-दौड़ा हराधन वैद्य को लाने गया। जी हां, लेकिन वैद्यजी जव तक आए, सव कुछ खत्म हो गया था। पराण की वहू इस दुनिया को छोड़कर जा चुकी थी। उसके वाद और क्या ! सव खत्म हो चुका था।

मैं तो तव भी यही समझता था हुजूर कि पराण की वहू ने जो कह था, वही सत्य है।

एक दिन मैंने गुसाईं मां से पूछा था, 'पराण की वहू ने तुम क्या कहा गुसाईं मां ? मरने से पहले क्या कहने को वुलाया उसने ?'

काफी देर तक पीछे पड़ने के बाद गुसाईं मा ने कहा था, 'पराण की बहू ने कहा था कि मां लक्ष्मी उसे रास्ते में पड़ी मिली लड़की नहीं है। यह उसकी जात के किशनगज के सतत मछुए के लड़के सत्य मछुए की लड़की है। मछुए की लड़की बोलकर कहीं हम घर में रखने को राजी न हों, इसीलिए उसने कह दिया था कि वह उसे रास्ते में पड़ी मिली।'

मैंने गुसाईं मा से पूछा भी था कि 'सत्य मछुआ अपनी लड़की को पराण की बहू के पास क्यों छोड़ गया?'

गुसाईं मा ने कहा था, 'सत्य मछुए की बहू इस लड़की के पैदा होते ही मर गई थी। उसे देखने वाला कोई नहीं था। उधर सत्य मछुए को हावड़ा की किसी जूट मिल में नौकरी भी मिल गई थी। बिन मा की लड़की को कहां रखता? इसीलिए उसे पराण की बहू के पास छोड़ गया।'

हजूर, सब विधि का विधान है। मैं गुसाईं मा का नौकर ठहरा, उन्होंने जो कुछ कहा, मैंने मान लिया।

बाद में यह दीनगोविंद घटक एक दिन विवाह का संबंध लाए। चुपचाप ब्याह भी हो गया। किसीको कुछ भी पता नहीं चल पाया। मैं तो पहले ही काशी चला गया था। विवाह पर दो दिन के लिए आकर फिर वापस वहीं चला गया। इसके बाद आज आप लोग आए हैं। जो सोचकर इतने दिन बाद रानी बिटिया को देख लिया

कहकर कालीचरण रुका।

ाज भी किशनगंज में जाने पर देखा जा सकता है, 'दि इंडिया मिल लिमिटेड' के ऑफिस के सामने तीन बड़े-बड़े स्टेच्यू खड़े हैं। ही पत्थर के हैं। असली सफेद संगमरमर के। बीच में मालिक की है—कीर्तिश्वर भट्टाचार्य। दोनों ओर दो जने और। एक ओर दुलाल ा और दूसरी ओर निताई बसाक।

तीनों मूर्तियां ही नई बहू ने बनवाई हैं। तीनों के नीचे उनका नाम, ाम और परिचय लिखा है, काले अक्षरों में।

किशनगंज की पहली वाली शक्ल अब नहीं रह गई है। नई पक्की सड़कें और इलैक्ट्रिक लाइट वगैरह सब कुछ ने मिलकर जगह को जैसे बदल ही दिया है।

बड़े चातरा से उस रोज़ लौटने के बाद दुलाल साहा के घर कुछ दिन तक सन्नाटा छाया रहा। दुलाल साहा, निताई बसाक और नई बहू सभी जैसे बदल-से गए थे। ऐसा भी हो सकता है, कोई सोच भी न पाया था।

नई बहू उसी रोज घर से चली जाना चाहती थी। बोली, "मैं अब इस घर का जल भी स्पर्श नहीं करूंगी बाबा! आप मुझे मुक्ति दें।"

निताई बसाक ने कहा था, "यह कैसे हो सकता है? तुम जाओगी कहां नई बहू?"

नई बहू ने कहा, "जहां भी जाऊं, इस घर में रहने का अधिकार अब मुझे नहीं है।"

विजय काफी देर से चुप खड़ा था। अब उसने कहा, "तुम यह घर छोड़कर जाओगी तो मुझे भी तुम्हारे साथ जाना पड़ेगा।"

"तुम क्यों जाओगे? जाना होगा तो मैं अकेली ही जाऊंगी। तुम् मेरे साथ जाने की ज़रूरत नहीं है।"

दुलाल साहा ने कुछ भी नहीं कहा। हरिनाम की माला-झोली और भी तेज़ी से फेरने लगा।

उसने कहा था, "दुनिया सब माया है, एक हरिनाम ही सत्य पापियों के तारने के लिए एक हरिनाम का ही भरोसा है।"

लेकिन हरि ही जो एकमात्र भरोसा है, इसका प्रमाण भी मिल ही गया। दो दिन बाद ही पुलिस और दरोगा फिर आ पहुंचे

...आ रहे थे।

वंकू का माथा अभी भी गर्म था। गर्म होने के सिवाय नारा भी नहीं कुछ।

"लेकिन तुमने उसे मारा क्यों ?"

"मारूंगा नहीं ? झूठ क्यों बोला तुम्हारा अधिकारी ?"

"झूठ ? झूठ कब बोले ?"

"उमने क्यों कहा था कि अंजना ही असल में हरतन है? अंजना तो हरतन नहीं है।"

"क्या कहते हो तुम ?"

चंडी बाबू शायद जरा सम्हल गए थे। वंकू के घूंसे की चोट से आंख-नाक फूल गए थे।

उन्होंने कहा, "मैं क्या ऐसे ही झूठ बोला था। देखा, भला आदमी पोती-पोती करके पागल होकर यहां-वहां उसको ढूंढता भटक रहा है। उधर अपनी अंजना को भी राजरोग हो गया था। दल का नुकसान तो हुआ ही। उसकी चिकित्सा भी नहीं हो पा रही थी ठीक से। इतनी कीमती दवाएं, पथ्य कौन खिलाए, किसके पास इतना पैसा है? मैंने सोचा, मालिक का ऐसा खास कुछ नुकसान भी नहीं होगा। लड़की मिलने का लाभ होगा सो अलग। अंजना का भी फायदा था। जरा-सा झूठ बोलकर अगर लड़की के इलाज का इंतजाम हो तो इसमें मैंने ऐसा क्या अन्याय कर डाला, सुनूं तो जरा ?"

"लेकिन इसीलिए एक ब्राह्मण को इस तरह सताएंगे ? इतने रु... का कर्जदार बना देंगे उसे ? बेचारे मालिक को क्या चैन मिल पाया... कर्ज ले-लेकर अंजना को ठीक कर दिया, इससे अंजना का उपकार ... यह ठीक है, लेकिन वे इतना कर्जा विधवा महिला के माथे पर रख... मर गए, उसका भुगतान कौन करेगा ?"

लेकिन इन सब तर्कों को कौन सुनता और कौन समझता, ... पास इतना वक्त नहीं था। चंडी बाबू को भी यह सब अच्छा नहीं ल... था।

लेकिन किशनगंज पहुंचते ही एक घटना और हो गई।

मालिक के घर के आगे उस समय काफी भीड़ जमा हो गई थी। दुलाल साहा आया है, निताई बसाक आया है, सुकान्त राय आया है, बिजय और नई बहू भी आए हैं। और आए हैं पुलिस के दरोगा साहब। साथ में एक जना और···

"यह आदमी कौन है?"

"अरे, इसका नाम तो सत्य साधुआ है।'

दरोगा साहब ने कहा, "इसीका नाम है सत्य साधुआ। इसीसे आपको सब पता चल जाएगा, आपकी पोती इस तरह इसीको मिली थी।"

सामने बड़ी बहूजी थी। उनके आंसू अभी सूखे नहीं थे। हमेशा की कम बोलनेवाली हैं, लेकिन आज तो जैसे हमेशा के लिए गूंगी हो गई थीं।

"बोलो सत्य, बड़ी बहूजी को सब कुछ बतला दो।"

उस दिन सत्य ने जो कुछ कहा, वह इतना अविश्वसनीय था कि नाटक जैसा लग रहा था। फिर भी पूरा सत्य था। सत्य ने सब कुछ कह दिया। जो सुन रहे थे, उन्होंने दांतों तले उंगली दबा ली। इस जमाने में ऐसा कुछ भी हो सकता है?

घुमे आ रहे थे।

बंकू का माथा अभी भी गर्म था। गर्म होने के सिवाय चारा भी नहीं था कुछ।

"लेकिन तुमने उसे मारा क्यों ?"

"मारूंगा नहीं ? झूठ क्यों बोला तुम्हारा अधिकारी ?"

"झूठ ? झूठ कब बोले ?"

"उसने क्यों कहा था कि अंजना ही असल में हरतन है ? अंजना तो हरतन नहीं है।"

"क्या कहते हो तुम ?"

चंडी बाबू शायद ज़रा सम्हल गए थे। बंकू के घूंसे की चोट से आंख-नाक फूल गए थे।

उन्होंने कहा, "मैं क्या ऐसे ही झूठ बोला था। देखा, भला आदमी पोती-पोती करके पागल होकर यहां-वहां उसको ढूंढ़ता भटक रहा है। उधर अपनी अंजना को भी राजरोग हो गया था। दल का नुकसान तो हुआ ही। उसकी चिकित्सा भी नहीं हो पा रही थी ठीक से। इतनी कीमती दवाएं, पथ्य कौन खिलाए, किसके पास इतना पैसा है? मैंने सोचा, मालिक का ऐसा खास कुछ नुकसान भी नहीं होगा। लड़की मिलने का लाभ होगा सो अलग। अंजना का भी फायदा था। ज़रा-सा झूठ बोलकर अगर लड़की के इलाज का इंतज़ाम हो तो इसमें मैंने ऐसा क्या अन्याय कर डाला, सुनूं तो ज़रा ?"

"लेकिन इसीलिए एक ब्राह्मण को इस तरह सताएंगे ? इतने रुपये का कर्ज़दार बना देंगे उसे ? बेचारे मालिक को क्या चैन मिल पाया ? कर्ज़ ले-लेकर अंजना को ठीक कर दिया, इससे अंजना का उपकार हुआ, यह ठीक है, लेकिन वे इतना कर्ज़ा विधवा महिला के माथे पर रखकर मर गए, उसका भुगतान कौन करेगा ?"

लेकिन इन सब तर्कों को कौन सुनता और कौन समझता, ... पास इतना वक्त नहीं था। चंडी बाबू को भी यह सब अच्छा नहीं ... था।

लेकिन किशनगंज पहुंचते ही एक घटना और हो गई।

ने कहा, 'मालिक की पोती है।'
इसके बाद दो-तीन रोज़ इसी तरह कट गए, लड़की भी चंगी हो गई।
की हालत में भी काफी सुधार हो गया था। लड़की को जैसे गोद से
रना ही नहीं चाहती थी। "

"फिर ?"

सब सांस रोके सत्य की बात सुन रहे थे।

पूछने लगे, "उसके बाद फिर क्या हुआ ?"

"उसके बाद, जी, सब कहता हूं। आप लोगों को पूरी बात सुनाऊंगा।
मैंने पता किया, अपने पाड़े में किसीको यह बात मालूम हुई या नहीं।
किसीको मालूम नहीं हुआ था। पता चलने पर तो मालिक अपनी पोती
को ले जाएंगे, मेरी बहू फिर पागल हो जाएगी, इसीलिए इस बारे में किसी-
से कुछ नही कहा। मालिक की पोती को गोद में ले रातोंरात किशनगंज
छोड़कर मोहनपुर चला गया। सभीसे कह दिया, यह मेरी अपनी लड़की
है। लेकिन विधि के विधान के आगे किसका बस चलता है। रानी मां,
एक दिन मेरी वह बहू भी मर गई। जिसके लिए परायी पोती को अपनी
बतला रहा था, वह बहू ही आखिर न रही! अब हरतन को कहां रखता?
मेरी एक बहन बर्द्धमान ज़िले के बड़े चातरा में थी। हरतन को वहीं
छोड़ आया। कह आया था कि इसके बारे में किसीको न बतलाए, नहीं
तो गज़ब हो जाएगा। और उसके बाद हावड़ा की जूट मिल में नौकरी
मिल गई। वहां फिर से ब्याह भी किया। एक लड़का भी हुआ। उस लड़के
का नाम निकुंज है। मेरी भी उम्र हो चली है रानी मां, अपने पापों की
कहानी आपको सुना दी। जब दरोगा साहब ने जाकर सारी बातें पूछीं
तो फिर मैं कुछ भी छुपा नहीं पाया। अब मुझे जो भी सज़ा दें, मंज़ूर
है।"

सज़ा कौन देता है और कौन लेता ही है। इस जगत् के दंडना[यक]
को अगर कोई कभी देख पाता तो शायद एक रोज़ उससे मुकाबला क[र]
लेकिन सबसे मज़े की बात यह है कि उस दंडनायक को कभी देखा [नहीं]
जा सकता। देखा नहीं जा सकता, इसीलिए कभी मुकाबला भी [नहीं किया]
होगा। मुकाबला होने पर हो सकता है, इस कहानी का अंत कु[छ और]

होता। अंजना ही, हो सकता है, असली हरतन होती; मानिक भी, हो सकता है फिर से ऐश्वर्यशाली होकर किशनगंज के कर्ता-धर्ता होते, और दुलाल साहा पुलिस की हथकड़ी पहन जेलखाने में सड़ता।

लेकिन अंत वैसा नहीं हुआ। आप और हम जिस तरह हर चीज का अंत देखकर खुश होते हैं, इस कहानी का अंत मैं उस तरह नहीं कर पा रहा। मालिक नहीं हैं, दुलाल साहा नहीं है। निताई बसाक भी नहीं है, निवारण सरकार भी नहीं है। है सिर्फ बी० डी० ओ० सुकान्त राय। इसके अलावा दुलाल साहा का लड़का विजय साहा और नई बहू। नई बहू ही अब मालिक के इतने बड़े घर की मालकिन है। इस वंश की लड़की एक दिन खो जाने के बाद फिर किस तरह घटनाचक्र से वापस आ गई, और सब कुछ उलट-पुलटकर पूरी कहानी का मोड़ भी बदल डाला।

जाने वाले दिन नई बहू ने अंजना से पूछा था, "तुम जा क्यों रही हो ? मैंने तो तुमसे चले जाने को नहीं कहा ? तुम यहीं रहो न !"

अंजना ने कहा, "मैं नाटक-दल की लड़की हूं, हम लोगों को क्या घर के अंदर अच्छा लगता है ?"

नई बहू बोली, "नाटक दल की होने पर भी आखिर हो तो औरत ! और औरत होकर घर-बार अच्छा न लगे, यह भी कभी संभव है ?"

अंजना ने कहा, "घर में इतने दिन रहकर देख लिया कि घर-बार क्या चीज है। इस सबके बाद अब तुम मुझसे घर-गृहस्थी के झंझट में पड़ने को मत कहो।"

"क्यों ? घर ने ऐसा कौन-सा दोष किया है ?"

अंजना ने कहा, "हम लोगों ने नाटक-दल का परिवार देखा है, इसलिए कहती हूं कि इससे हजार गुना अच्छा है।"

"तुम मुझपर गुस्सा होकर यह बात कहती हो ?"

अंजना ने कहा था, "अरे नहीं, गुस्सा नहीं किया। सच कहती हूं, हमारा वह परिवार कहीं ज्यादा अच्छा है। वहां हम खड़िया घोलकर उसे दूध मानकर पीते हैं, यह सच है, लेकिन उसे पीने के बाद इतनी कैफियत नहीं देनी पड़ती।"

• नई बहू ने ताना पकड़ लिया। उसने कहा, "लेकिन उसके लिए मैं

…प्रायश्चित्त करने को राज़ी हूं। तुम इस तरह ताने क्यों दे रही हो ? मैंने तो पहले ही कह दिया कि तुम यहीं रहो।"

अंजना हंसकर नई बहू से लिपट गई। फिर बोली, "तुम मेरी बात का बुरा क्यों मानती हो ? मैंने ऐसा थोड़े ही कहा है !"

नई बहू ने कहा था, "ठीक है, लेकिन तुम गुस्से नहीं हो, इसका प्रमाण देती जाओ।"

"प्रमाण कैसे दूं ?"

"एक दिन यहां नाटक के गीत गाकर वचन दो, एक दिन समय होने पर इसी चौक में तुम अपना गीत सुनाओगी।"

"यह बात ठीक है।"

"लेकिन वायदा करो, कभी स्वप्न में भी नहीं सोचोगी कि मैंने तुम्हें भगा दिया ?"

अंजना बोली, "ओ मां, ऐसा क्यों सोचने लगी ? मैं तो खुद ही जा रही हूं। तब क्या इतनी देर से मैं तुमसे झूठ बोल रही थी ? सच कहती हूं, यकीन मानो, यह जो दादा मर गए, हमारे नाटक की दुनिया में ऐसा नहीं होता। वहां यात्रा होते समय राजा-रानी मरते हैं, लेकिन अन्दर मेकअप रूम में जाकर वे ज़िन्दा हो जाते हैं। तुम लोगों की दुनिया के नियम-कानून अलग ही हैं। यह सब मुझे अच्छा नहीं लग रहा भाई, मैं चलती हूं।"

फिर जाते-जाते रुककर बोली, "हमारी उस दुनिया में राम-रावण का युद्ध होने पर राम की ही विजय होती है, रावण की नहीं। लेकिन तुम्हारे यहां तो सब कुछ उलटा है।"

कहकर गाड़ी में जा बैठी। पीछे-पीछे बंकू भी जाकर बैठ गया।

इसके बाद गांव के सब लोगों के देखते-देखते उन लोगों की गाड़ी किशनगंज की सड़क से होकर सामने की ओर अदृश्य हो गई। किसी ने पुकारकर उन्हें रोका भी नहीं। जगत् की रीति देखकर वे लोग जैसे हतवाक्, निस्तब्ध और निर्मम हो गए।

हां, तो आज का किशनगंज वह किशनगंज नहीं रह गया है, यह

पहले ही कह चुका हूं। अब दुलाल साहा के घर से लेकर मालिक के घर तक चारदीवारी खिंच गई है। सब मिलाकर एक विशाल इमारत हो गई है।

'श्रीदाम ऑपेरा' आकर यहां एक रोज नाटक भी कर चुका है। वक्त आया था, अंजना भी आई थी। मालिक के मकान के सामने वाले प्रांगण में अंजना ने 'रानी रूपकुमारी' का पार्ट किया था। महफिल में उसने सुर में गाया था :

कहां जाऊं, कहां आऊं, मैं अबला नारी।
कौन यहां अपना
कहां पाऊं शरण, हे अन्तर्यामी···

उसका यह अभिनय देखकर लोग आंसू नहीं रोक पाते। और उसके बाद ही उसके साथियों ने आकर एक नाच दिखलाकर महफिल को जीत लिया था।

पवन की पालकी चढ़कर स्वर्ग जाऊं···

बाद में लोग ठहाका मारकर हंसने लगे।

लेकिन आश्चर्य, एक दिन किशनगंज का नाम पलटकर दुलालगंज हो गया। कलकत्ते के किसी एक मिनिस्टर ने आकर नाम-परिवर्तन के उस उत्सव को सपन्न किया। वह खबर और उस उत्सव के फोटो बड़े आडम्बर के साथ अखबारों में भी छपे। उसके पीछे किसके कितने हजार खर्च हुए, यह बात गोपनीय ही रही। दुलाल साहा कितने बड़े आदमी थे, इस बात के प्रचार में कोई कमी नहीं रखी गई। सबको नये सिरे से पता चला—दुलाल साहा गरीबों के कितने बड़े हितैषी, लाचार के सहायक और सर्वत्यागी सन्यासी थे। स्टेशन का नाम दुलाल साहा के साथ जोड़कर इस महापुरुष को चिरस्मरणीय बनाए रखने की व्यवस्था की गई—'जय! जय महापुरुष दुलाल साहा की जय···'

और जीवन जिस प्रकार सुख-दुःख की परवाह करके नहीं चलता, इतिहास भी उसी तरह भले-बुरे का विचार कर अपनी गति का निर्धारण नहीं करता। वह निर्मम-निर्विकार है। दुलालगंज के लोग जब सुबह-सुबह जूट मिल में काम करने जाते हैं, जब दुलाल साहा के घर के सामने से होकर

ूटी करने जाते हैं, तब उन्हें पता भी नहीं चलता कि दुलालगंज के इस हरी वैभव के पीछे और भी बहुत लोगों का सुख-दुःख जड़ित है। हमेशा सी तरह जड़ित रहेगा भी। सिर्फ इतिहास के पृष्ठ बदलने की तरह उसके ऊपर एक के बाद एक आलेप से एक दिन निश्चिह्न हो जाएगा। उस दिन जो लोग फिर से आएंगे, उनके भी सुख-दुःख को लेकर एक और उपन्यास लिखा जाएगा। इस आवागमन को लेकर ही हो सकता है, महाकाल अपने विचित्र खयालों की परितृप्ति करता है। लेकिन क्यों करता है, यह किसीको नहीं मालूम। हम-आप कोई भी नहीं जानते। जानने की कोशिश करने पर भी जान पाना संभव नहीं होगा। सिर्फ, जो साक्षी रहेंगे, वे उसकी नींव पर काव्य, उपन्यास लिखकर कागज़ पर समय को अंकित कर जाएंगे। दुनिया इसीका नाम है।

□□